बाबू जुगलकिशोरजी मुख्तार को

[illegible] प्रकाशक की तरफ से भेंट

ता० २।१।४६

पण्डितप्रवर श्रीआशाधर विरचित

प्रतिष्ठासारोद्धार

संक्षिप्त हिंदी भाषाटीकासहित ।

जिसको

पाढमनिवासी पं० मनोहरलाल शास्त्रीने तयारकर अपने

श्रीजैनग्रंथ-उद्धारक कार्यालय द्वारा

प्रकाशित किया ।

प्रथमवार
१००० प्रति ।

वि० संवत् १९७४.

न्यौछावर गत्ते-
सहित १॥।) रु०
कपड़ेकी जिल्द २) रु०

ॐ नमः परमेष्ठिभ्यः

प्रस्तावना।

प्रिय पाठकगण! अब मैं श्री जिनेंद्रदेवकी कृपासे उस अपूर्व ग्रंथ **प्रतिष्ठासारोद्धार**को भाषाटीकासहित बनाके आपके सामने उपस्थित करता हूं कि जिसकेलिये आप सब साधर्मीगण उत्कंठित होरहे थे। गृहस्थ श्रावकोंका देवपूजा करना नित्य कर्मोंमेंसे पहला कर्तव्य कहा है, उसकेलिये जिनदेवकी प्रतिमा तथा मंदिरकी स्थापना होना बहुत आवश्यक है। उसी स्थापनाकी पंचकल्याणक आदि विधियां इस महान ग्रंथमें स्पष्ट रीतिसे वर्णनकी गई हैं। इसका फल ग्रंथकारने स्वयं दिखलाया है कि पहले महाराज **भरत**चक्रवर्ती आदि महान पुरुष भी इसी जिन प्रतिष्ठाके करनेसे निराकुल मोक्षसुखको प्राप्त हुए हैं। परंतु कालकी कुटिलगतिसे आजकल बहुत कुछ विपरीतपना फैल गया है। पहले तो प्रतिष्ठाकरानेवाले धनिक यजमानोंको यही खबर नहीं कि प्रतिष्ठाकरानेका क्या फल है तथा हमको

प्रतिष्ठाचार्यके साथ कैसा वर्ताव करना चाहिये। दूसरी बात यह है कि प्रतिष्ठाचार्यको भी अत्यत लोभके वशीभूत होकर इसबातका ध्यान नहीं रहता कि मै यजमानके साथ अयोग्य वर्ताव तो नहीं करता। बस यजमान और प्रतिष्ठाचार्य इन दोनोंके अयोग्य वर्ताव होनेसे प्रतिष्ठाके समय अनेक विघ्न आकर उपस्थित होजाते हैं तब प्रतिष्ठाका फल निष्फल होजाता है॥ यही विचारकर मेरा मन सक्षिप्त भाषाटीका सहित इस **प्रतिष्ठापाठ**को प्रकाशित करनेका हुआ है। जिससे सब साधारण भव्यजीवोंको यह वात मालूम होजावे कि प्रतिष्ठा करानेमें किन २ चीजोंकी आवश्यकता है और यजमान तथा प्रतिष्ठाचार्यको कैसा वर्ताव रखना चाहिये ॥

यह महान् ग्रथ पंडितप्रवर श्री आशाधर गृहस्थाचार्यका बनाया हुआ है। इन्होने श्री **वसुनंदि** आचार्यकृत **प्रतिष्ठासार संग्रह**के विषयका उद्धार करनेके लिये विस्तारसहित पूर्वोक्त प्रतिष्ठासारोद्धार नामका ग्रथ रचकर भव्यजीवोंका उपकार किया है। इन्हीं विद्वद्वरने धर्मामृत आदि अनेक अपूर्व ग्रथोकी रचना की है, उसका उल्लेख प्रशस्तिमें किया गया है। और जीवनचरित्र भी सक्षेपमें प्रशस्तिमें है तथा सागार धर्ममृतमें मुद्रित हो चुका है इसलिये यहां लिखनेकी विशेष आवश्यकता नहीं है। इस ग्रथकी भाषाटीका अबतक देखनेमे नहीं आई और न मैंने अबतक कोई प्रतिष्ठा करानेका काम ही किया। उसमें भी प्रतिष्ठाकी क्रिया करानेवालोंकी लोभकषायके वश चित्तमलिनता होनेके कारण विधि वतलानेमें सहायता देना असंभव समझ उनके पास भी जाना व्यर्थ समझा। इसलिये मूल सस्कृतपरसे ही बुद्धिके अनुसार भाषाटीका सक्षेपसे लिखी गई है।

इस ग्रथकी एक हस्तलिखित प्रति तो पूर्ण मिली तथा दूसरी अधूरी मिली। ये दोनों प्रतियां लेखकोंकी कृपासे प्राय: अशुद्ध मिलीं, इसलिये अर्थकरनेमे बहुत कठिनाई हुई। अस्तु। 'न कुछसे कुछ होना अच्छा' इस कहावतको लेकर यह उद्यम किया गया है।

इस ग्रथके साथ प्रतिष्ठासारसंग्रहका भी कुछ भाग लगादिया है । तथा समयके अनुकूल विषयसूची, मंत्रसाधनके समय आवश्यक चीजोंका नकशा, और मत्रव्याकरणके कुछ नियमोंको बतलानेवाले श्लोक भी लगादिये गये हैं कि जिससे कर्णपिशाचिनी आदि विद्याके साधनेमें सफलता हो । मत्र सिद्ध करनेकी विस्तारसे विधि **मंत्रसंग्रह** में बहुत अच्छी तरहसे बतलाई जावेगी ।

इस ग्रथके उद्धारमें श्रीमान् सेठ **भैरूंदानजी** लाडनूं निवासीने जो पचास रुपये भेजकर सहायता की है, इस अपूर्व उपकारके हम बहुत आभारी होके कोटिश धन्यवाद देते हैं और आशा करते हैं कि इस तरहकी आर्थिक सहायता देकर अन्य सज्जन भी जिनवाणीका प्रचारकर पुण्यउपार्जन करेंगे । अंत में यह प्रार्थना है यदि हमारे पाठकोंको इस ग्रथसे सतोष हुआ और सहायता मिली तो **अष्टांग-निमित्तसंग्रह** तथा **मंत्रसंग्रह** आदि अपूर्व ग्रंथ भाषा-टीका सहित प्रकाशित करके उपस्थित करूगा । शुद्ध प्रति न मिलनेसे कहीं अशुद्धिया रह गई हों तो पाठक महाशय मुझपर क्षमा करें । जब शुद्ध प्रति मिलजावेगी तब शुद्धिपाठ छपाकर भेजदिया जावेगा । इसतरह प्रार्थना करता हुआ इस प्रस्तावनाको समाप्त करता हूं । अल विशेषु ।

खत्तरगली हौदावाडी
पो. गिरगाव—बंबई
जेठ वदि १३ वीर सं० २४४३

जैनसमाजका सेवक
मनोहरलाल
पाढम (मैंनपुरी) निवासी

मंत्रसाधनके समय आवश्यक नियम ।

शांतिकर्म १	पौष्टिककर्म २	वश्यकर्म ३	आकर्षणकर्म ४
वरुणदिशा	नैऋत्यदिशा	कुबेरदिशा	यमदिक्
अर्धरात्रि	प्रभातकाल	पूर्वाह्णकाल	पूर्वाह्णकाल
ज्ञानमुद्रा	ज्ञानमुद्रा	सरोजमुद्रा	अंकुशमुद्रा
पंकजासन	स्वस्तिकासन	पंकजासन	दंडासन
(नमः) स्वाहा पल्लव	स्वधा पल्लव	वषट् पल्लव	वौषट् पल्लव
श्वेतवस्त्र	श्वेतवस्त्र	रक्त वस्त्र	उदयार्कवस्त्र
श्वेतपुष्प	श्वेतपुष्प	अरुण पुष्प	अरुणपुष्प
श्वेतवर्ण	श्वेतवर्ण	रक्तवर्ण	उदयार्कवर्ण
पूरकयोग	पूरकयोग	पूरकयोग	पूरकयोग
दीपनआदि नाम	दीपनआदि	संपुट आदि	ग्रंथनवरुण
स्फटिकमणि माला	मुक्ताफल माला	प्रवालमणि	प्रवालमणि
मध्यमांगुलि	मध्यमांगुलि	अनामिका	कनिष्ठिका
दक्षिणहस्त	दक्षिणहस्त	वामहस्त	वामहस्त
वामवायु	वामवायु	वामवायु	वामवायु
जलमंडल	जलमंडल	अग्निमंडल	अग्निमंडल

स्तंभनकर्म ५	मारणकर्म ६	विद्वेषणकर्म ७	उच्चाटनकर्म ८
पूर्वाभिमुख	ईशानदिशा	अग्निदिक्	वायव्यदिशा
पूर्वाह्नकाल	संध्याकाल	मध्याह्नकाल	अपराह्नकाल
शंखमुद्रा	वज्रमुद्रा	प्रवालमुद्रा	प्रवालमुद्रा
वज्रासन	भद्रासन	कुर्कुटासन	कुर्कुटासन
ठ ठ पल्लव	घे घे पल्लव	हूं पल्लव	फट् पल्लव
पीतवस्त्र	कृष्णवस्त्र	धूम्रवस्त्र	धूम्रवस्त्र
पीतपुष्प	कृष्णपुष्प	धूम्रपुष्प	धूम्रपुष्प
पीतवर्ण	कृष्णवर्ण	धूम्रवर्ण	धूम्रवर्ण
कुंभकयोग	रेचकयोग	रेचकयोग	रेचकयोग
विदर्भमध्य	रोधनआदि	पल्लवांतिनाम	पल्लवांतिनाम
स्वर्णमणि	पुत्रजीवीमणि	पुत्रजीवीमणि	पुत्रजीवीमणि
कनिष्ठिका	तर्जनी	तर्जनी	तर्जनी
दक्षिणहस्त	दक्षिणहस्त	दक्षिणहस्त	दक्षिणहस्त
दक्षिणवायु	दक्षिणवायु	दक्षिणवायु	दक्षिणवायु
पृथ्वीमंडल	वायुमंडल	वायुमंडल	वायुमंडल

॥ मंत्रसाधनविधिके आवश्यक श्लोक ॥

दिक्कालमुद्रासनपल्लवानां भेदं परिज्ञाय जपेत् स मंत्री ।
न चान्यथा सिद्ध्यति तस्य मंत्रः कुर्वन् सदा तिष्ठतु जाप्यहोमं ॥ १ ॥
स्तंभं विद्वेषमाकृष्टिं पुष्टिं शांतिं प्रचालनम् । वश्यं वधं च तं कुर्यात् पूर्वाद्यभिमुखः क्रमात् २
अन्योन्यवज्रविद्धं पीतं चतुरस्रमवनिबीजयुतम् । कोणेषु रांतयुक्तं भूमंडलसंज्ञकं ज्ञेयम् ॥३॥
मुखमूलवपोपेतः पद्मपत्रांकितः सितः । पववर्णात्तदिक्कोण कलशस्तोयमंडलम् ॥ ४ ॥
त्रिस्वास्तिकं त्रिकोणं यांतं कोणेषु वह्निबीजयुतम् । ज्वालायुतमरुणाभं तन्मंडलमाहुराग्नेयम्५
बहुबिंदुवक्ररेखं वृत्ताकारं चतुर्यकारयुतम् । कृष्णं मारुतबीजं वायव्यं मंडलं प्राहुः ॥ ६ ॥
चत्वारि मंडलानि च लवरयवर्णैः क्रमेण युक्तानि । पृथ्वीसलिलहुताशनमारुतबीजैः समेतानि ७
मारणाकृष्टिवश्येषु त्र्यस्रं कुंडं प्रशस्यते । विद्वेषोच्चाटयोर्वृत्तमन्येषु चतुरस्रकम् ॥ ८ ॥
पलाशस्य समिन्मुख्या स्यादमुख्या पयस्तरो । विधानमेतत् संग्राह्यं विशेषवचनादृते ॥ ९ ॥
वधाविद्वेषोच्चाटेष्वष्टौ पुष्टौ मता नव शांतौ । आकृष्टिवशीकृत्योर्द्वादश सामिधः प्रमांगुलयः॥१०
शतमष्टोत्तरसंख्या सहस्रमष्टोत्तरं वदंति जपे ।होमादिषु संख्या स्यात् दशभागा मूलमंत्रसंख्यायाः
जपादविकलो मंत्रः स्वशक्तिं लभते पराम् । होमार्चनादिभिस्तस्य तृप्ता स्यादधिदेवता १२
एकस्तावद्वह्निः पुनरपि पवनाहतो न किं कुर्यात् ।एको मंत्रः पुनरपि जपहोमयुतोस्य किमसाध्यं
शिष्यो मंत्रक्रियारंभे स्नातः शुद्धांबरं दधत् । निर्जंतुदेशके पूजाजपहोमान् करोत्विति ॥१४॥
पंचाह्वानस्थापनसाक्षात्करणार्चनाविसर्गाः स्युः।मंत्राधिदेवतानामुपचाराः कीर्तितास्तज्ज्ञैः॥
सिसाधयिषुणा विद्यामविघ्नेनेष्टसिद्धये । यत्स्वस्य क्रियते रक्षा सा भवेत् सकलीक्रिया॥१६॥

ॐ नमः परमात्मने ।

श्रीमत्पंडितप्रवर-आशाधरविरचितः

प्रतिष्ठासारोद्धारः ।

(जिनयज्ञकल्पापरनामा)
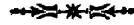
जिंनान्नमस्कृत्य जिनंप्रतिष्ठाशास्त्रोपदेशव्यवहारदृष्ट्या ।
श्रीमूलसंघे विधिवत्प्रबुद्धान भव्यान प्रवक्ष्ये जिनयज्ञकल्पम् ॥ १ ॥

हिंदी भाषाटीका
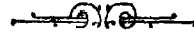
अब जिनयज्ञ कल्प नामके प्रतिष्ठापाठका व्याख्यान किया जाता है;—मैं (आशाधर) जिनेंद्र भगवानको नमस्कार करके और जिनप्रतिष्ठा शास्त्रोकी गुरुआम्नायको अच्छीतरह जानकर श्रीमूलसंघके शास्त्रोंके अनुसार श्रावकधर्मको पालनेवाले भव्योके वास्ते जिनयज्ञक-

१ अथातो जिनयज्ञकल्पमनुक्रमिष्याम. । २. जिनस्थापनाधर्मसहितापुर्वाम्नायमुख्यप्रवृत्त्यवलोकनेन ।

साकल्येनैकदेशेन कर्मारातिजितो जिनाः । पंचार्हदादयोऽत्रेष्टाः श्रुतं चान्यच्च तादृशम् ॥२॥
जिनानां यजनं यज्ञस्तस्य कल्पः क्रियाक्रमः। तद्वाचकत्वाच्च जिन-यज्ञकल्पोऽयमुच्यते ॥३॥
तत्र विश्वोपकारार्थजन्मनां यज्ञमर्हताम् । प्रागाहुस्तस्य भेदाः स्युः पंच नित्यमहादयः ॥४॥
तेषु नित्यमहो नाम स नित्यं यज्जिनोर्च्यते । नीतैश्चैत्यालयं स्वीयगेहाद्गंधाक्षतादिभिः ॥५॥
अतो नित्यमहोद्युक्तैर्निर्मापं सुकृतार्थिभिः । जिनचैत्यगृहं जीर्णमुद्धार्यं च विशेषतः ॥६॥

ल्पका विस्तारसे व्याख्यान करता हूं ॥१॥ समस्त अथवा थोडेसे कर्मरूपी वैरियोंको जिसने जीत लिया है वह जिन कहलाता है इसलिये यहांपर अर्हत सिद्धादि पांच परमेष्ठी तथा उनका कहा हुआ द्वादशांग शास्त्र–जिन जानना चाहिए। उन जिन शब्द वाच्य अर्हतादिकका जो पूजन उसे जिनयज्ञ कहते हैं उसकी क्रियाओंके क्रमको कल्प कहते हैं इसलिये जिन-पूजाकी क्रियाओंके क्रमको जो कहे उसीको 'जिनयज्ञकल्प' इस नामसे कहते हैं। यह जिनयज्ञकल्पका अक्षरार्थ हुआ ॥ २। ३॥ उनमें सबसे पहले अर्हतकी पूजाका क्रम कहा जाता है क्योंकि मुख्यतासे उन तीर्थंकर अर्हतका ही जन्म जगतजीवोंके उपकारके लिए होता है। उस पूजाके नित्यमह चतुर्मुख रथावर्त कल्पवृक्ष इन्द्रध्वज–ये पांच भेद आचार्योंने कहे हैं ॥ ४ ॥ उन पांचोंमेंसे नित्यमह नामकी पूजा वह है कि जो अपने घरसे चंदन अक्षतादि अष्टद्रव्यको चैत्यालय (जिनमंदिर) में लेजाकर उससे जिनेन्द्रका पूजन किया जावे ॥ ५ ॥ इसलिये पुण्यके चाहनेवालोंको नित्यमह पूजनमें उद्यमी होके जिनमंदिर बनवाना चाहिये

जिने यज्ञं करिष्याम इत्यध्यवसिताः किल। जित्वा दिशो जिनानिष्ट्वा निर्वृता भरतादयः॥७॥
शक्यक्रियेष्टफलतां दृष्ट्वाष्टांगनिमित्ततः। स्वशक्त्या स्वाप्तिं पृष्ट्वाप्तान् प्रारभेत जिनालयम्॥८॥
मुनिगोऽश्वेभभूषाढ्ययोषिच्छत्रादिदर्शनम्। तत्प्रश्ने वेदपाठार्हन्नुत्यादिश्रवणं शुभम् ॥ ९ ॥
विमूर्धा हसतीस्तोमः सोहं मध्ये स्थितोऽततः। चतुरोंकारयुक् सव्येतरमायाद्वयावृत्तम् ॥ १० ॥

और जहांतक होसके जीर्ण जिनमंदिरका उद्धार कराना बहुत उत्तम है ॥ ६ ॥ जिनेन्द्र देवकी पूजा तो अवश्य करेंगे ऐसा दृढनिश्चय रखनेवाले भरत सगर राम पांडव आदिक बडे २ महाराजा जो पूर्वसमयमें होगये हैं वे भी जिनेन्द्रदेवकी पूजाकरनेसे ही सब दिशाओंको जीतकर अंतमें मोक्षके अविनाशीक सुखको प्राप्त हुए ॥ ७ ॥ अपनी शक्ति और इष्ट सिद्धिको विचार कर तथा पिता माता मंत्रीआदिक सज्जनोंको पूछकर अष्टांग निमित्तके द्वारा शुभतिथि आदि पंचांग शुद्ध लग्नमें जिनमंदिर बनवाना शुरू करे ॥ ८ ॥ जिनमंदिरके उद्धार करनेके संबंधमें पूंछनेके समय दिगंबर मुनि (साधु) बछड़ेवाली गाय वा बैल घोडा हाथी सधवा स्त्री छत्र और आदि शब्दसे चमर ध्वजा सिंहासन दही दूध इत्यादिका देखना तथा वीणाका शब्द जैन शास्त्रोंका पाठ अर्हतको नमस्कार आदि शब्दोंका सुनना शुभ है ॥ ९ ॥ अब कर्णपिशाचिनी यंत्र मंत्रका उद्धार बतलाते हैं,-हकार सकार तीकारके ऊपर बिंदु रख सकार और हकारके बीचमें तीं अक्षरको लिखे उसके चारों कोनोंमें चार ओंकार

जोगे मग्गे पदं तच्चे भूदे भव्वे ततः परम् । भविस्से अक्खे पक्खे च जिनपार्श्वे रमाक्षरम्॥ ११॥
मायाबीजं वधूबीजं तथा कर्णपिशाचिनि । मंत्रेणानेन तच्चक्रे नमोंतप्रणवादिना ॥ १२ ॥
जातीपुष्पसहस्राणि जप्त्वा द्वादश शद्दशः । विधिना दत्तहोमस्य विद्या सिद्ध्यति वर्णिनः १३
सानाहतामूर्ध्वमुखज्योतिस्त्रींकारधीरिमाम् । जपन् शृणोति वा पश्यत्यपि जाग्रच्छुभाशुभम् १४
उपोषितो जपन् सुप्त ओं मायाद्यपराजितम् । दृष्ट्वा मुन्यादिक ब्रूयाच्छुभं क्षुद्रादि चाशुभम् १५

लिखना और दक्षिण वामभागकी तरफ माया बीजनामक ह्रींको लिखे अर्थात् ऐसा यंत्र बनावे । यह कर्णपिशाचिनी यंत्र है॥१०॥जोगे मग्गे तच्चे भूदे भविस्से अक्खे पक्खे जिणपार्श्वे श्री (रमाक्षर) ह्रीं (मायाबीज) स्त्री (वधूवीज) कर्णपिशाचिनि—इसके अंतमे नमः लिखे और आदिमे ओ लिखे तो ॐ जोगे मग्गे तच्चे भूदे भविस्से अक्खे पक्खे जिणपार्श्वे श्री ह्री स्त्री कर्णपिशाचिनि नमः ” ऐसा कर्णपिशाचिनी मंत्र हुआ । यह मंत्र यंत्रके चारो तरफ लिखे ।११।१२। फिर ब्रह्मचर्यव्रत धारण करके यंत्रको सामने रखकर बारह हजार चमेलीके फूलोंसे मंत्र जपे पश्चात् रातमें विधिपूर्वक बारह सौ आहूतियां अग्निमे देवे— ऐसा करनेसे उस ब्रह्मचारीको कर्णपिशाचिनी विद्या सिद्ध हो जाती है ॥ १३ ॥ ऊपरको नेत्र किये हुए जो मंत्र साधनेवाला ओंकार रूप अनाहत अक्षरसे वेढी हुई इस विद्याको ध्यानपूर्वक जपता है वह जाग्रत अवस्था और शयनअवस्था दोनोमेही शुभ अशुभ सुनता है और देखता है ॥१४॥ जो उपवास करके ओं ह्रीं आदि पंच-

ओ		ओ
ह्रीं	स तीं हं	ह्रीं
ओं		ओ

भूपातालक्षेत्रपीठवास्तुद्वारशिलार्चनाः । कृत्वा नरं प्रवेश्यार्च्यां न्यस्याथारोपयेद् ध्वजम् ॥ १६ ॥
जैनं चैत्यालयं चैत्यमुत निर्मापयन् शुभम् । वांछन् स्वस्य नृपादेश्च वास्तुशास्त्रं न लंघयेत् १७
रम्ये स्निग्धं सुगंधादिदूर्वाद्याढ्यां स्वतः शुचिम् । जिनजन्मादिना वास्ये स्वीकुर्याद्भूमिमुत्तमाम्
खात्वा हस्तमधः पूर्णे गर्ते तेनैव पांशुना । तदाधिक्यसमोनत्वे श्रेष्ठा मध्याधमा च भूः ॥ १९ ॥

नमस्कार मंत्रका जाप करता हुआ सो जावे और उस सोती हुई अवस्थामे मुनि गाय आदिको देखे तो शुभफल कहे और शकुन शास्त्रमे कही हुई अशुभ वस्तुओको देखे तो अशुभ फल कहे ॥ १५ ॥ अपनी भूमि पातालभूमि पूरितभूमि चौकी देवगृह शिला—इनकी पूजा करके सोनेके बनाये हुए मनुष्याकार पुंतलेको रख उसकी पूजा करके बाद ध्वजा चढावे ॥ १६ ॥ जो अपना और राजा प्रजाका कल्याण चाहता है उसे वास्तुशास्त्रके अनुसारही जिनमंदिर और जिन प्रतिमाको बनवाना चाहिये ॥ १७ ॥ ऐसी जमीनको मंदिर बनवानेके लिये पसंद करे कि जो चिकनी हो तथा सुगंधीसे या दूब वगैरः घाससे या तो स्वयं शुद्ध हो या जिनेन्द्रके किसी एक कल्याणकसे पवित्र हो ॥ १८ ॥ वह भूमि एक हाथ गहरी और एक हाथचौडी खोदे उससमय उसी निकली हुई मट्टीसे गढा भरदे जब खड्डा भरनपरे अधिक मट्टी मालूम पड़े तब समझना चाहिये कि भूमि उत्तम है, समान होवे तो मध्यम तथा कम

---

१ इस पुतलेकी विधि आगे कही जावेगी । २ घर वगैरः बनानेकी विधि बतलानेवाला शिल्पिशास्त्र ।

प्रदोषैः कटसंरुद्धसमीरायां च तद्भुवि । ओंहूं फडित्यस्त्रमंत्रत्रातायामामभाजने ॥ २० ॥
आमकुंभोऽर्व्वगे सर्पिःपूर्णे पूर्वादितःसिताम्।रक्तां पीतां शितिं न्यस्य वर्तिसर्वाः प्रबोध्य ताः २१
अनादिसिद्धमंत्रेण मत्रयेदाघृतक्षयात् । शुद्धं ज्वलंतीपु शुभं विध्यातीष्वशुभं वदेत्॥२२॥
एवं सगृह्य सद्भूमिं सुदिनेऽभ्यचर्य वास्त्वधः। सर्वाऽयाध्यर्धमंभोऽश्मप्राग्धरावधि वा तथा २३
पातालयास्तु संपूज्य प्रपूर्याधाप्य तां समाम्। प्रासादं लोकशास्त्रज्ञो दिशः संसाध्य सूत्रयेत् २४

होवे–गढा न भर सके तो खराब-अशुभ करनेवाली जमीन समझनी चाहिये ॥ १९ ॥ सूर्य छिपनेके बाद चटाईके परकोटेसे हवाको रोककर उस जगहकी 'ओं हूं फट्' इस कुदालादि अस्त्रमंत्रसे रक्षा करे ॥ २० ॥ पुनः उसकी पूर्वादि चारों दिशाओंमें कच्चे मट्टीके चार घड़े रक्खे उनपर कच्चे सरवे घीसे भरे हुए रक्खे उनमें सफेद लाल पीली काली बत्ती पूर्वादि दिशाओंके क्रमसे डालै फिर सबको जलावै ॥ २१ ॥ जबतक घी रहै तबतक अनादि सिद्धमंत्रसे मंत्रित करै । बत्तियां साफ जलतीं हों तो शुभफल कहना और यदि बुझतीं हुई मालूम पड़ें तो अशुभ फल कहना चाहिये ॥ २२ ॥ इसप्रकार उत्तम भूमिको तलाशकर शुभ दिनमें उसकी खोदी हुई नींवकी पूजा करके उसे शुद्ध करे । फिर पत्थर वगैरः के टुकड़ोंसे भरकर पहली भूमिके बराबर करले इस तरह व्यवहार शास्त्रका जानने-वाला दिशाओंको विचार कर जिन भवनका निर्माण करावे ॥ २३ ॥ २४ ॥

चतुरस्रे कृते पंचवर्णचूर्णेन मंडले । चतुर्द्वारेष्टपत्राब्जगर्भे न्यस्यांबुजोदरे ॥ २५ ॥
जिनादीन् मंगलैर्लोकोत्तमैश्च शरणैर्युतान् । अनादिसिद्धमंत्रेण पूजयेद्दिग्दलेष्वनु ॥ २६ ॥
देवीर्जयाद्या जंभाद्या विदिक्पत्रेषु तद्बहिः । लोकपालान् यजेद्दिक्षु स्वस्वमंत्रैस्तथा ग्रहान् २७
तत्र संस्थाप्य सत्पीठे जिनार्चा समहोत्सवाम् । प्रीतः प्रीतेन संघेन संयुक्तो याजकोत्तमः २८
संस्नाप्यादाय गंधांबुचरुपुष्पाक्षतादिकम् । दद्याद्बलिं स्वमंत्रेण विश्वविघ्नोपशांतये ॥ २९ ॥
एवं स्थंडिलपातालवास्तुपूजाद्वयोत्तरम् । विधाप्य मसृणं क्षेत्रमित्थं तद्वास्तु पूजयेत् ॥३०॥

इति स्थंडिलपातालवास्तुद्वयपूजाविधानम् ।

उस जिन मंदिरके चारों दरवाजोंके सामने पांच रंगके चूर्णसे चौकोन मांडला बनावे और आठ पाखुडीके कमलके आकार तांबेके पात्रमें लोकोत्तम शरणरूप जिन आदिको अनादि सिद्ध मंत्रसे पूजे ॥ २५ ॥ २६ ॥ उसके बाद दिशाओंके चार पत्रोंपर जया आदि देवियोंका और विदिशाओंके चार पत्रोंपर जंभा आदि देवियोंका तथा उसके बाहर चार लोकपालोंका और नव ग्रहोंका अपने २ मंत्रोंसे पूजन करे ॥ २७ ॥ फिर उत्तम सिंहासनपर जिन भगवानकी प्रतिमाको विराजमान करके वह उत्तम यजमान (पूजा करानेवाला) प्रेमयुक्त श्रावकादि समूहसे घिरा हुआ प्रसन्न चित्तसे जिन पूजा करे ॥ २८ ॥ पहले तो सुगंधित जलसे अभिषेक करे पश्चात् जल चंदन अक्षतादि आठ द्रव्य लेकर अपने २ मंत्रसे सब विघ्नोंकी शांतिके लिये पूजा करे ॥ २९ ॥ इस प्रकार चबूतरा और

रेखाभिस्तिर्यगूर्ध्वाभिर्वज्राग्राभिः सुलेखिते । एकाशीत्यष्टपत्राब्जगर्भकोष्ठेऽत्र मंडले ॥ ३१ ॥
यजेन्मध्यांबुजेनादिसिद्धमंत्रेण सद्गुरून् । जयादिदेवीः स्वैर्मंत्रैः पत्रेषु बहिरष्टसु ॥ ३२ ॥
षोडशस्वर्चयेद्विद्यादेवीः शासनदेवताः । द्विर्द्वादशेषु द्वात्रिंशत्पद्मेष्विंद्रानतो बहिः ॥ ३३ ॥
इंद्रादीन् दिक्षु यज्यांश्च वज्राग्रेषु नतो ग्रहान् । जिनार्चां तत्र पीठस्थां संस्नाप्याभ्यर्च्य पूर्ववत् ३४
सर्वौषधीपंचरत्नमिश्रतीर्थांबुपूरितान् । पंचताम्रमयान् कुंभान् दधिदूर्वाक्षतार्चितान् ॥३५॥

नींवकी भूमि–इन दोनोंकी पूजाकरके चीकनी जगह करावे ॥ ३० ॥ इस प्रकार चबूतरा और नींवकी भूमि–इन दोनोंकी पूजाका विधान समाप्त हुआ । उसके बाद बृहत्शांति नाम एक चौकोण मंडल बनावे उसकी विधि इस प्रकार है कि पहले तो उसके चारो तरफ इक्यासी लकीरें अग्रभागमें वज्र चिह्न वाली खींचे फिर उस कोठेके बीचमें आठ पत्तेवाला कमल बनावे ॥ ३१ ॥ उस कमलके मध्यमें पच परमेष्ठियोंको स्थापन करके अनादि सिद्ध मंत्रसे पूजा करे। उसके बाद आठ कमलपत्रोंपर स्थित जया आदि आठ देवियोकी पूजा करे॥३२॥ पश्चात् रोहिणी आदि सोलह विद्या देवियोंके चक्रेश्वरी आदि चौवीस शासन देवताओंके कोठे तथा बत्तीस यक्षोंके कोठे खींचे । उसके बाद चारो दिशाओंमें इंद्र वरुण आदि चार दिक्पालोंको स्थापन करे फिर वज्रके आगेके भागमें नव ग्रह स्थापन करना चाहिये । उस मध्य कमलके ऊपर सिंहासन रखे उसपर जिनप्रतिमा रखकर उसका अभिषेक पूर्वक पूजन करना चाहिये ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ उसके बाद चारो कोनोमे चार शिला तथा एक

तत्रारोप्यैकशोनादिसिद्धमंत्रेण मंत्रयेत्। ततस्तन्न्यासदेशेषु सूतश्रीखंडकुंकुमम् ॥ ३६ ॥
क्षित्वा प्रागेकमुत्क्षिप्य क्षेत्रगर्भे न्यसेत्तथा । पृथक्कोणेषु चतुरस्तेतः पंच शिलाः पृथक् ॥३७॥
जिनादिमंत्रैरध्यास्य सुलग्ने तेषु विन्यसेत् । ततः प्रतोष्य शिल्प्यादीन् स्वक्षेत्रे भ्रामयेद्बलिम् ३८
पीठबंधेप्यसावेत्र विधिः कृत्स्नो विधीयताम् । विकुंभो देहलीपद्मशिलयोश्च निवेशने ॥३९॥

इति पीठबधादित्रयप्रतिष्ठाविधानम् ।

भीतर (सिंहासनके पास) इस तरह पांच शिला अथवा पकी हुई ईटें रक्खे । उसके ऊपर शुभ लग्नमें पांच तांबेके कलशोंको क्रमसे रखे उनके अंदर सर्वौषधी, पांच तरहके रत्नोंसे मिला हुआ नदी या कुएका जल भरा रहना चाहिये और घड़ोंके रखनेके स्थानपर पारा-घिसा हुआ चंदन कुंकु रखे और सबको अनादिसिद्ध जिनादि(णमोकार)मंत्रसे मंत्रित करे । उसके बाद कारीगरोंको द्रव्यादिसे प्रसन्न करके अपने मंडलके आगे पूजाकरे ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ॥ ३७ ॥३८॥ इस प्रकार जिनादि मंत्र तथा शिला रखनेकी विधि पूर्ण हुई । वेदीके बांधनेमें (रचनामें) भी यही विधि करनी चाहिये और देहलीकी शिला तथा वेदीकी कमलाकार गुमठीकी शिलाके रखनेमें भी पूर्वकथित विधि करनी चाहिये । परंतु देहलीके दरवाजे की तथा गुमठीकी कमलाकार शिलाके पिछले भागमें जया आदिके देवियोंकर सहित

---

१ ओं ह्रॉ नमोऽर्हद्भ्य स्वाहा, ओं ह्रीं नम सिद्धेभ्य स्वाहा, ओं ह्रूं नम सूरिभ्यः स्वाहा, ओं ह्रौं नम पाठकेभ्य स्वाहा, ओं ह्र नम सर्वसाधुभ्य. स्वाहा । जिनादिमत्रा खरशिलानिवेशन ।

देहल्यब्जशिलापृष्ठे जयाद्यष्टदलांबुजम् । संपूज्याप्लवयेच्चार्हत्स्नृतांभस्तीर्थवार्घटैः ॥ ४० ॥
अथ किंचिदपर्याप्ते प्रासादे दक्षुणक्षणे । कारापकादिक्षेमार्थं पुरुषं संप्रवेशयेत् ॥ ४१ ॥
शुकनासोर्ध्वपर्यंतवेदिकाधस्तलांतरे । गर्भपवरकं कृत्वा वेदिकां तत्र विन्यसेत् ॥ ४२ ॥
मध्ये ताम्रमयं कुंभं वस्त्रयुग्मेन वेष्टितम् । क्षीराज्यशर्करापूर्णं गंधपुष्पाक्षताचिंतम् ॥ ४३ ॥
स्थिरं संस्थाप्य तन्मध्ये प्रक्षिपेद्रत्नपंचकम् । सर्वौषधीश्च धान्यानि पारदं लोहपंचकम्॥४४॥
सौवर्णं वाथवा रौप्यं कारयित्वा नरं ततः।संस्नाप्याज्यादिसद्द्रव्यैःसमभ्यर्च्याक्षतादिभिः४५

आठ पत्रोंवाला कमल पूजकर अर्हंत देवके अभिषेकके जलसे उन शिलाओंको धोना चाहिये ॥ ३९ ॥ ४० ॥ इसप्रकार वेदीबंध आदि तीनोंकी प्रतिष्ठाकी विधि जानना ॥ अब पुतलेके प्रवेश करनेकी विधि कहते हैं,-उसके बाद अपने संपूर्ण लक्षणोंसे युक्त जिनमंदिर तयार होनेमें कुछ रह जावे तभीसे शिल्पी वगैरके कल्याणकेलिये मनुष्याकार पुतलेका प्रवेश करे ॥४१॥ उसकी विधि इस प्रकार है कि तोतेका समान नाकवाली पद्मशिलाके ऊपरके भाग और वेदीके निचले भागके बीचमें रहनेका स्थान (कमरा) बनाके उसमे प्रतिमा विराजमान होनेकी वेदीको रखे ॥४२॥ उसके बीचमें तांबेका घडा दो वस्त्रोंसे ढका हुआ रक्खे उस घडेमें दूध घी शक्कर भरदे और चंदन पुष्प अक्षतसे पूजन करे।उस घडेको स्थिर रखकर उसमे पांच तरहके रत्न, सर्व औषधी सब अनाज पारा लोहा आदि पांच धातुएं भरदे ॥४३।४४॥ अनंतर सोना अथवा चांदीका मनुष्याकार पुतला बनवाके उसे घी आदि उत्तम द्रव्योंसे स्नान

तूलोपधानयुक्तायां सुशय्यायां निवेश्य च। अनादिसिद्धमंत्रेण सम्यक् तत्राधिवासयेत् ४६
पूर्वोक्तविधिना कृत्वा जिनेंद्रार्चाभिषेचनम्। ततस्तं सम्यगुत्क्षिप्य विलग्नांशोदये शुभे॥४७॥
कृत्वा महोत्सवं तत्र कुंभे तं स्थापयेन्नरम्। एतत्कारापकादीनां विधानं शुभदं भवेत्॥४८॥

इति पुरुषप्रवेशनविधानम्।

धाम्नि सिद्ध्यति सिद्धे वा सेत्स्यत्यर्चाकृते शिलाम्।अन्वेष्टुं सेष्टशिल्पींद्रःसुलग्नशकुने व्रजेत्४९
प्रसिद्धपुण्यदेशोत्था विशाला मसृणा हिमा। गुर्वा चार्वा दृढा स्निग्धा सद्गंधा कठिना घना ५०

कराके अक्षतादिसे पूज पटसूत्र (निवाड) से बुनी हुई रुईके गद्दे तकिये सहित सेज (खाट) पर रख अनादि सिद्धमंत्र पढकर लिटावै फिर जिनेंद्रदेवका अभिषेक पूर्वक पूजन करके शुभलग्नके भवांशके उदयमें उच्छव सहित उस मनुष्यकार पुतलेको उस घडेमें रखे। ऐसा विधान करनेसे कारीगरोंको कोई विघ्न नहीं आता शुभफल होता है ॥ ४५ । ४६ ॥ ॥ ४७ । ४८ ॥ उसके पश्चात जिनमंदिर तयार होरहा हो हो गयाहों या कुछ देरी हो पूजन करके उत्तम प्रतिष्ठमावनानेवाले कारीगरको साथ लेकर शुभलग्न तथा शुभशकुनमे प्रतिमाके लिए शिला लेनेको पहाडपर जाना चाहिये ॥ ४९ ॥ अर्हंत प्रतिमाके लिये बहुत उत्तम मोटी शिला होनी चाहिये। तथा वह शिला प्रसिद्ध पवित्र जगह वाली हो बडी हो, चिकनी हो, ठंडी हो, मोटी हो, सुंदर हो, मजबूत हो, अच्छी गंधवाली हो, ठोस हो,

सद्वर्णात्यंततेजस्का विंदुरेखाद्यदूषिता । सुस्वादा सुस्वरा चार्हद्बिंबाय प्रवरा शिला ॥ ५१ ॥
तां प्राप्य भूवत् कृत्वार्चां प्रोक्ष्यमंत्रेण पूजिताम् । विभिद्योंहूं फट् स्वाहेद्धशस्त्राग्रेणार्चयेत् पुनः ५२
गृहमेत्य ततो भूवत्तां शुभामशुभामपि । स्वस्य ज्ञातुं निशारंभे निमित्तमवलोकयेत् ॥ ५३ ॥
स्नात्वैकांते शुचौ देशे लिप्त्वा गंधैः शुभैः करौ । विधाय सिद्धभक्तिं च ध्यायेन्मंत्रमिमं हृदि ५४
ओं नमोस्तु जिनेंद्राय ओं प्रज्ञाश्रवसे नमः । नमः केवलिने तुभ्यं नमोस्तु परमेष्टिने ॥ ५५ ॥

अच्छे रंगवाली हो अधिक चमकवाली हो, विंदुरेखा आदि दोषोसे रहित हो अच्छा स्वाद तथा अच्छी ध्वनि जिसमे हो–ऐसी शिला होनी चाहिये॥५०॥५१॥उसको लेकर और उससे भूमिकी तरह पूजकर प्रोक्षणमंत्रसे उसे धोकर ओं हूं फट् स्वाहा इस शस्त्रमंत्रसे शिला तराशनेके हथियारसे उसे निकालै ॥ ५२ ॥ फिर घरपर जाकर जिनमंदिरकी भूमिकी तरह उस शिलाके शुभ अशुभ जाननेके लिये रात्रिके आरंभमें अष्टांग निमित्तोंको विचारै ॥५३॥ स्नान करके एकांत शुद्ध स्थानमें शुभ गंध द्रव्यको हाथपर लगाके सिद्धभक्ति पढकर इस आगे कहेजानेवाले] मंत्रश्लोकका मनमे ध्यानकरे ॥ ५४ ॥ वह इस प्रकार है—ओ जिनेंद्र देवको नमस्कार है ओं प्रज्ञाश्रवण केवली परमेष्टिन् तुमको नमस्कार है । दिव्य शरीरवाली हे देवी मुझे स्वप्नमे शुभ अशुभ कार्यको कह । इस दिव्यमंत्रसे उस शिलाको शुभ (कल्याण-

---

१ ओं क्षं वं ह्वः पः क्ष्वीं क्ष्वीं स्वाहा । प्रोक्षणमंत्र । ओं हूं फट् स्वाहा इति शस्त्रमंत्र ।

स्वप्ने मे देवि दिव्यांगे ब्रूहि कार्यं शुभाशुभम् । अनेन दिव्यमंत्रेण शुभां ज्ञात्वा नयेच्च ताम् ५६
प्रातस्तत्र पुनर्गत्वा कृत्वा प्राग्वाद्विधिं रथे । सप्तकृत्वोभिमंत्र्याधिरोपितां तां प्रचालयेत् ॥५७॥
यथा कोटिशिला पूर्वं चालिता सर्वविष्णुभिः । चालयामि तथोत्तिष्ठ शीघ्रं चल महाशिले॥५८॥

इति शिलाभिमंत्रणमंत्रः ।

जिनालयं परीत्य त्रिःप्रवेश्यात्युत्सवेन ताम् । स्वह्नि सिक्त्वा स्वौषधीभिःसिद्धशांतिस्तुती भजेत्
क्रमो यथार्हं योज्योऽयं दारुधात्वादिनापि च । निर्मापयिष्यमाणेऽर्हद्बिंबे सिद्धेथवाऽप्राते ॥६०॥

इति शिलानयनविधानम् ।

कारिणी) जानकर लाना चाहिये ॥ ५५ । ५६ ॥ प्रातः कालके समय रथको लेजाकर वहां पूजनादिविधि करके सातवार उस शिलाको अनादि सिद्ध मंत्रसे मंत्रित करे । फिर उसको वहांसे आगे कहे हुए मंत्रको पढकर उठावे ॥ ५७ ॥ हे महाशिले ! जिस तरह लक्ष्मण कृष्ण आदि नौ नारायणोंने कोटि (करोडमन वजनवाली) शिला पूर्वसमयमें उठाई थी । उसी तरह मैं भी तुझे मूर्ति बनवानेके लिये उठाता हूं । सो तू जल्दी उठ ,, ऐसा मंत्र कहकर उस शिलाको उठाके रथमे विराजमान करे ॥ ५८ ॥ इस प्रकार शिलाभिमंत्रण मंत्र कहा । वहांसे उत्सवके साथ जिनमंदिरमे लावे और उसकी तीन प्रदक्षिणा देकर शुभ दिनमे उत्तम औषधियोंसे शिलाको धोकर मंदिरमे रक्खे उसके बाद सिद्धस्तुति शांति विधान करे ॥ ५९ ॥ ऐसा क्रम (विधि)

सुलग्ने शांतिकं कृत्वा सत्कृत्य वरशिल्पिनम् । तां निर्मापयितु जैनं बिंबं तस्मै समर्पयेत् ॥६१॥
सद्दृष्टिर्वास्तुशास्त्रज्ञो मद्यादिविरतः शुचिः। पूर्णांगो निपुणःशिल्पी जिनार्च्यायां क्षमादिमान् ६२
शांतप्रसन्नमध्यस्थनासाग्रस्थाविकारदृक् । संपूर्णभावरूपानुविद्धांगं लक्षणान्वितम् ॥ ६३ ॥
रौद्रादिदोषनिर्मुक्तं प्रातिहार्यांकयक्षयुक् । निर्माप्य विधिना पीठे जिनबिंबं निवेशयेत् ॥६४॥

पत्थरकी शिलाका कहागया है वैसा ही काष्ठ और धातु वगैर.के अर्हतबिंब व सिद्धादिबिंबोंके तयार करानेमें व तयार होके दूसरे स्थानसे आये हुए बिंबमें । जानना इसप्रकार शिला वगैरेःके लानेका विधान पूर्ण हुआ ॥ ६० ॥ उसके बाद शुभलग्नमे शांति विधान करके चतुर कारीगरको आदरपूर्वक लाकर जिनबिंब तयार करानेके लिये शिलाको उसे सुपुर्द करदे ॥ ६१ ॥ जो अच्छी निगाहवाला हो शिल्प शास्त्रको जानने वाला, मदिरा मांस आदि निंद्य वस्तुओंका त्यागी हो, मनवचन कायसे शुद्ध हो शरीरके अवयवोंसे पूर्ण हो चतुर हो क्षमा आदि गुणोंवाला हो वह शिल्पी जिन प्रतिमाके बनाने योग्य कहा गया है ॥ ॥ ६२ ॥ जो शांत, प्रसन्न, मध्यस्थ, नासाग्रस्थित अविकारी दृष्टिवाली हो जिसका अंग वीतरागपने सहित हो अनुपम वर्ण हो और शुभ लक्षणो सहित हो । रौद्र आदि बारह

---

१ उक्तंच—नात्यंतोन्मगलितास्तब्धा न विस्फारितमीलिना । तिर्यगूर्ध्वमधोदृष्टिं वर्जयित्वा प्रयत्नतः ॥ नासाग्रनिहिता शांता प्रसन्ना निर्विकारिका । वीतरागस्य मध्यस्था कर्तव्या दृष्टिरुत्तमा ॥ २ रौद्र, कुशांग, संक्षिप्तांग, चिपिटनासिक, विरूपकनेत्र, हीनमुख, महोदर, महाहृदय, महाअंस, महाकटी, महापाद, हीनजंघा, शुष्कजंघा—ये दोष हैं ।

स्थापितस्याचलस्थाने पीठस्याक्षूणलक्ष्मणः । नयेत्समीपं प्रतिमां तत्रारोपयितुं स्थिराम् ६५
सौवर्णं राजतं ताम्रं शैलं वा चतुरस्रकम् । रम्यं पत्रं विनिर्माप्य सदलं मसृणं तथा ॥६६॥
तिर्यगूर्ध्वाष्टरेखाभिर्वज्राग्राभिः समालिखेत् । मंडलं त्र्येकपंचाशत्कोष्ठकं श्लक्ष्णरेखकम् ॥६७॥
अकारादि हकारांतं कोष्ठेष्वेकैकमक्षरम् । बाह्यकोणस्थितात्कोष्ठात् प्रादक्षिण्येन संलिखेत् ॥६८।
मध्यमे कोष्ठके तत्र हंकारं सोर्ध्वरेफकम् । जयादिदेवताधिष्ठपत्रपद्मस्य मध्यगम् ॥ ६९ ॥
वज्राग्रे प्रणवं दद्यात्कामबीजं तदंतरे । त्रिर्मायामात्रयावेष्ट्य निरुंध्यादंकुशेन तु ॥ ७० ॥

दोषोसे रहित हो अशोक वृक्षादि प्रातिहार्योंसे युक्त हो और दोनों तरफ यक्ष यक्षीसे वेष्टित हो ऐसी जिन प्रतिमाको वनवाकर विधि सहित सिंहासनपर विराजमान करे ॥ ६३ । ६४ ॥ वह विधि इसतरह है कि निश्चल स्थानमें रखे हुए सिंहासनके ऊपर निर्दोष लक्षणवाली प्रतिमाको स्थिर रूपसे विराजमान करे ॥ ६५ ॥ फिर सोना चांदी तांवा पत्थर–इनमेसे किसी एकका चौकोन चिकना पत्र वनवावे उसपर सीधी तिरछी अग्रभागमें वज्र चिन्हवाली आठलकीरे खींचे उसमें उनचास कोठावाला सीधी रेखाओंकर युक्त एक मंडल खींचे ॥ ६६ ॥६७॥ उन कोठोमें अकारसे लेकर हकारतक एक एक अक्षरको लिखे ॥ ६८ ॥ बीचके कोठेमें ' हं ' लिखकर उसके चारो तरफ आठदलका कमल बनावे उसमे जया आदि आठ देवताओंका स्थापन करे ॥ ६९ ॥ वज्रके अगाडीके भागमें ' ओं ' लिखै दो वज्रोंके मध्यमे ' क्लीं ' लिखै और ईकारसे तीनवार चारो तरफसे घेरकर ' क्रौं ' इस अंकु-

एवं विलिख्य संस्नाप्य यंत्रं क्षीरेण चांबुना। सुगंधिद्रव्यमिश्रेण चंदनेनानुलेपयेत् ॥७१॥
सत्पुष्पाक्षतनैवेद्यदीपधूपफलैर्यजेत्। सुगंधिप्रसवैस्तत्र जप्यमष्टोत्तरं शतम् ॥ ७२ ॥
संजप्य मातृकावर्णमालामंत्रेण तत्त्वतः। ओं नमोऽर्हंमुखं ह्रीं क्लीं क्रौं स्वाहांतेन तत्स्मरेत् ॥७३॥
पत्रमध्ये च यत्पद्मं पीठे गंधेन तल्लिखेत्। कर्पूरं कुंकुमं गंधं पारदं रत्नपंचकम् ॥ ७४ ॥
क्षिप्त्वातपत्रमारोप्य प्रतिमां स्थापयेत्ततः। स्थिरप्रतिष्ठाविधये दिने लग्ने च शोभने ॥ ७५ ॥

शसे ढक्कन लगावे ॥ ७० ॥ इस प्रकार यंत्रको लिखकर सुगंधी द्रव्यसे युक्त दूध और जलसे यंत्रका अभिषेक कर चंदनका लेप करे ॥ ७१ ॥ अक्षत पुष्प नैवेद्य दीप धूप फल–इन आठ द्रव्योंसे यंत्रकी पूजा करे और सुगंध वाले चमेली आदिके फूलोंसे एकसौ आठवार आगे कहे जाने वाले मंत्रका जाप करे ॥ ७२ ॥ वह मंत्र इस तरह है कि "ओं नमो र्हं" इस पदको पहले रक्खे बीचमें अकारादि वर्ण मालाके अक्षरोंको और अंतमें "ह्रीं क्लीं क्रौं स्वाहा" इस पदको रखे—तब 'ओं नमो र्हं अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ ट ठ ड ढ ण त थ द ध न प फ ब भ म य र ल व श ष स ह ह्रीं क्लीं क्रौं स्वाहा" ऐसा जपनेका मंत्र हुआ ॥ ७३ ॥ उस तांबेके पत्रमें लिखा हुआ जो कमल है उसे घिसे हुए चंदनसे सिंहासनपर भी लिखै और कपूर कुंकु चंदन पारा पांचतर-

१ ओं नमोऽर्हं अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः। क ख ग घ ङ। च छ ज झ ञ। ट ठ ड ढ ण। त थ द ध न। प फ ब भ म। य र ल व। श ष स ह ह्रीं क्लीं क्रौं स्वाहा ॥ इति जपमंत्र ॥

स्थापयेदर्हतां छत्रत्रयाशोकप्रकीर्णकम् । पीठं भामंडलं भाषां पुष्पवृष्टिं च दुंदुभिम् ॥ ७६ ॥
स्थिरेतरार्चयोः पादपीठस्याधो यथायथम् । लांछनं दक्षिणे पार्श्वे यक्षं यक्षीं च वामके॥७७॥
गौर्गजोश्वः कपिः कोकः कमलं स्वस्तिकः शशी । मकरः श्रीद्रुमो गंडो महिषः कोलसेधिकौ ॥७८
वज्रं मृगोऽजष्टगरं कलशः कूर्म उत्पलम् । शंखो नागाधिपः सिंहो लांछनान्यर्हतां क्रमात् ७९
सितौ चंद्रांकसुविधी श्यामलौ नेमिसुव्रतौ । पद्मप्रभसुपूज्यौ च रक्तौ मरकतप्रभौ ॥ ८० ॥

हके रत्न उसमे डाले ऊपर छत्र लगावे तब प्रतिमाको सिंहासनपर विराजमान करे । यह विधि प्रतिष्ठाके निर्विघ्न समाप्तिकेलिये कही गई है । सो इसे शुभदिन और शुभ लग्नमे करे ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ इसप्रकार वेदीपर सिंहासनमे प्रतिमा विराजमान करनेकी विधि पूर्ण हुई । फिर अर्हंत प्रतिमाको तीन छत्र दो चमर अशोक वृक्ष दुंदुभी बाजा सिंहासन भामंडल दिव्य भाषा पुष्पवर्षा—इन आठ प्रातिहार्योंसे शोभित करे ॥७६॥ उसके बाद स्थिर और चल दोनों प्रतिमाओंमें सिंहासनके नीचे जैसा शास्त्रमे कहा है वैसे ही सीधी बाजूमे भगवानके चिन्हको और बाईं तरफ यक्ष और यक्षीको खडा करे ॥ ७७ ॥ अर्हंतोंके शरीरके चिन्ह क्रमसे बैल १ हाथी २ घोडा ३ बंदर ४ चकवा ५ कमल ६ साथिया ७ चंद्रमा ८ मगर ९ श्रीवृक्ष १० गैंडा ११ भैंसा १२ सूअर १३ सेही १४ वज्र १५ हरिण १६ बकरा १७ मच्छ १८ कलश १९ कछुआ २० कमलकी पांखुरी २१ शंख २२ सर्प २३ सिंह २४—ये चौवीस हैं । इनमेंसे जिस भगवानका जो चिन्ह है उसे सिंहासनके नीचे भागमें खुदाना चाहिये ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ ऋष-

सुपार्श्वपार्श्वौ स्वर्णाभान् शेषांश्चालेखयेत्स्मरेत् । न वितस्त्यधिकां जातु प्रतिमां स्वगृहेऽर्चयेत् ८१
स्थिरां स्थाने निवेश्यार्चां चलां वा यागमंडले । प्रतिष्ठाचार्ययष्टारौ स्थापयेतां यथाविधि ८२
नार्चां श्रितानिष्टरूपां व्यंगितां प्राक् प्रतिष्ठिताम् । पुनर्घटितसंदिग्धां जर्जरां वा प्रतिष्ठयेत् ॥८३॥

आदि चौवीसो तीर्थकरोंका रंग क्रमसे कहते हैं—चंद्रप्रभ, पुष्पदंत-ये दोनो सफेद रंगके हैं नेमिनाथ, सुव्रतनाथ-ये काले रंगवाले हैं। पद्मप्रभु, वासुपूज्य इनका लालरंग है। सुपार्श्व पार्श्वनाथ-नीले रंगवाले हैं और बाकी बचे हुए सोलह तीर्थंकरोंका शरीर तपाये हुए सोनेके रंगवाला है। अपने घरके चैत्यालयमे एक बिलस्तसे अधिक परिमाणवाली प्रतिमा नहीं रखे जैनमंदिरमे ही रखकर पूजनकरे ॥ ८० ॥ ८१॥ स्थिर प्रतिमाको अपने पूजनस्थानमे चलप्रतिमाको यागमंडलमे रखकर इंद्र और यजमान विधिपूर्वक प्रतिष्ठा करें ॥ ॥ ८२ ॥ ऐसी प्रतिमा प्रतिष्ठायोग्य नही है कि जो पहलेकी प्रतिष्ठित हो, जिनलिंगके सिवाय दूसरा आकार हो, पहले शिव आदि आकार बना हो फिर फोडके जिनदेवका आकार किया गया हो, अथवा उसके आकारमे संदेह हो कि जिनबिंब है या दूसरा आकार है, और बिलकुल जीर्ण होगई हो ॥ ८३ ॥

---

१ अथात संप्रवक्ष्यामि गृहबिंबस्य लक्षणम् । एकांगुल भवेच्छ्रेष्ठं द्व्यंगुलं धननाशनम् ॥ त्र्यंगुले जायते वृद्धि पीडा स्याच्चतुरंगुले । पंचांगुले तु वृद्धि स्यादुद्वेगस्तु षडंगुले ॥ सप्तांगुले गवा वृद्धिर्हानिरष्टांगुले मता । नवांगुले पुत्रवृद्धिर्धननाशो दशांगुले ॥ एकादशांगुल विंब सर्वकामार्थसाधकम् । एतत्प्रमाणमाख्यातमत ऊर्ध्वं न कारयेत् ॥ इति ग्रंथांतरेऽप्युक्तम् ।

२ द्वादशांगुलपर्यंते यवाष्टांशानतिक्रमात् । स्वगृहे पूजयेद्बिंब न कदाचित्ततोऽधिकम् ॥

श्रुतेन सम्यग्ज्ञातस्य व्यवहारप्रसिद्धये। स्थाप्यस्य कृतनाम्नोंतःस्फुरतो न्यासगोचरे ॥ ८४ ॥
साकारे वा निराकारे विधिना यो विधीयते।न्यासस्तदिदमित्युक्त्वा प्रतिष्ठा स्थापना च सा॥८५

इति प्रतिष्ठालक्षणम्।

स्थाप्यं धर्मानुबंधांगं गुणी गौणगुणोथवा। गुणो गौणगुणी तत्र जिनाद्यन्यतमो गुणी ॥ ८६ ॥
गुणो निःस्वेदतादिः स्याद्बाह्यो ज्ञानादिरांतरः। सोऽर्हतां पंचकल्याणद्वारेणादौ प्रपच्यते॥८७॥
गर्भावतारजन्माभिषेकनिष्क्रमणोत्सवान्। वृत्तान् ज्ञानशिवोद्भवौ भाव्यौ बिंबेर्हतोर्पयेत्॥८८॥
कल्याणे प्रथमे श्रैदी रत्नवृष्टिस्तथोपदा। मातुःश्र्यादिकृतागर्भशोधनादिरुपासना ॥ ८९ ॥

जिसकी स्थापना करना हो उसका स्वरूप शास्त्रसे अच्छीतरह जानकर व्यवहारमे प्रसिद्धिकेलिये पाषाण आदिमे उसके गुणोंके स्मरण करनेको नाम रखना। चाहें वह उसी तरहके आकारवाली मूर्ति हो। या निराकार हो उसे ही प्रतिष्ठा अथवा स्थापना कहते हैं॥८४॥ ॥ ८५ ॥ जिसकी स्थापना की जावे वह गुणी धर्मका कारण हो। उसमे भी अर्हतके गुण बाह्य निःस्वेदता (पसेव रहितपना) आदि हो तथा अंतरंग ज्ञानादि हों। इसी तरह जिसकी मूर्ति हो उसमे उसीके गुणोंकी स्थापना करनी चाहिये। यहांपर सबसे पहले तीर्थंकर प्रभुकी पञ्चकल्याणकोंके द्वारा प्रतिष्ठाविधि वर्णन करते हैं॥८६।८७॥ गर्भावतरण, जन्माभिषेक, तप कल्याणक ज्ञानकल्याणक और मोक्षकल्याणक–ये पंचकल्याणक अर्हतकी प्रतिमामें स्थापनकरे। अर्थात् अप्रतिष्ठित अर्हत प्रतिमाके पांचो कल्याणउत्सव विधिपूर्वक करे ॥ ८८ ॥ पहले गर्भा-

स्वप्नानंदानुबंधश्च प्रभूष्णोर्गर्भसंक्रमः। स्वप्नावलोकनं मातुस्तत्फलश्रवणं तथा ॥ ९० ॥
गर्भशोधनशुश्रूषे देवीभिर्गर्भसंक्रमः। सांगसर्गक्रमः पित्रोः स्थाप्याचेंद्रेशतत्क्रिया ॥ ९१ ॥
द्वितीये स जगत्क्षोभानंदं जन्म जिनेशिनः। निःस्वेदत्वाद्यतिशया विजयाद्यमरीकृते ॥ ९२॥
जनन्युपासनाजातकर्मणी त्रिदशागमः। शच्यार्हतोर्पणं पत्युः सुमेरौ नयनं सुरैः ॥ ९३ ॥
स्नपनं चर्चनं भूषा नामकर्म स्तवक्रिया। नृत्यं नगर्यानयनं राजांगणनिवेशनम् ॥ ९४ ॥
संनिधापनमंबायाः स्तुतिः प्राभृतनर्तने। रक्षादिकं राज्यभोगभुक्तिःस्थाप्येंद्रसेवया ॥ ९५ ॥

वतरण कल्याणकमे कुबेरकृत रत्नोकी वर्षा, देवियोसे की गई माताकी सेवा, श्री आदि षट् कुमारिका देवियोसे की गई गर्भशोधना, स्वप्नोंके देखनेके बाद पतिके पास फल सुनना उसके सुननेसे माताको आनंद, होनेवाले तीर्थकरका गर्भमे आना और इंद्रकर कीगई माता पिताकी पूजा—इतनी विधियां करनी चाहिये ॥ ८९।९०।९१ ॥ दूसरे कल्याणकमे—जगतमे क्षोभ होना आनंद होना, जिनेन्द्र तीर्थकरका जन्म होना, निःस्वेदता आदि जन्मके दश अतिशयोका प्रगट होना, विजया आदि देवियोकर माताकी सेवा जातकर्म संस्कार देवोंका आना, इंद्राणीकर भगवान बालकको इंद्रकी गोदमें सोंपना, भगवान बालकको सुमेरु पर्वतपर लेजाना ॥ ९२।९३ ॥ वहां देवोकर स्नान कराना, आभूषण पहराना, नाम रखना, प्रभुकी स्तुति करना, नृत्य करना नगरीमें लाना राजमहलके आंगनमे पहुंचना माताको बालक सुपुर्द करना फिर इंद्रको नृत्य करना प्रभुकी सेवाकेलिये देवोंको छोड

स्थाप्यस्तृतीये निर्वेदस्तत्प्रशंसा सुरर्षिभिः। दीक्षावृक्षाः सुरैः स्नानाद्युपकारो वनायनम् ९६
दीक्षाग्रहणमिंद्रेण केशप्रत्येषणादिकम्। वस्त्रादित्यजनं ज्ञानचतुष्कोद्भासनं क्रिया ॥ ९७॥
कार्या कल्याणसंस्कारमालामंत्राधिरोपणम्। प्रियंगु सज्जनादीनि तिलकं चाधिवासना ९८
श्रीमुखोद्घाटनं तुर्ये नेत्रोन्मीलनमर्हतः। स्थाप्याश्चांतर्गुणा घातिक्षयजातिशयास्तथा ॥ ९९ ॥
आस्थानमंडलं देवोपनीतातिशयाः पुनः। प्रतिहार्याष्टकं चिह्नं यक्षः शासनदेवता ॥१००॥
कल्याणपंचकारोपव्यक्तिः कंकणमोक्षणम्। सा जाद्भावकृतिःकृत्या महार्घस्यावतारणम् १०१

जाना प्रभुको राज्य भोगना—ये सब विधियां करनी चाहिये ॥ ९४।९५ ॥ तीसरे कल्याणकमें भगवानको वैराग्य होना, लौकांतिक देवोंकर स्तुति, दीक्षावृक्ष, देवताओंकर कराया गया स्नान, पालकीमें विठाके वनको लेजाना भगवानकर स्वयं दीक्षाग्रहण, इंद्रकर लुंचितकेशोंको रत्नपिटारीमें रखके क्षीरसमुद्रमें क्षेपण करना वस्त्रादित्याग, चौथे (मनःपर्यय) ज्ञानका प्रगट होना ॥ ९६। ९७ ॥ अडतालीस मालामंत्रोंका जाप करना इत्यादि ॥ ९८ ॥ चौथे कल्याणकमें—भगवानके मुखका उघाडना नेत्रोन्मीलनक्रिया घातिया कर्मोंके क्षयसे उत्पन्न हुए अनंत ज्ञानादिगुणोंका स्थापन समवशरण वनाना तथा अशोक वृक्षादि अतिशयोंका प्रगट करना आठ प्रातिहार्य यक्ष शासनदेवता—इनको समीप रखना महान अर्घ देना दिव्यध्वनि होना—इत्यादि क्रिया करनी चाहिये ॥ ९९ ॥ ॥ १००।१०१ ॥ पांचवें कल्याणकमें—आठ पत्रोंमें आठ गुणोंको लिखके और पूजके मोक्ष-

तत्कल्याणक्रिया चांत्ये मध्येऽज्ववस्थाभवं गुणान्।पत्रेष्वष्टसु चाभ्यर्च्य ध्मावाचार्यां शिवक्रिया।
समालाद्युत्सवा कार्या ततश्चाभिषवक्रिया । मरुद्विसर्गबल्याशीर्दीक्षामोक्षक्षमापणाः ॥१०३॥
प्रतिष्ठोक्तविधिं सम्यग्विधायारोपयेद् ध्वजम्।प्रासादे तेन भात्येष सर्वेषां स्याच्छुभाय च१०४
स्थाप्यं तु विंबे सिद्धानां सम्यक्त्वादिगुणाष्टकम्।रत्नत्रयं च विधिवच्छेषाणां स्वस्वमंत्रतः१०५
सर्वज्ञवागभिव्यक्तानेकांतात्मार्थसार्थवत् । न्यसेद्वाग्देवतार्चादावंगपूर्वप्रकीर्णकम् ॥ १०६ ॥

क्रिया करनी चाहिये ॥ १०२ ॥ फिर फूलमालाका उत्सव करके प्रभुका अभिषेक करे फिर देवताओंका विसर्जन रथयात्रा संघपतिको आशीर्वाद यज्ञ दीक्षाका छोडना और आये हुए सब सज्जनोंसे क्षमावनी करना ॥ १०३ ॥ इस तरह प्रतिष्ठाशास्त्रमें कही विधिको अच्छी तरह करके जिन मंदिरके ऊपर ध्वजा चढाये। उस ध्वजासे जिन मंदिरकी एक तो शोभा होती है दूसरे राजा प्रजा सबको कल्याण होता है ॥ १०४ ॥ इसप्रकार अर्हंत प्रतिमाकी विधि संक्षेपसे कही गई। इसका विस्तार आगे कहेंगे। अब सिद्ध आदिकी मूर्तिकी प्रतिष्ठाका विधान कहते हैं—सिद्धोंकी प्रतिमामें सम्यक्त्व आदि आठ गुणोंका स्थापन करे और बाकी आचार्य आदि परमेष्ठियोंकी प्रतिमामें विधिपूर्वक अपने २ मंत्रसे सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक् चारित्र इन तीन रत्नोंका स्थापन करे ॥ १०५ ॥ सर्वज्ञके मुखकमलसे निकली हुई, गणधरोंकर प्रगट किया गया है अनेकांत स्वरूप पदार्थोंका समूह

१ शक्तिके माफिक द्रव्य देकर भगवानके नामसे फूलमाला लेकर चढाना।

अनंतार्थाक्षरात्मानं पुस्तकार्थमनुस्मरन् । संशोध्य पुस्तकं तच्च वाग्मंत्रेण प्रतिष्ठयेत्॥१०७॥
ध्यात्वा यथास्वं गुर्वादीन्न्यस्येत्तत्पादुकायुगे।निषेधिकायां संन्याससमाधिमरणादि च १०८
यक्षादिप्रतिविंबेषु यंत्रं प्राच्यं च विन्यसेत्।प्रहे तार्कोदये ध्यायन् जात्यादीन् यक्षकर्दमम्१०९
सिद्धचक्रादिपत्रादिप्रतिष्ठाप्येवमूह्यताम् । ग्राह्यः प्राणो ग्रहश्चेंदोः शांते क्रूरे च भास्वतः ॥११०॥

इति प्रतिष्ठेयलक्षणम् ।

जिसका ऐसी सरस्वती देवीकी पूजामें अंग, पूर्व (चौदह पूर्व) प्रकीर्णक (बाह्य अंग) स्वरूप अनंत अर्थ अक्षर स्वरूप शास्त्राकार रचना कराके और उस शास्त्रको सुधवाके सरस्वतीमंत्रसे उसकी प्रतिष्ठा करे । यह शास्त्रप्रतिष्ठा हुई ॥ १०६।१०७ ॥ अब गुरुकी प्रतिमाकी प्रतिष्ठा विधि कहते हैं,—निर्ग्रंथादि गुरुओंका ध्यान करके और उनके संन्यास (समाधि) मरणकी छतरी (एक तरहका मठ) बनवाके उनके चरण युगल (दो) बनावे ॥१०८॥यक्षादि प्रतिमाओंकी प्रतिष्ठामें पंचवर्णके चूर्णसे लिखे यंत्रको सूर्योदयमें चमेली आदि-के पुष्पोंसे पूजे और ध्यावे ॥१०९॥ पत्रपर लिखे हुए सिद्धचक्र यंत्र तथा आदि शब्दसे जंबू-द्वीप त्रैलोक्य श्रुतस्कंध नंदीश्वर आदि लिखे यंत्रोंकी भी प्रतिष्ठा इसी तरह जानना चाहिये ।

---

१ कर्पूरमगुरुश्चैव कस्तूरी चदनं तथा । कंकोलं च भवेदेभिः पंचभिर्यक्षकर्दमम् ॥ २ अनावृतादि यक्ष पद्मावती यक्षीकी प्रतिमा । ३. कपूर अगुरु कस्तूरी चदन ककोल—इन पांचोंको पीसके बनाया गया चूर्ण ।

देशजातिकुलाचारैःश्रेष्ठो दक्षः सुलक्षणः।त्यागी वाग्मी शुचिः शुद्धसम्यक्त्वःसद्व्रतो युवा॥१११
श्रावकाध्ययनज्योतिर्वास्तुशास्त्रपुराणवित्। निश्चयव्यवहारज्ञः प्रतिष्ठाविधिवित्प्रभुः ॥ ११२॥
विनीतः सुभगो मंदकषायो विजितेंद्रियः।जिनेज्यादिक्रियानिष्ठो भूरिसत्त्वार्थबांधवः॥११३॥

शांत देवताकी प्रतिष्ठामे चंद्रप्राण (वांया नाकका स्वर) लेना और क्रूर देवताकी प्रतिष्ठामे सूर्यप्राण (सीधा नाकका स्वर) लेना। चंद्रप्राण और सूर्यप्राणको ही वामनाडी, दक्षिण नाडी कहते हैं ॥११०॥ इसप्रकार प्रतिष्ठायोग्यका लक्षण कहा। अब प्रतिष्ठा करनेवाले प्रतिष्ठाचार्यका लक्षण कहते हैं,-प्रतिष्ठा करनेवालेको सौधर्म इंद्र समझना चाहिये। वह कैसा होवे यह कहते हैं । जिन धर्मकी प्रभावनावाले देशमे उत्पन्न हुआ हो मातापक्ष और पितापक्ष दोनो जिसके उत्तम हों,शास्त्राचार लोकाचार दोनोंको पालने वाला हो,दूसरेका अंतरंग जाननेमें चतुर हो, सामुद्रिक शास्त्रमे कहे गये शरीरके शुभ चिन्होंवाला हो,दानी हो । मिष्ट बोलनेवाला, मन वचन कायसे शुद्ध, निर्दोष सम्यक्त्ववाला, निर्दोष पांच अणुव्रत पालनेवाला और सोलह वर्षसे अधिक उमरवाला जवान हो॥१११॥ श्रावकाचार, चंद्रप्रज्ञप्ति आदि ज्योतिषशास्त्र, स्थलगतचूलिकामें कहेगये महल आदि बनानेके विधानवाले शिल्पिशास्त्र और पुराण(इतिहास)शास्त्रोंका जाननेवाला हो,निश्चयनय व्यवहार-इन दोनोंको जाननेवाला,प्रतिष्ठा विधिका जाननेवाला और तेजस्वी हो ॥११२॥ आयु तप विद्या कुलाचारादिसे अधिक जनोंकी विनय करनेवाला, सबको

१ लोको देश पुर राज्य तीर्थ दान तपोद्वयं । पुराणस्याष्टधाख्येयं गतयः फलमित्यपि ॥

दृष्टसृष्टक्रियो वार्तः संपूर्णांगः परार्थकृत्। वर्णी गृही वा सद्वृत्तिरशूद्रो याजको घुराट्॥११४॥
गुणिनोऽप्यगुणे व्यर्था गुणवत्यगुणा अपि। याजकेऽन्ये कृतार्थाः स्युस्तन्मृग्योऽसौ स्फुरद्गुणः॥११५

प्यारा, मद क्रोध मान माया लोभरूप कषायोंवाला अर्थात् शांत स्वभाववाला, खोटे विषयोंसे इंद्रियोंको रोकनेवाला जितेंद्री, जिनपूजा आदि छह आवश्यक गृहस्थके कर्मोका करनेवाला, दृढ प्रतिज्ञावाला महान् धनवान् वहुत कुटुंववाला हो॥ ११३॥ जिसने प्रतिष्ठाविधि जाननेवालोंसे कराई गई प्रतिष्ठा देखी हो अथवा आप अपने हाथसे की हो, शिल्प आदि विद्यासे जीविका नही करनेवाला, हीन अधिक शरीरके अवयवोंसे रहित संपूर्ण अंगवाला हो, उत्तम प्रयोजन अथवा पराया उपकार करनेवाला हो, आठमूल गुण और वारह उत्तर गुणवाला पहले–ब्रह्मचर्य आश्रमवाला हो या गृहस्थाश्रमवाला हो, ग्रहणकरने योग्य वस्तुको ग्रहण करनेवाला सदाचारी हो शूद्र वर्ण न हो ब्राह्मणादि तीन उत्तम वर्णोंका धारक हो॥ ऐसा प्रतिष्ठा करनेवाला इंद्रसमान प्रतिष्ठाचार्य कहा गया है॥ ११४॥ प्रतिष्ठाविधि करनेवाला आचार्य यदि अपने पूर्वोक्त गुणसहित न हो तो गुणवान् यजमानका भी सर्व नाश कर देता है और पूर्वोक्तगुणोंवाला हो तो गुणरहित–निर्गुणी, प्रतिष्ठामें धन खर्च करनेवाले यजमानको भी कृतार्थ करदेता है–उसके प्रयोजनोंको सिद्ध करदेता है। इसलिए

१ वानप्रस्थ और भिक्षुको प्रतिष्ठा करानेका निषेध है दूसरी जगह ऐसा भी कहा है कि चौथी प्रतिमासे आठवीं प्रतिमा तक पांच प्रतिमावालोंमें कोई हो वही अधिकारी है।

पाक्षिकाचारसंपन्नो धीसंपद्वंधुबंधुरः । राजमान्यो वदान्यश्च यजमानो मतः प्रभुः ॥ ११६ ॥
ऐदंयुगीनश्रुतधृद्धुरीणो गणपालकः । पंचाचारपरो दीक्षाप्रवेशाय तयोर्गुरुः ॥ ११७ ॥

इति इंद्रादिलक्षणम् ।

निश्चित्य लग्नमासन्नं दिवसेषु कियत्स्वपि।सुमुहूर्ते प्रतिष्ठार्थं दातेंद्रं स्वगृहं नयेत् ॥ ११८ ॥

प्रतिष्ठाचार्य उत्तम गुणोंवाला ढूंढना चाहिये और उसीसे प्रतिष्ठा कराना चाहिये अयोग्योंसे कभी नहीं कराना ॥ ११५ ॥ अब प्रतिष्ठामें धन खर्चनेवाले यजमानका लक्षण कहते हैं— पांच पाप तीन मदिरा आदि मकार-इन आठोंको त्यागरूप आठमूलगुण स्वरूप पाक्षिक आचारका धारण करनेवाला हो ज्ञानवैराग्य सहित हो बहुतधन और बंधुजन जिसके अधिकारमें हो लोकमान्य हो राजासे जिसने संमान (इज्जत) पाया हो उदार चित्तवाला दानी हो–ऐसा यजमान होना चाहिए ॥ ११६ ॥ अब दीक्षा देनेवाले आचार्यका स्वरूप कहते हैं—व्यवहार शास्त्रको जानने वाला, श्रुतज्ञानियोंमें मुख्य, साधुसंघका पालनेवाला दर्शनाचार आदि पांच आचारोंके पालनेमें लीन–ऐसा आचार्य; यजमान और प्रतिष्ठाचार्यको इस प्रतिष्ठा करानेकी दीक्षा देनेवाला गुरु कहा गया है ॥११७॥ इस प्रकार इंद्र (प्रतिष्ठाचार्य) यजमान (प्रतिष्ठामें धन खर्चनेवाला) और इस प्रतिष्ठाकार्य करनेकी दीक्षा देनेवाले आचार्यका

---

१ प्रियवाग् दानशीलश्च वदान्यः परिकीर्तितः ।

पुरोगाक्षतपात्रोद्धयोषित्साधर्मिकान्वितः।गत्वा गृहं महेंद्रस्य नत्वेदं पौर्तिको वदेत् ।११९।
न्यायेनोपार्ज्य संरक्ष्य संवर्ध्याहंन्महे धनम् ।विनियुज्य परं श्रेयः प्राप्तुमिच्छामि संप्रति १२०
क्वैतच्च सुमहत्साध्यं क्व चार्यं स्वल्पको जनः।तथाप्यत्र यते योग्या यदि स्युः सहकारिणः १२१
योग्यता चासकृद् दृष्टकर्मणां वोत्र गम्यते। किं परार्थैककार्याणां वः प्रत्यन्यद्वाच्यमस्त्यतः१२२

स्वरूप वर्णन किया। अब इंद्रप्रतिष्ठाकी विधि कहते हैं–प्रतिमा आदिकी प्रतिष्ठा करानेमें धन खर्च करनेवाला यजमान, प्रतिष्ठाके सात आठ दिन वाकी रहनेपर जल्दी आनेवाली शुभ लग्नका निश्चय करके प्रतिष्ठाकी विधि करानेकेलिये शुभ मुहूर्तमें प्रतिष्ठाचार्य–इंद्रके घरको बुलानेके लिये जावे ॥ ११८ ॥ उससमय ऐसे ठाठसे जावे कि स्त्रियां तो अक्षत भरे हुए पात्र हाथमें लिये गातीं हुई आगे जा रहीं हो और साथमें साधर्मी भाई हो। इसप्रकार यजमान प्रतिष्ठाचार्य–इंद्रके घर जाके उसे प्रणाम कर ऐसी प्रार्थना (वीनती) करे॥११९॥ हे जितेंद्रिय! मैंने न्यायसे धन पैदाकर इकट्ठा किया है और उसकी अच्छीतरह रक्षा की है अब मैं उसे अर्हतबिंब प्रतिष्ठाके उत्सवमें लगाकर उत्तम सुख प्राप्त करना चाहता हूं ॥ १२० ॥ कहां तो महान् कठिन यह कार्य और कहां तुच्छ शक्तिवाला मैं, सुमेरु सरसोंका सा फरक है तौ भी आप सरीखे योग्य सत्पुरुष सहायक मिल जांयगे तो वांछित कार्य अवश्य सिद्ध हो जाइगा ॥ १२१ ॥ आपका कईवार यह प्रतिष्ठाकार्य देखा

१ वापीकूपतडागदेवतागृहअन्नपानआराम इत्यादिकं पूर्तं तत्र नियुक्तः पौर्तिकः यजमानः।

११९ संख्यारी उलटके।

इत्यभ्यर्थनया कार्यमंगीकार्य तमालयम् । स्वमानीय चतुष्कोणज्वलद्दीपे सुपूरिते ॥ १२३ ॥
चतुष्के रक्तसद्वस्त्रप्रच्छादितसुविष्टरे । उपवेश्य नदद्वाद्यनादसंगीतमंगलैः ॥ १२४ ॥
कुल्याभी रक्तवस्त्रस्रग्भूषाकाश्मीरचारुभिः । युवतीभिश्चतसृभिश्चंदनं तस्य वर्धयेत् ॥ १२५ ॥
ततः स तैलमारोप्य पीतोद्वर्तनपूर्वकम् । तीर्थमालापाठजिनाद्याशीर्वादरवाकुलम् ॥ १२६ ॥
पीतखल्यापोह्य तैलं परिषेच्य सुखांबुभिः ।सुभोज्यावर्ज्य भूषास्रग्वस्त्रचंदनवंदनैः ॥ १२७ ॥

जाना हुआ है इसलिये आपकी ही योग्यता बहुत अच्छी है । दूसरी बात यह है कि आप दूसरोंका वांछित प्रयोजन सिद्ध कर देते हैं इसलिये हम आपको अधिक क्या कह सकते हैं ॥ १२२ ॥ ऐसी प्रार्थना करके प्रतिष्ठाकार्य करनेकी स्वीकारता (मंजूरी) कराके प्रतिष्ठाचार्य (इंद्र) को अपने घर लाये । वहां चौकी बिछाकर उसपर सिंहासन रक्खे और चौमुखी दीपक जलावे । सिंहासनपर लाल वस्त्र बिछावे उसपर इंद्रको बिठाकर गीत नृत्य बाजोंके साथ लालवस्त्र माला आभूषण चंदनसे शोभायमान चार सधवा जवान स्त्रियोंसे चंदन अंगपर लगवावे ॥ १२३।१२४।१२५ ॥ फिर जिन आदिकी आशींवाद बुलवाता हुआ उस इंद्रके अंगमे पीले उवटने सहित तैल लगवावे फिर पीली खलिसे अंगका तेल दूरकर प्रासुक जलसे स्नान करावे । पुनः स्वादिष्ठ भोजन कराके आभूषण कपड़े चंदन माला आदिसे सजावे । पश्चात् प्रतीद्र सहित उस इंद्रको हाथी या घोड़ेपर चढाकर जैनमंदिरमें लेजावे । उस समय 'निसिहि' ऐसा उच्चारण करके जिनमंदिरमें प्रवेश करे (घुसे) और

सप्तर्तीद्रं तमारोप्य द्विपं चैत्यालयं नयेत्।निसिहीत्युच्चरन्नेष तं प्रविश्य जिनेश्वरम्॥१२८॥
दर्शनस्तोत्रपाठेन त्रिःपरीत्य त्रिरानतः। कृतेर्यापथशुद्धिस्तं श्रुतं सूरिं समर्च्य च ॥ १२९ ॥
साधर्मिकैः परिवृतः सर्वसंघसमक्षतः। जिनाग्रे याजकतया सौधर्मेन्द्रोसि सोधुना ॥ १३० ॥
इत्युच्चैर्वदता दत्तान् समंत्रान् गुरुणाक्षतान्। स्वीकृत्यांजलिनोपांशु मंत्रमुच्चार्य नामितः १३१
स्वमूर्ध्नि विन्यसेत्सोहं सौधर्मेन्द्र इति ब्रुवन्। प्रतिपद्येत चाष्टाहं सैकभक्तं सुनिर्मलम् ॥ १३२ ॥
ब्रह्मचर्यं विविक्ते च सुप्यात्सद्भावनारतः। शलाकापुरुषाख्यानध्यानस्वाध्यायभाग्भवेत् १३३

जिनेंद्र देवकी दर्शन स्तुतिपाठ पूर्वक तीन परिक्रमा देवे और तीनवार नमस्कार करे। फिर ईर्यापथशुद्धि करके शास्त्र और आचार्यकी पूजाकर साधर्मियोंकर घिरा हुआ सब संघके आगे जिनेंद्रदेवके सामने पूजकपनेसे इंद्रको ऐसा कहे कि तुम अब सौधर्म इंद्र हो ऐसा ऊंचेस्वरसे बोले। उस समय इंद्र भी दीक्षागुरुसे दिये गये मंत्रित हुए अक्षतोंको अंजलिमें लेके फिर आप ओं ह्रीं आदि मंत्र पढके मैं वही सौधर्म इन्द्र हूं ऐसा कहता हुआ उन अक्षतोंको अपने मस्तकपर रखे ॥ १२६ । १२७ । १२८ । १२९ । १३० ॥ ॥ १३१ । १३२ ॥ वह इंद्र आठदिनतक एकवार भोजन करे, निर्दोष ब्रह्मचर्य पाले और श्रेष्ठ

---

१ ओं ह्रींऽर्हं असिआउसा णमो अरहंताण अनाहतपराक्रमस्ते भवतु ह्रीं नम स्वाहा। एष मंत्रो गुरुणा प्रयोज्यः।
२ इंद्रेण पुनरत्रैव ते स्थाने मे इति प्रयोज्यम्।

इतोऽग्रे टिप्पणी मन्त्र पठनीय।

प्र
स्व
प८
अ
भवतु

परमेष्ठिश्रुतगुरूनेव वंदेत वर्जयेत्। साधर्मिकसजातीयैरपि पंक्तिं च भोजने ॥ १३४ ॥
तदा प्रभृति यष्टापि ब्रह्मयाजकवच्चरेत्। आयज्ञांतं विशेषेण तदाज्ञां च न लंघयेत् ॥ १३५ ॥
प्रतिष्ठासूचकैर्लेखैः संघं देशांतरादपि। आकारयेद् व्रजेद् द्रष्टुं तां संघोपि यथाबलम्॥१३६॥
वेदीनिवेशादारभ्य यावद्यज्ञांतमात्मवान्। धर्मकारी गुणौचित्यकृपादानपरो भवेत् ॥१३७॥
गर्भरूपो विनेयोस्मीत्याक्षिप्तो गुरुभिर्वदेत्।आक्रुष्टो याचकैश्रेष्टदाने वोस्मि कियानिति॥१३८॥

भावनाओंमे (विचारोंमे) लीन हुआ एकांत जगहमें सोवे और त्रेसठ शलाका पुरुषोंके चरित्रका स्वाध्याय तथा शुभ ध्यानमें लीन रहे ॥१३३॥ पंच परमेष्ठी जैन शास्त्र जैन गुरुओंको ही नमस्कार करे। और अपनी जातिके साधर्मियोके साथ भी एक पंक्तिमें बैठकर भोजन न करे॥ १३४ ॥ उसी समयसे वह यजमान भी प्रतिष्ठाचार्यकी तरह एकवार भोजन ब्रह्मचर्यादिका आचरण करे और पूजाके उत्सवकी समाप्ति तक नियमसे इंद्रकी आज्ञाको पाले, उलंघन नही करे ॥१३५ ॥ वह यजमान प्रतिष्ठाको जाहिर करनेवाले लेखोसे (कुंकुम पत्रिकाओंसे) दूसरे देशोंसे भी सब साधर्मी भाइयोंको बुलावे। पत्रीके पहुंचते समय वे साधर्मी भाई भी अर्हतप्रतिष्ठा देखनेकेलिये शक्तिके माफिक अवश्य जावें ॥ १३६ ॥ वह यजमान वेदी प्रतिष्ठासे लेकर बिंबप्रतिष्ठा तक आत्मज्ञानी होके धर्मके कार्य करता रहे और गुणी जनोंको यथायोग्य दानादि देता रहे और दुःखितोंको करुणादान दे ॥ १३७ ॥ गुरुओंके सामने ऐसा कहे कि मैं नया ही चेला हूं जो कुछ भूल हो

याजका यष्टृवत्सर्वे श्रावकैरपरैरपि। संभाव्या भक्तितः संघोप्याराध्यो धर्मकाम्यया॥ १३९॥
दातृसंघनृपादीनां शांत्यै स्नात्वा समाहिताः।शांतिमंत्रैर्जपं होमं कुर्युरिंद्रा दिने दिने ॥१४०॥
देशकालानुसारेण व्यासतो वा समासतः। कुर्वन् कृत्स्नां क्रियां शक्रो दातुश्चित्तं न दूषयेत् ॥
यथोक्तनिगदद्रव्यैः प्रयुक्तैर्व्यासतः क्रिया। मंत्रमात्रयथाप्राप्तद्रव्यैश्चेष्टा समासतः ॥ १४२ ॥

इति इंद्रप्रतिष्ठा।

वह क्षमा करें और याचकों (मांगनेवाले) से ऐसा कहे कि तुमको इच्छित दान देनेकी मुझमें शक्ति नहीं है ॥ १३८॥ अन्य श्रावक भी उस यजमानकी प्रशंसा करें कि तुमने बहुत अच्छा किया और यह यजमान भी धर्मकी इच्छा रखता हुआ आये हुए सब साधर्मियोंका भक्तिपूर्वक सत्कार करे ॥ १३९ ॥ वे इंद्र प्रतींद्र भी दाता, श्रावकसंघ और राजा आदिको शांति (सुख) मिलनेके लिये प्रतिदिन स्नानकरके शांतिमंत्रोंसे जप और होम अवश्य करें ॥ १४० ॥ वह इंद्र देश और कालका विचार करके विस्तारसे या संक्षेपसे सब प्रतिष्ठाकी क्रियाओंको इसतरह करे कि जिसमें दाता (यजमान) का दिल न दुःखी हो अर्थात् दाताका उत्साह नष्ट न हो और न क्रोध (गुस्सा) उत्पन्न हो ॥ १४१ ॥ यदि शास्त्रमें विस्तारसे कही हुई सब चीजोंके लानेमे खर्च करनेकी सामर्थ्य हो तब तो विस्तारसे प्रतिष्ठाविधि करे अगर उसमे अधिक खर्च करनेकी शक्ति न हो तो शक्तिके माफिक जितना खर्च करसके

इदानीं मण्डपादिनिर्माणमाह-/

सज्जयित्वोपकरणान्याचार्यः कार्यसिद्धये। कृत्वा शांतिविधानं च सूत्रयेन्मंडपादिकम्॥१४३॥
खातेऽधःशोधिते पूर्णे समीकृत्य पवित्रिते। भूभागेऽर्हन्मृजांभोभिश्चारुक्षीरद्रुदारुभिः ॥१४४॥
शुभेह्नि मंडपं चित्रवस्त्रच्छन्नं विधापयेत्। त्र्यादित्रिवर्द्धिष्णुचतुर्विंशत्यंतकरप्रमम् ॥ १४५ ॥
प्रोल्लसच्छल्लकीरंभास्तंभध्वजदलस्रजम्। चतुर्द्वारोर्ध्वकोणस्थशुभ्रकुंभाष्टकोद्भटम् ॥ १४६॥

उसके अनुसार ही संक्षेपसे प्रतिष्ठाविधि करनी चाहिये ॥ १४२ ॥ इसप्रकार इंद्रप्रतिष्ठा-विधि समाप्त हुई। अब मंडप आदि बनानेकी विधि कहते हैं—प्रतिष्ठाचार्य सब सामग्री तयार करके मंडपादिकी निर्विघ्न रचना समाप्तिके लिये लघु या बृहत् शांतिविधान करके मंडप वेदी आदिकी रचना करावे ॥ १४३ ॥ वह इसतरह है कि पहले तो जमीन खुदावे पीछे उसे सोधकर मट्टीसे भरके समतल करे फिर अर्हंत प्रतिमाके गंधोदकसे छिडके। उसके बाद सुंदर—ऊपरसे सूखा कीडे आदिसे नहीं खाया हुआ ऐसा जो उदुम्बर पीपल आदि क्षीरवृक्ष उसकी लकडीसे तथा पांचरंगोवाले वस्त्रसे शुभ मुहूर्तमें मंडप तयार करावे और कमसे कम तीन हाथका मंडप होना चाहिये और एक हाथकी वेदी बननी चाहिये। यह संक्षेप विधि करनेमें जानना। और अधिक विधि करनी हो तो तीन तीन हाथ बढाते जाना अर्थात् छह हाथका मंडप और दो हाथकी वेदी करना। इसतरह सबसे अधिक चौवीस हाथका मंडप और आठ हाथकी वेदी बनाना चाहिये। यह विस्तार विधि करनेके समय जानना ॥१४४॥ ॥ १४५ ॥ उस मंडपमें सल्लकी वृक्ष और केलाके वृक्षके खंभे हों, धुजा हरे पत्तोंकी माला-

तोरणोदारसौंदर्यं नानारत्नांशुकांचितम्। प्रलंबिमुक्तालंबूषहारस्त्रक्तारिकोज्ज्वलम् ॥ १४७ ॥
चंदनच्छटया सिक्तं पुष्पप्रकरदंतुरम् । मुक्तास्वस्तिकविन्यासरंगावलिमनोहरम् ॥ १४८ ॥
कलशादर्शभृंगारयावारादिरमाकुलम् । संधूपधूमगंधांधभृंगझंकारकोमलम् ॥ १४९ ॥

इति मंडपनिर्माणम् ।

अथ वेदी निर्माण —

पूते नवमतन्मध्यभागेऽर्हत्सवनांबुना । एकाद्यष्टांतहस्तासु नंदाद्याख्यासु वेदिषु ॥ १५० ॥

थें चकचकाट कर रही हों चार दरवाजे हों उन दरवाओंके ऊपरकी चोटीपर चूनासे लेप किये गये आठ घड़े रक्खे गये हो ॥ १४६ ॥ वह मंडप शोभायमान वंदनवारोंसे रमणीक हो, माणिक्य आदि पांचरत्नोंसे जड़े हुए कपड़ेसे पूजित हो यानी जरी (सलमासितारा) के बने हुए चंदोएसे चमक रहा हो, मोतियोंके झूमका–हार-मालाओंसे तथा कांसे आदिकी बनी हुई घंटरियोंसे बहुत प्रकाशमान हो । घिसे हुए चंदनकी छींटोंसे युक्त, पुष्पोंसे शोभायमान, मोतियोंके सांतियोकी रचनासे तथा अनेक रंगोकी रचनाओंसे शोभित हो। कलश (घडा) दर्पण, झाडी, बोये हुए जौके अंकुर, छत्र चमर आदि सामग्रीसे सुंदर हो, काले अगर आदिकी बनी हुई दशांग धूपके धुंआंकी सुगंधीसे मस्त हुए भ्रमरोंकी झंकारध्वनीसे रमणीक होना चाहिये ॥ १४७ ॥ १४८ ॥ १४९ ॥

इस प्रकार मंडप बनानेकी विधि समाप्त हुई ।

आगे वेदी बनानेकी विधि बतलाते हैं—अर्हतबिंबके गंधोदकसे नौमा मंडपको

यथास्वमामेष्टिकाभिः कार्या व्याससमायतिः। वेदीव्यासषडंशोच्चा चतुरस्रेशदिक्प्लवा ॥ १५१ ॥
शिलान्यासवदत्रार्चा कृत्वा पंचाममृद्धटान्। आक्रमंतीष्टिकाभिर्यद्वतानुगतिकैव सा ॥ १५२ ॥

इति वेदीनिवर्तनम्।

पूतमृद्गोमयक्षीरवृक्षत्वक्काथहस्तया। संमार्ज्य प्रोक्ष्य लेप्यासौ स्नातालंकृतकन्यया ॥ १५३ ॥

इति वेदीलेपनविधानम्।

मध्यका भाग पवित्र करके उसकी आठों दिशाओंमे नंदा १ सुनंदा २ प्रभा ३ सुप्रभा ४ मंगला ५ कुमुदा ६ पुंडरीका ७ इंद्रावेदी ८—इस तरह आठ वेदी एक हाथ चौड़ाईसे लेकर आठहाथ तक मंडपके अनुसार कच्ची ईंटोंसे वनवावे, चौडाईके समान लंबाई रक्खे, चौड़ाईसे छठे भाग उंचाई रक्खे तथा ईशानकोणमे कुछ नीची रक्खे-इस प्रकार चौकौन वेदी वनवावे ॥ १५० ॥ १५१ ॥ यहांपर शिला रखनेकी तरह पूजा करे और पांच कच्चे मट्टीके घड़े रक्खे ॥ यह पांच घड़े रखनेकी रीति परंपरासे जानना ॥ १५२ ॥ इस प्रकार वेदी बनानेकी विधि पूर्ण हुई। अब वेदीके लीपनेकी विधि कहते हैं-नदीके किनारेकी वामी आदिकी पवित्र मट्टी, पृथ्वीपर नहीं गिरा हुआ पवित्र गोवर और ऊंमर आदि वृक्षोंकी छालका वनाया काढा-इन तीनोंको हाथमे लिये स्नान आभूषणसे तयार ऐसी कन्याओंसे उस वेदीको झड़वाकर और प्रोक्षणमंत्रपूर्वक जलसे छिड़कवाकर लिपवाना

१ ओं क्ष्वां क्ष्वीं क्ष्वूं क्ष्वौं क्ष्वः प्रोक्षणजलाभिमंत्रणम्।

१ वेदीपीठनिर्माणप्राह-।

त्रयोदशांगुलोद्देशे तुर्यवेद्यास्तु कारयेत् । हस्तमात्राणि पीठानि दिक्ष्वन्यासां यथोचितम् १५४
प्राग्मंडपसमं वेदीकर्णिमात्राध्वसंगतम् । ईशानदिशि निर्माप्य मंडपं तत्र कारयेत् ॥ १५५ ॥
वेदीं तस्यैव चार्धेन त्रिभागेणाथवा मिताम् । भांडध्वजास्तोरणाद्यैश्च भूषयेन्मूलवेदिवत् १५६

इति उत्तरवेदीनिवर्तनं ।

चाहिये ॥ १५३ ॥ ओ क्ष्रां इत्यादि टिप्पणीमें मंत्र देखलेना । इस प्रकार वेदी लेपनकी विधि जानना । ईशानकोणकी वेदीको छोड़कर सातवेदियोंके आगे तेरह २ अंगुल जमीन छोड़के पूर्वादि चारों दिशाओंमें जयादि आठ देवियोंके पूजनके लिये चार छोटीं वेदीं वनावे । और वीचकी वेदीसे ईशान दिशाकी तरफ छोटा मंडप वनवावे, और उस मंडपके तीसरे भाग प्रमाण उत्तर वेदी वनवावे और उसे मूलवेदीकी तरह ध्वजा छत्र तोरण आदिसे सजावे ॥ १५४ ॥ १५५ ॥ १५६ ॥ इस तरह उत्तरवेदीकी रचना हुई । इसके वाद वह इंद्र स्वच्छ कपड़े माला आभूषण और चंदनका लेप–इन वस्तुओंसे सजा हुआ प्रतींद्र और प्रतिष्ठा करानेवाले दाताके साथ हाथी या घोड़ेकी सवारीपर चढके प्रतिष्ठाके पहले दिन सरोवर पर जावे । जिसके साथमें, श्रेष्ठ पत्तोंसे ढके हुए दूब दही अक्षतसे पूजित फलसे भरे हुए कंठमें मालायें डाले हुए मजबूत नवीन ऐसे घडोंको ऊपर रखनेवालीं सजीं हुईं प्रसन्नचित्त ऐसीं कुलीन स्त्रियां जा रहीं हो । और सब साधर्मी भाई तथा छत्र वाजे धुजा वगैर.से घिरा हुआ जगतको आश्चर्य करता वह इंद्र शांतिके लिये जौ और सरसोंको मंत्रसे मंत्रित करके

अथेंद्रो दिव्यवस्त्रस्रग्भूषागोशीर्षसंस्कृतः । प्रतींद्रदातृयुग्धुर्यं गजं वाश्वमधिष्ठितः ॥ १५७ ॥
सत्पल्लवच्छन्नमुखान् दूर्वादध्यक्षतार्चितान् । फलगर्भानवान् कुंभान् हृद्यान् कंठलुठत्स्रजः १५८॥
बिभ्रतीभिः सुवेशाभिः सहर्षाभिः पुरंध्रिभिः । सर्वसंघेन च वृत्तश्छत्रतौर्यत्रिकध्वजैः १५९
विश्वं विस्मापयन् शांत्यै सर्वतो यवसर्षपान् । मंत्राभ्यस्तान् किरन् गत्वा प्रतिष्ठाप्राग्दिने सरः
तस्मै दत्तार्घमाधाय तत्तीरे वास्तुवद्विधिम् । आह्वाननादिविधिना प्रसाद्य जलदेवताम् ॥१६१॥
पूरयित्वा जलैरास्यस्थापितश्र्यादिदेवतान् । ताभिरेव पुरंध्रीभिर्महाभूत्या तथैव तान् १६२॥
कुंभानानाय्य संस्थाप्य चैत्यगेहे सुरक्षितान् । तथैवोत्तरकृत्याय दातृमंदिरमाश्रयेत् ॥१६३॥

इति जलयात्राव्यावर्णनम् ।

चारो तरफ वखेर रहा हो ॥ १५७ । १५८ । १५९ । १६० ॥ उस सरोवरको अर्घ देकर उसके किनारे पहलेकी तरह आह्वानादि विधिसे जलदेवताको प्रसन्न करे ॥ १६१ ॥ उसके वाद उन घडोंको जलसे भरकर उनके मुखमें श्रीआदि देवियोंका स्थापनकर उन्हीं कुलीन स्त्रियोंके ऊपर रक्खे और उन घड़ोंको लाकर जिनमंदिरमें अच्छी तरह स्थापन करे । उसके वाद आगेकी क्रिया करनेके लिये यजमानके घरपर आवे ॥ १६२ । १६३ ॥ इस प्रकार जलयात्राविधि पूर्ण हुई । उसके वाद यजमान और वे इंद्र स्नान तथा पूजा करके साधर्मी भाइयोंको स्वादिष्ट

१ ओं हूं क्षूं फट् किरिटि घातय २ परविघ्नान् स्फोटय २ सहस्रखंडान् कुरु २ परमुद्राश्छिन्द २ परमंत्रान् भिंद २ क्ष क्षः हूं फट् स्वाहा । इति मंत्र ।

तत्रेंद्रा यजमानश्च स्नात्वाभ्यर्च्यार्हतोखिलम्। लोकं संतर्प्य भुक्त्वेष्टं सुस्वादन्नं हितं मितम्॥
कृतारात्रिकमांगल्याः स्वारूढवरवाहनाः। तां यागभूमिं गच्छेयुः सयज्ञांगपरिच्छदाः १६५
अभीष्टसिद्धिरस्त्वेवं वादिन्याः पथि सुस्त्रियाः। पाणिपात्रात्फलादींद्रो गृह्णीयाच्छकुनेच्छया॥
चैत्यालयप्रवेशादिविधिं प्राग्वद्विधाय ते। कृत्वा गुरोर्बृहत्सिद्धयोगभक्ती तदाज्ञया॥१६७॥
त्रिधोपवासमादाय बृहदाचार्यभक्तितः। प्रणम्य चरणद्वन्द्वं तस्य गृह्णीयुराशिषः॥ १६८॥

इति उपवासादानविधानम्।

हितकारी भोजन करावें तथा आप भी जीमे ॥ १६४ ॥ पुनः मंगलदीपकसे आरती किये गये तथा अपनी २ उत्तम हाथी घोडा आदि सवारियोपर बैठे हुए यज्ञांग और परिवार सहित वे इंद्रादिक उस यज्ञभूमिके पास जावे ॥१६५॥ मनो वांछित अर्थकी सिद्धि हो ऐसा रस्तेमे कहतीं हुई सौभाग्यवती स्त्रियोके हाथसे शुभ शकुन होनेकी इच्छा करके फल लेवें ॥ १६६ ॥ वे इंद्रादिक चैत्यालयप्रवेश, परिक्रमा देना, ईर्यापथ शोधन, स्तुति पूजा इत्यादि विधि पहलेकी तरह करके गुरुकी आज्ञासे बृहत् सिद्ध भक्ति योग भक्ति करे ॥ १६७ ॥ फिर जलके छोडनेके सिवाय तीन प्रकार त्यागरूप उपवास करके तथा बृहत् आचार्य भक्ति करके गुरुके चरणकमलोको नमस्कार करें और उनका आशीर्वाद ग्रहण करे ॥१६८॥ इस प्रकार उपवास ग्रहणविधि कही। इस प्रकार वे इंद्रादिक अपनी शुद्धिके लिये एकांतमे मंत्रस्नानादि करके पंच नमस्कार मंत्र एकसौ आठ वार जपैं। उसके ॐ ह्रां आदि निसीही

१-अतः कर्म्यमाह- । २ यागमंडलोद्धारमाह-

अथो रहः पुरा कर्म कृत्वा जप्त्वापराजितम् । स्वशुद्धयेष्टाग्रशतं निगदंतो निषेधिकाम् ॥१६९॥
यागभूमिं प्रविश्येंद्रा जिनानभ्यर्च्य भक्तितः । सिद्धान्नत्वा महर्षीणां विदध्युः पर्युपासनम् ॥
ततो याजकयष्टारो दध्युश्चंदनचर्चिताः । वराः स्रजो नवाऽस्यूतशुचिवस्त्राण्यलंकृतीः १७१॥
यज्ञदीक्षाध्वजं बिभ्रत्सौधर्मेंद्रोऽथ मंडपम् । प्रतिष्ठयेत् समतींद्रो वेदीं चोद्धृत्य मंडलम् १७२॥

इति प्रतिष्ठामहोद्योगः ।

२ वेद्यामालिख्य चूर्णेन पंचवर्णेन कर्णिकाम् । बहिःषोडशपत्राणि चतुर्विंशतिमन्वतः ॥१७३॥

मंत्रको तीनवार बोलें ॥ १६९ ॥ फिर वे इंद्र यागस्थानमें प्रविष्ट होकर भक्ति सहित अर्हंतकी पूजा करके व सिद्धोंको नमस्कार करके आचार्योंकी पूजा करे ॥ १७० ॥ उसके बाद इंद्र और यजमान चंदनसे छांटीं हुई उत्तम चंपा चमेली आदिकी पुष्पमालायें विना सिले नये शुद्ध कपडे और आभूषण धारण करे ॥ १७१ ॥ अनंतर सौधर्म इंद्र प्रतींद्र सहित यज्ञ-दीक्षाके चिन्ह मौंजी बंधन आदिको धारण करके वेदीपर मांडला बनाके मंडपकी प्रतिष्ठा करे ॥ १७२ ॥ इस प्रकार प्रतिष्ठाका महान् उद्योग करे । उस वेदीमें पांच रंगके चूर्णसे बीचमे कर्णिका बनाकर बाहर सोलह पत्तोंवाला आकार बनावे । उसके चारों तरफ चौवीस पत्तोंवाला उसके बाद बतीस कमल पत्रोंवाला आकार खींचे और बाहर वज्रके चिन्ह बनावे तथा चार कोनोंमें चार दरवाजे हों ऐसी वेदीकी रचना करे ॥ १७३ । १७४ ॥ कई

४ ओं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अर्हं णमो अरहंताणं णिसिहिए स्वाहा । इति णिसीहीमंत्र ।

द्वात्रिंशतमतःपद्मान् बहिर्वज्रांकितैर्युताम् । कोणैश्चतुर्भिः सचतुर्दिग्द्वारां वेदिमालिखेत्॥१७४॥
जयाद्यष्टदलान्येके कर्णिकावलयाद्बहिः । मन्यंते वसुनंद्युक्तसूत्रज्ञैस्तदुपेक्ष्यते ॥ १७५ ॥
काश्मीरादिशुभद्रव्यलिखिताखंडमंडलम् । नवं चंद्रोपकं चोर्ध्वं तयोर्वेद्योर्वितानयेत् ॥१७६॥
हेमापामार्गदर्भान्यतमकृतशलाकया । चूर्णाकीर्णे वेदिपृष्ठे वर्तयेद्यागमंडलम् ॥ १७७ ॥
भूर्जे गंधेन चालिख्य क्ष्मार्हं पीठाक्षरं तया । प्रणवं दक्षिणे भागे वामे सं सविसर्गकम् १७८

विद्वानोका ऐसा कहना है कि कर्णिकाकी गोलाईके बाहर जया आदिके आठ पत्र बनावे परंतु वसुनंदि आचार्य कथित प्रतिष्ठा सिद्धांतके जाननेवाले उस वचनको नहीं स्वीकार करते। क्योकि उनका मानना अज्ञानताको लिये हुए है ॥ १७५ ॥ यागमंडल और ईशान वेदी-इन दोनोके ऊपर नया चँदोआ बांधे। उस चँदोवेमे केशर आदि शुभ द्रव्योसे यागमंडल अभिषेकमंडल लिखा हो ॥ १७६ ॥ उस वेदीके पिछाड़ीके भागपर सोना अपामार्ग और डाभ इनमेसे किसी एककी सलाई बनाकर उसमे रंग भरके वेदीके पृष्ठभागमें यागमंडलको लिखै ॥ १७७ ॥ फिर भोजपत्रपर घिसे हुए चंदन कपूर मिश्रित उस सलाईसे क्ष्मार्हं ऐसा मध्यबीज लिखे, दाहिने भागमे ओं लिखे वाएं भागमे सः लिखे उसके ऊपर भागमें अर्हं लिखे उसे ओं णमो अरहंताणं ह्रौं स्वाहा इस मूलमंत्रसे घेर दे। उसके बाद ओं अर्हं आदिमे तथा स्वाहा अंतमे है जिसके ऐसे केवलिमंत्रको अर्थात् ओं अर्हं अर्हत्सिद्धसयोगिकेवलिभ्यः स्वाहा इस मंत्रको लिखै ॥ उसके चारो तरफ नंद्यावर्तचक्र, यवचक्र और ओं आदिमें

तस्यार्हं बीजमूर्ध्वे च मूलमंत्रेण वेष्टयेत् । ततः केवलिमंत्रेण स्वाहांतोमर्हमादिना ॥ १७९ ॥
चक्रेण नंद्यावर्तानां यवानां चोंमुखेन च । चत्तारीत्यादिना स्वाहांतेनाब्जांतश्च तन्न्यसेत् १८०

इति अथ यागमंडलोद्धरणम् ।

यथार्हवर्णचूर्णौघैर्न्यस्याग्नेःक्षेत्रपं दिशि । ईशस्य वास्तुदेवादीन् न्यस्यातःकोणशो द्विशः १८१

स्वाहा अंतमे ऐसे चत्तारि इत्यादि टिप्पणीमेसे देखकर लिखै । उस लिखे यंत्रको कमलके मध्यभागमे रक्खे ॥ १७८ । १७९ । १८०॥ अब यागमंडलका उद्धार बतलाते हैं । यथायोग्य रंगके अनुसार चूर्णसे आग्नेय दिशामे क्षेत्रपालका स्थापन करे, ईशानकोणमें वास्तुदेवका पुंज रखे, चारो कोनोमे वायुकुमार मेघकुमार अग्निकुमार आदिके पुंज रखे और कोनोके आगे दो २ वज्र बनावे । तथा अपने २ मंत्रोसे कमलके मध्यमे स्थित पंचपरमेष्टी आदिकी पूजा करे । उसके बाद सोलह विद्यादेवी चौवीस जिनमाता बत्तीस इंद्रादिकोका पत्रमे

१ ओं नमो अरहंताणं ह्रौं स्वाहा । **मूलमंत्रः** । ओं ह्रीं अर्हं अर्हत्सिद्धसयोगिकेवलिभ्यः स्वाहा । **केवलिमंत्रः** । ओं अर्हं नंद्यावर्तवलयाय स्वाहा । **नंद्यावर्तवलयस्थापनं** । ओं अर्हं यववलयाय स्वाहा । **यववलयस्थापनम्** । ओं चत्तारि मंगलं अरहंतमंगलं सिद्धमंगलं साहुमंगलं केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं । चत्तारि लोगोत्तमा अरहंतलोगोत्तमा सिद्धलोगोत्तमा साहुलोगोत्तमा केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा । चत्तारि सरणं पव्वज्जामि अरहंतसरणं पव्वज्जामि सिद्धसरणं पव्वज्जामि साहुसरणं पव्वज्जामि केवलिपण्णत्तो धम्मो सरणं पव्वज्जामि स्वाहा। इति **मंगललोकोत्तमशरणमंत्रः**

२ वास्तुदेवका सफेद, वायुकुमारका हरा, मेघकुमारका काला, अग्निकुमारका लाल पुंज होता है । ईशान दिशासे आरंभ करे ।

वज्रान् स्वमंत्रैः पश्चात्ः परब्रह्मादिकान् यजेत्॥ततश्च विद्यादेव्यादीन् तस्य पत्रादिषु क्रमात् १८२
चत्वारि मंगलादीनि वाणादित्रितयं शिला। भद्रासनं च संस्थाप्यं ततो वेद्यां यथोचितम् १८३
पीठेषूत्तरवेद्यां च वर्तयित्वा यथायथम्। मंडलानि विधानेन वक्ष्यामाणेन चार्चयेत् १८४

इति मंडलार्चनम्।

इति सूत्रितमाध्यायन् विधिं सम्यक्कृतक्रियः।श्रद्दधानो यथाशास्त्रं जिनबिंबं प्रतिष्ठयेत् १८५॥
या त्रिसंध्यं दिने द्वे वा चत्वारीष्टाधिवासना। यथात्मविभवं कार्या सोदेशाद्यनुरोधतः १८६

स्थापन करके क्रमसे पूजे ॥ १८१ । १८२ ॥ पुनः यागमंडलकी वेदीमे यथायोग्य छत्रादि आठ, आयुधादि आठ, पताका आठ और कलश आठ—इस तरह चार मंगलादि, वाण सरसों जौके अंकुर—ये तीन चारो कोनोमे तथा चंदनादि घिसनेकी शिला और सोंने चांदी चंदन पीपल आदि क्षीरवृक्षका काठ—इत्यादिका बनाया हुआ पट्टारूप गर्भावतार कल्याणके लिये भद्रासन—ये सब वस्तुएं रक्खे ॥ १८३ ॥ उत्तर वेदी (ईशान वेदी) व जन्माभिषेक वेदीपर मांडला खींचकर आगे कहे जानेवाली विधिसे पूजा करे ॥ १८४ ॥ इस प्रकार मंड-लकी पूजा कही गई। इस तरह याजकाचार्य शास्त्रमें कही गई विधिको विचारता हुआ गर्भ जन्मादि संबंधी क्रिया अच्छी तरह करता हुआ शास्त्रानुसार श्रद्धान करता हुआ जिनप्रतिमाको प्रतिष्ठित करे ॥ १८५ ॥ गुरुके उपदेशके अनुसार तीनों संध्या व एक दिन दो दिन चार दिनतक पूजा होम जपादिक क्रिया शक्तिके माफिक करे ॥ १८६ ॥ जिन

१. तत्कृत्यमाह — । २. प्रतिष्ठानंतरमाह —

ततः कृत्वाभिषेकादि यज्ञदीक्षां विसृज्य च । मूलदीक्षास्थितः कुर्यादाचार्योऽवभृथक्रियाम्॥
दद्याच्चैत्यादितीर्थे च नियुज्यार्थं स्वशक्तितः । नत्वेन्द्रं स्वं समर्प्यास्मै दातागंतूंश्च संवदेत् १८८

इति जिनप्रतिष्ठाविधानम् ।

सिद्धचक्रं गणधरवलयं प्राच्यं तद्दिशा । सारस्वतादियंत्रं च सिद्धार्चादि प्रतिष्ठयेत् ॥ १८९ ॥
जीर्णचैत्यालयोद्धारे प्राक्तने चैत्यमंदिरे । अपूर्वार्चाप्रवेशे च यथार्हं शांतिमावहेत् ॥१९०॥

इति शेषप्रतिष्ठाविधानम् ।

बिंब प्रतिष्ठाके बाद प्रतिष्ठाचार्य अभिषेकादि यज्ञकी दीक्षा (वेश) को छोड़कर श्रावक व्रतरूप मूल दीक्षामे स्थित हुआ पंचगुरु भक्ति शांतिपाठ विसर्जनादि क्रियाको करे ॥ १८७ ॥ वह दाता यजमाम अपनी सामर्थ्यके अनुसार जिनबिंबके निमित्त, क्षेत्र घर कुआ बगीचा आदि धर्मसाधनोंके निमित्त धनको लगाकर और इंद्र (प्रतिष्ठाचार्य) को नमस्कारपूर्वक शक्तिके अनुसार धन देकर आये हुए सज्जनोको यथायोग्य संतोषित करे१८८॥ इसप्रकार जिनबिंब प्रतिष्ठाविधि पूर्ण हुई । उसके बाद जिनप्रतिष्ठाशास्त्रोमें कथित रीतिसे सिद्धचक्र गणधरवलयकी पूजा करके तथा सारस्वत श्रुतस्कंध आदि यंत्रको पूजकर सिद्ध आचार्य आदिकी प्रतिमाको प्रतिष्ठित करे ॥ १८९ ॥ जीर्ण (पुराने) जिनमंदिरके उद्धारमें अथवा पुराने जैनमंदिरमे अपूर्व प्रतिमाके आगमनमें यथायोग्य शांतिविधान करे ॥१९०॥ इस प्रकार शेष सिद्धादि प्रतिमाकी प्रतिष्ठाविधि जानना । मैंने (आशाधरने)

एतत्सूत्रं दृब्धमैतिह्यदृष्ट्या ग्रंथार्थाभ्यां धारयन् यः सुधीमान् ।
निर्मातीन्द्रः कर्म निर्देक्ष्यमाणं सद्गार्हस्थ्याशाधरैः पूज्यतेसौ ॥ १९१ ॥

इत्याशाधरविरचिते **प्रतिष्ठासारोद्धारे** जिनयज्ञकल्पापरनाम्नि सूत्रस्थापनीयो नाम **प्रथमो**ऽध्यायः ॥ १ ॥

अनादि सिद्धांतोंको जानकर इस सूत्ररूप प्रतिष्ठाविधिको रचा है। जो अति बुद्धिमान इस ग्रंथके शब्द और अर्थको धारणकर याजकाचार्य हुआ आगे कहे जानेवाली प्रतिष्ठाविधिको करता है वह इंद्र दानपूजादिकर्मवाले उत्तमगृहस्थपनेको चाहनेवाले सद्गृहस्थोंसे नमस्कारादिद्वारा आदरणीय होता है ॥ १९१ ॥

इसप्रकार पंडितवर **आशाधर**विरचित जिनयज्ञकल्प द्वितीयनामवाले **प्रतिष्ठासारोद्धारमें** सूत्रस्थापनीय नामा **पहला अध्याय** समाप्त हुआ ॥ १ ॥

---

१ दानपूजाप्रतिष्ठाजिनयात्रादिकर्मनिष्ठः सद्गृहस्थ तस्य भावः कर्म वा ।

द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

अथातस्तीर्थोदकादानविधानमनुवर्णयिष्यामः—

दत्वा पद्माकरायार्घं वास्तुदेवाय चावनीम् ।
संमार्ज्य वायुभिर्मेघैः मोक्ष्य पूत्वाग्निनोरगान् ॥ १ ॥
इष्ट्वोद्धृतार्चिते साष्टदलाब्जे मंडलेथवा । सैकाशीतिपदे न्यस्य शांत्यै संस्नापयेऽर्हतः॥ २ ॥

दूसरा अध्याय ॥ २ ॥

इस सूत्रस्थापनके बाद जलयात्राविधि अनुवादरूपसे कहते हैं;—सरोवरको और वास्तुदेवको अर्घ देकर वायुकुमार देवोंके आह्वाननसे भूमिको साफकर मेघकुमार देवोंके आह्वाननसे छिडककर अग्निकुमार देवोंके आह्वाननसे अग्नि जलाकर साठ हजार नागोंको पूजकर अष्टकमल पत्रवाले मांडलेमें लघुशांतिकर्म करके तथा इक्यासी कोठोंवाले मांडलेमें वृहत्शांतिविधान करके मैं अर्हतका अभिषेक करता हूं ऐसा कहता हुआ अर्हतका अभिषेक करे ॥ १ ॥ २ ॥ फिर शांतिकर्म आरंभ करनेके लिये सरोवरके किनारे पुष्पांजलि

शांतिकर्मोपक्रमाय सरस्तीरे पुष्पांजलिं क्षिपेत् ।

यत्पद्मामृतकंभनात्सुमनसां मान्योसि दिक्चक्रमत्
कल्लोलोसि सदा यदाश्रितवतां संतापहंतासि यत् ।
लोके यद्यपि तावतैव वदसे क्षीरोदवत्त्वं जिन-
स्नानीयेन तथापि तद्वदुदकेनार्घ्योसि कासार नः ॥ ३ ॥

ॐ ह्रीं पद्माकरायार्घं निर्वपामीति स्वाहा । वास्तुदेवाद्यर्घमंत्रा वक्ष्यंते ।

मध्ये दिक्ष्वर्हतोन्यान् मदधदधिविदिक् तांस्त्रिशो मंगलादीन्
संसारात्यक्षणात्तस्फुटमहिमभरं धर्ममूर्ध्वं शिवानाम् ।

फैंके और आगे कहे जानेवाले यत्पद्मामृत इत्यादि श्लोकको पढकर ॐ ह्रीं बोलकर सरोवर (तालाव) को जलसे अर्घ देवे ॥ वास्तुदेवादिके अर्घमंत्र आगे कहेंगे ॥ ३ ॥ उस मंडलकी पूर्वादि चार दिशाओंमें सिद्ध आचार्य उपाध्याय सर्व साधुओंका स्थापन करे, विदिशाओंमें मंगल लोकोत्तम शरण इन तीनोंको लिखे, सिद्धोंके ऊपर अत्यंत महिमावाले धर्मको स्थापन करे और आठ पत्रोंपर जयादि आठ देवियोंका स्थापन करे और दश दिशाओंमें दश दिक्स्वामियोंको रक्खे, सोमद्वारपालके ऊपर भागमें सूर्यादि नौग्रह स्थापन करे। वह मंडलचौकोन और चार दरवाजेवाला होना चाहिये ऐसा मंडल कल्याणकारी है। ऐसा

पत्रेष्वष्टौ जयाद्या दशसु दिगधिपान् दिक्षु सोमस्य चोर्ध्वे
सूर्यादीन् सार्ग्निसद्वारहमिह शुभदं मंडलं वर्तयामि ॥ ४ ॥

इति पुष्पांजलिः ।

अष्टाविंद्रादिपीठानि यथास्वं दिक्षु कल्पयेत् । शेषसोमासने चेन्द्रपाशि दक्षिणपार्श्वयोः ॥५॥
अथवा—मध्ये मध्यवदंबुजेष्टसु बहिः पूर्वस्य पत्रस्थवद्रोहिण्याद्यमरीर्धिरष्टसु दधद्यक्षीस्त्रिरष्टस्वपि देवेंद्रांश्चतुरष्टसु प्रतिदिशं दिक्पालकान्गुह्यकान् वज्राग्रेषुततोग्रहानपि लिखाम्यत्रेष्टकृन्मंडलम् ६

कहकर पुष्पांजलि क्षेपै ॥ ४ ॥ अब शांति विधानके लिये द्वितीय मंडल कहते हैं—आठ दिशाओंमें आठ इंद्रादिकोंके आसन यथायोग्य कल्पना करे और धरणेंद्र व सोम इन दोनों के आसन इंद्र और वरुणकी दाहिनी तरफ कल्पना करे ॥ ५ ॥ अथवा वृहत् शांतिक मांडलेका विधान कहते हैं—मांडलेके मध्यभागमें पहलेकी तरह अष्टदल कमल बनावे उनमें पच परमेष्ठी, मंगल, लोकोत्तम, शरण,—ये आठ लिखै । उसके वाद सोलह पत्रोंपर रोहिणी आदि सोलह विद्या देवता स्थापन करे । चौवीसपत्रोंपर चक्रेश्वरी आदि चौवीस शासन देवता (यक्षी) ओंको, बत्तीस कोठोंमें देवेंद्रोंको (यक्षोंको) स्थापन करे । हर एक दिशामें दिक्पालोंको और वज्रोंके अग्रभागमे सूर्यादि नवग्रह लिखे—इस तरह इस सरोवरके किनारे वृहत् शांतिक मंडलका स्थापन करता हूं जोकि इष्टका देनेवाला है ऐसा कहकर पुष्पांजलि क्षेपण करे ॥ ६ ॥ पूजा करनेमें हर्षित हुआ नागेंद्र इत्यादि श्लोकसे पिसे हुए

पुष्पांजलिः ।

नागेंद्रचूर्णेन सितेन रैदपीतेन नीलप्रभनीलकेन ।
भक्ताभरक्तेन लिखासिताभकृष्णेन सन्मंडलमिष्टिहृष्टः ॥ ७ ॥

चूर्णपंचकस्थापनं ।

अथाधिवास्य चिद्रूपमित्यादिविधिना परम् । ब्रह्माहंदादीन् धर्मं च मध्ये मंडलमर्चयेत् ॥८॥

पुष्पांजलि ।

प्रत्यर्थिव्रजनिर्जयानिशलसद्धीवीर्यदृक्शर्मणो लोकेषु त्रिषु मंगलोत्तमविपत्त्राणोल्बणानात्यवत्-
धर्मं चक्रुवतोभिदावदधतो यानुत्किरंत्यात्मनो लोकेशानहमर्हितानघभिदेभ्यर्हामि तानर्हतः॥९॥

ॐ ह्राँ अरिप्रमथनाद्रजोरहस्यनिरसनाच्च समुद्भिन्नानंतज्ञानादिचतुष्टयतया शक्रादिकृतामनन्यसंभविनीमर्हणामर्हता मंगललोकोत्तमशरणभूतानामर्हत्परमेष्ठिनामष्टतयीमिष्टिं करोमीति स्वाहा ॥ १ ॥

पांच रंगोंको स्थापन करे। यह चूर्ण पांचका स्थापन जानना ॥ ७ ॥ उसके बाद निश्चय नयसे (अभेद बुद्धिसे) "चिद्रूपं" इत्यादि आगे कहे जानेवाले श्लोकको पढकर कर्णिकामें पुष्पांजलि क्षेपै और "स्वामिन् संवौषट्" इत्यादि आगे कहे जानेवाले श्लोकको पढकर आह्वानन स्थापन सन्निधीकरण-इन तीनोंको करके अर्हतादिकी पूजा करे ॥ ८ ॥ उन अर्हतादिकोंकी पूजाके अर्घ कहते हैं। "प्रत्यर्थि" इत्यादि नवमां श्लोक पढकर फिर

सामोदैः स्वच्छतोयैरुपहिततुहिनैश्चंदनैः स्वर्गलक्ष्मी
लीलार्धैरक्षतौघैर्मिलदलिसुगमैरुद्गमैर्नित्यहृद्यैः ।
नैवेद्यैर्नव्यजांबूनदमदमकैर्दीपकैः काम्यधूम-
स्तूपैर्धूपैर्मनोज्ञप्रहिभिरपि फलैः पूजयेत्राईदीशान् ॥ १० ॥
प्रत्येकार्पितसप्तभंग्युपहतैर्धर्मैरनंतैर्विधि-
ध्रौव्याभेदतदत्ययैरनुगते न्यक्षेपि लक्ष्ये सदा ।
तुल्येऽस्मिन् बहिरेतदुद्यतमचिद्रूपं विधातॄन् समं
मोक्षन् मंगललोकवर्यशरणान्येतर्हि सिद्धान् यजे ॥ ११ ॥

ओं ह्रीं सामग्रीविशेषविश्लेषिताशेषकर्ममलकलंकतया संसिद्धिकात्यंतिकविशुद्धविशेषाविर्भावादभि-व्यक्तपरमोत्कृष्टसम्यक्त्वादिगुणाष्टकविशिष्टा उदितोदितस्वपरप्रकाशात्मकचिच्चमत्कारमात्रपरमत्रपरमा-नंदैकमयीं निष्पीतानंतपर्यायतयैकं किंचिदनवरतास्वाद्यमानलोकोत्तरपरममधुरस्वरसभरनिर्भरं कौटस्थाम-

ओं ह्रीं कहकर पुष्प चढावै । फिर "सामोदैः" इत्यादि श्लोक पढकर अर्हंतको जलादि अष्ट द्रव्य चढावै ॥ ९ ॥ १० ॥ फिर "प्रत्येकार्पित" यह श्लोक कहकर ओं ह्रीं इत्यादि पढकर पुष्प चढावै। उसके बाद "सामोदैः" यह कहकर सिद्धपरमेष्ठीको अर्घ चढावे॥ ११ ॥ १२ ॥

धिष्ठिता परमात्मनामासंसारमनासादितपूर्वामपुनरावृत्त्याधितिष्ठता मंगलल्लोकोत्तमशरणभूताना सिद्धपरमेष्ठिनामष्टतयीमिष्टिं करोमीति स्वाहा।

सामोदैः..... ....फलैः पूजये सिद्धनाथान् ॥ १२ ॥

व्यक्ताशेषश्रुतोपस्कृतिकषितमस्कांडगंभीरधीर–
स्वांताः षट्त्रिंशदुच्चैः स्फुरदसमगुणाः पच मुक्त्यै स्वयं ये।
आचारानाचरंतः परमकरुणया चारयंते मुमुक्षून्
लोकाग्रण्यः शरण्यान् गणधरवृषभान् मंगलं तान्महामि ॥ १३ ॥

ओं ह्रूं व्यवहाररत्नत्रयावधानसमुद्भिद्यमानानिश्चयरत्नत्रयैकलोलीभावमनुभवंतमानंदसार्द्रं शुद्धस्वात्मानमभिनिविशमानानामपि स्वस्वरूपोपलब्धिप्रेयसीदृढतरपरिरंभसुखाभिलाषुकमुमुक्षुवर्गानुग्रहैकसर्गायमाणांतःकरणाना मंगलल्लोकोत्तमशरणभूतानामाचार्यपरमेष्ठिनामष्टतयींमिष्टिं करोमीति स्वाहा।

सामोदैः.................................... पूजये धर्मसूरीन् ॥ १४ ॥

उसके बाद " व्यक्ताशेष " इत्यादि श्लोक पढकर " ॐ ह्रूं " इत्यादिसे आचार्यपरमेष्ठीको पुष्पांजलि क्षेपण करे फिर " सामोदैः " इस श्लोकको बोलकर आचार्यपरमेष्ठीको जलादि अष्ट द्रव्यसे अर्घ चढावे ॥ १३ ॥ १४ ॥ फिर " सांगोपांग " इस श्लोकको पढकर "ओं ह्रीं"

सांगोपांगागमज्ञाः सुविहितमहिताः सूक्तियुक्तिप्रपंचै-
विद्यानिष्पंदतृष्णातरलितमनसः प्रीणयंतो विनेयान् ।
कीर्तिं धर्माय लोकोत्तरगतिकृपणायासकृत्कोपयंतः
ख्याता मांगल्यलोकोत्तमशरणतया येर्चयेऽध्यापकांस्तान् ॥ १५ ॥

ॐ ह्रौं निरंतरघोरदुःखावर्तविवर्तनचतुर्गतिपरिवर्तनार्णवतूर्णनिस्तीर्णमनोरथरथमहारथमनस्कारविनेयवारप्रवचनानुशासनव्यसनानामपि योगसुधारसायनाभ्याससन्निकृष्यमाणाजरामरत्वपर्यायमहिम्ना मंगललोकोत्तमशरणभूतानामुपाध्यायपरमेष्ठिनामष्टतयीमिष्टिं करोमीति स्वाहा ।

सामोदैः.... ....पूजये पाठकेन्द्रान् ॥ १६ ॥

सर्वज्ञो यज्ञविद्याहृदयपरिचयप्रोच्छलन्निर्विकल्प-
प्रत्यग्ज्योतिः प्रतिष्ठान्यदुरधिगमघ्युद्रमोद्गारनिष्ठान् ।
अन्योन्यस्पर्धमानत्रिदिवशिवपदश्रीकटाक्षच्छटैर्नीं
चिन्मूर्तिं बिभ्रतोग्र्यान् शरणमिह यजे मंगलसर्वसाधून् ॥ १७ ॥

इत्यादिसे उपाध्याय परमेष्ठीको पुष्पांजलि क्षेपै पुन "सामोदैः" इस श्लोकको बोलकर उपाध्यायपरमेष्ठीको जलादि अष्ट द्रव्य चढावे ॥ १५।१६ ॥ उसके बाद "सर्वज्ञो" यह श्लोक बोलकर "ओ ह्रः" इत्यादिसे सर्वसाधुपरमेष्ठीको पुष्पांजलि अर्पण करे फिर

ॐ ह्रः वैस्रसिकपरमाचिन्मयविश्वैश्वर्यपदापहारकठोरकर्मदुष्कर्मशात्रवशक्तिशातनोत्सिक्तचिच्छ-क्तिव्यंजकप्रकामदुर्लक्ष्यव्यतिरेकक्षेत्रज्ञाशांतरप्रवेशदुर्ललितबुद्ध्यनुबंधप्रवर्धमानसद्ध्यानसामिद्धसहजानंदा-मृतरसास्वादनावधीरितपरममुक्तिसंपत्प्रियासमागमोत्कंठाना मंगललोकोत्तमशरणभूताना सर्वसाधुपरमेष्ठि-नामष्टतयीमिष्टिं करोमीति स्वाहा ।

सामोदैः .. .. पूजये साधुसिंहान् ॥ १८ ॥

एवं मध्येऽर्हतो दिक्षु च चतुरः सिद्धादीनभ्यर्च्य विदिक्षु मित्वा कर्मगिरीनित्यादिमंत्रैश्चत्वारि मंग-लानि लोकोत्तमान् शरणानि चार्घैः संभाव्य सिद्धोपरि धर्मस्येत्थ पूजां कूर्यात् ।

अश्रांतप्रतिबंधकव्यपगमैकांतस्फुटच्चित्कला-
रूपेणापि जगत्यचिंत्यचरितस्तंतन्यते येन ना ।

" सामोदैः " इसे पढकर सर्वसाधुपरमेष्ठीको जलादि अष्ट द्रव्य चढावे ॥ १७।१८ ॥ इस प्रकार मंडलके बीचमें अर्हतको, चार दिशाओंमे सिद्धादि चार परमेष्ठियोंको पूजै और विदिशाओंमे " भित्वा कर्मागिरीन् " इस आगे कहे जानेवाले श्लोकमंत्रसे चार मंगल चार लोकोत्तम चार शरणको अर्घोसे पूजकर सिद्ध परमेष्ठीके ऊपर स्थापित धर्मकी इस प्रकार पूजा करै ॥ वह इस तरह है कि पहले " अश्रांत " इत्यादि श्लोक पढै उसके वाद " ओं ह्रीं " से धर्मको पुष्प क्षेपण करे फिर " सामोदैः " इस श्लोकसे जिन धर्मकी जलादि

यत्सर्वस्वरसाय योगिपतयोप्याशासतेंत्यक्षणं
तच्छ्रेयो यदनुग्रहश्च वृषमप्यर्चामि तं तद्गुणम् ॥ १९ ॥

ॐ ह्रीं भेदभावनानियतिनिर्मिता प्रादेशिकीमप्यभेदरूपता योगविशेषसौष्ठवटंकेन विष्वद्रीचीमुत्कीर्य विश्रांतस्य मंगललोकोत्तमशरणभूतस्य केवलिप्रज्ञप्तधर्मस्याष्टतयीमिष्टिं करोमीति स्वाहा ।

सामोदैः .. . . .पूजये जैनधर्मम् ॥ २० ॥

एष व्यासेन पूजाविधि, समासेनात्र पुनर्मंगलाद्यर्घान् पृथक् न दद्यात् ॥ एवमर्हदादीनभ्यर्च्य शरच्चंद्रमरीचिरोचिषोंतश्चेतासि चिंतयन्ननादिसिद्धमंत्राभिमंत्रितकर्पूरहरिचंदनद्रवाभिलुलितसुरभिशुभ्रपुष्पांजलिभिरेकविंशतिवारानधिवास्य पूर्णार्घदानेन बहुमानयेत् ।

तेमी पंच जिनेन्द्रसिद्धगणभृत्सिद्धांतदिक्साधवो
मांगल्यं भुवनोत्तमाश्च शरणं तद्वज्जिनोक्तो वृषः ।

अष्ट द्रव्यसे पूजा करे ॥ १९।२० ॥ यह विस्तारसे पूजाविधि कही गई है। यदि संक्षेपमें करना हो तो मंगलादिकके अर्घोंको जुदा न चढावे। इस प्रकार अर्हतादिकोंको पूजकर निर्मल चंद्रमाकी किरणके समान प्रकाशमान अर्हतका अपने मनमें ध्यानकर (मेरा आत्मा भी अर्हत स्वरूप है ऐसा चिंतवनकर) अनादि सिद्धमंत्रसे मंत्रित कपूर मिले हुए घिसे हुए मलयागिरिचंदनसे छांटे गये सुगंधित पुष्पोंकी अंजलि लेकर इक्कीसवार पूर्णार्घ देकर

अस्माभिः परिपूज्य भक्तिभरतः पूर्णार्घमापादिताः
संघस्य क्षितिपस्य देशपुरयोरप्यासतां शांतये ॥ २१ ॥

पूर्णार्घम् ।

इत्यार्चिताः परब्रह्मप्रमुखाः कर्णिकार्पिताः । संतु सप्तदशाप्येते सभ्यानां शमशर्मणे ॥ २२ ॥

ततश्च जयादिदेवतागणान् वक्ष्यमाणक्रमेणोपचर्य सूर्यादिग्रहान् सोमदिक्पालोपरि व्यवस्थाप्य विधिवत् पूजयेत् । तथाहि—

रक्तस्तुल्यरुगंबरादियुगिनः श्वेतः शशी लोहितो
भौमो हेमनिभौ बुधामरगुरू गौरः सितश्चासिताः ।

मंडलकी पूजा करे। उस समय "तेमी" इत्यादि श्लोक पढे ॥ २१ ॥ उसके वाद "इत्यर्चिता" यह आशीर्वाद श्लोक पढे ॥ २२ ॥ उसके वाद जया आदि देवताओंको कहे-जानेवाले क्रमसे पूज करके सूर्यादि नवग्रहोंको सोमदिक्पालके ऊपरभागमें स्थापन करके विधिपूर्वक पूजे। उसीको वतलाते हैं–सूर्यका रंग लाल है और वस्त्र चमर छत्रविमान भी लाल हैं, चंद्रमाका वर्ण सफेद है, मंगलका लाल वर्ण है, बुध और बृहस्पतका रंग सुवर्णके समान है, शुक्रका रंग सफेद है, शनि, राहु और केतु–ये तीनो काले रंगके हैं। इन ग्रहोंको

१सूर्यादि राहुपर्यंत ग्रहोंको आठ दिशाओमें स्थापन करे बुध और बृहस्पतिके मध्यमें केतुका आसन स्थापित करे

कोणस्थातनुकेतवो जिनमहे हुत्वेह पूर्वादितः
सोमोर्ध्वेंधिकुशं निवेश्यमुदमाप्यंते सवर्णार्चनैः ॥ २३ ॥

पूर्वादिदिक्षु सवर्णाक्षतपुंजान् स्थापयित्वा तदुपरि सूर्यादीना क्रमेण कुंकुमाद्यक्तदर्भासनानि विन्यसेत्-
इति दर्भन्यासविधानम् ।

प्रारब्धाः फणियक्षभूतक्रतुभिर्देहार्तिवित्तक्षतिः
स्थानभ्रंशरसाद्यसाम्यविपदस्तत्कल्पनाकल्पतः ।

जिन प्रतिष्ठोत्सवमे आह्वानन कर सोम दिक्पालके ऊपरभागमे दर्भ रखकर पूर्वादि दिशा-ओमें स्थापन कर समान वर्णकी पूजन द्रव्यसे पूजे तो आनंदमंगल प्राप्त होते हैं ॥ २३ ॥ उनके समान रंगवाले अक्षतके पुंजोंको रखकर उनके ऊपर सूर्यादिके क्रमसे कुंकुमादि रंगे-हुए दर्भ (दाभ) के आसनोंको रखे । भावार्थ—सूर्यके लिये उत्तम केसरसे दाभको रंगे, चंद्रमाके लिये चंदनसे, मंगलके लिये सिंदूरसे, बुध बृहस्पतके लिये हलदीसे, शुक्रके लिये चंदनसे और शनि राहु केतुके लिये कस्तूरीसे रंगे । इस प्रकार दर्भ रखनेकी विधि वर्ण-नकी गई ॥ नागकुमारदेव शरीरपीड़ा करते है, यक्षदेव धन हरते हैं. भूतदेव स्थानभ्रष्ट करते हैं, राक्षसदेव धातुवैषम्य करते हैं इसलिये नागकुमारादिकी स्थापना करके पूजनेसे पूर्वोक्त सब विघ्न दूर हो जाते हैं तथा सूर्यादिग्रहोंकी पूजा करनेसे कापालिक भिक्षु वर्णी

येष्विष्टेषु च तापसादिषु शमं यांत्याशयित्वार्चिते-
ष्वातन्वंतु गुरुप्रसादवरदास्तेर्कादयो वः शिवम् ॥ २४ ॥

कुमारदीक्षितेष्वेकतममर्चयतां रुजः । कुजः कुष्याद् ग्रहाः शेषाः सवर्णेषु जिनेषु वः ॥ २५ ॥

आदित्यादीना सपर्याविध्यनुवादमुखेन प्रभावख्यापनाय प्रतिदिशं पुष्पोदकाक्षतं क्षिपेत् ।

ग्रहाः संशब्दाये युष्मानायात सपरिच्छदाः ।
अत्रोपविशतैतान् वो यजे प्रत्येकमादरात् ॥ २६ ॥

आवाहनादिपुरस्सरं प्रत्येकपूजोपक्रमाय पुष्पांजलिं क्षिपेत् ।

संन्यासी आदिकर किये गये उपद्रव शांत होते हैं । ऐसे गुरुके प्रसादसे वर देनेवाले सूर्यादि ग्रह तुम भव्योका कल्याण करें ॥ २४ ॥ अथवा बाल ब्रह्मचारी वासुपूज्य मल्लि नेमि पार्श्व महावीर-इन पांचोंमे किसी एकको पूजनेसे मंगल ग्रह रोग शांत करता है । और ग्रहोंके समान वर्णवाले तीर्थंकरोंमेसे किसी एकको पूजनेसे बाकी अन्य ग्रह भी रोगोंका नाश करते हैं ॥ २५ ॥ सूर्यादि ग्रहोकी पूजाविधिके द्वारा प्रभाव बतलानेके लिये सब दिशाओमे पुष्प जल अक्षतोंको क्षेपण करे । अब आह्वानादि पांच उपचारोंसे उनकी पूजा दिखलाते हैं-हे सूर्यादि ग्रहो ! हम तुमको बुलाते हैं, तुम सपरिवार आओ, यहां तिष्ठो, तुम सबको हम आदरसे पूजते हैं । यहां पर आह्वानन स्थापन सन्निधीकरण पूजन-

ऊर्ध्वं विस्तीर्णमंशान् वसुजलधिमितान् योजनस्यैकषष्ठान्
मुक्त्वाष्टौ तच्छतानि क्षितिमनिलधृतं खेस्थहस्तैश्चतुर्भिः ।
पूर्वाद्याशानुपूर्व्या पृथगिभभिदिभोक्षार्वदेवैर्विमानं
स्वारूढो नीयमान दशशतशरदन्वीतपल्योत्तमायुः ॥ २७ ॥
त्वं तोष्टा तापसेष्ट्या कमलकरहरिद्वाहनेता ग्रहाणां
नैवेद्यैः सानुगोर्कैंधनशृतपरमान्नाद्यसर्पिर्गुडाद्यैः ।
गंधैः पुष्पैः फलैश्चोत्तमघुसृणजपापक्वनारंगपूर्वै–
स्ताद्दक्षैश्चाक्षताद्यैरिह हरिहरिति प्रीणितः प्रीणयास्मान् ॥ २८ ॥

ये चार उपचार कहे गये हैं विसर्जन पूजाके वाद होता है । इस तरह पांच उपचार पूजाके सब जगह जानना चाहिये ॥ २६ ॥ इस प्रकार हर एककी पूजाके आरंभमे आह्वाननादि करनेके समय पुष्पांजलिका क्षेपण करना चाहिये । अब सूर्यादिकी पूजाविधि कहते हैं–पहले " ऊर्ध्वं " इत्यादि और " त्वं तोष्टा " इत्यादि–ये दो श्लोक पढकर " हे आदित्य " कहकर आह्वानन स्थापन सन्निधीकरण करे, उसके वाद " ओ आदित्याथ " इत्यादि बोलकर जलादि आठ द्रव्य चढावे । आकके ईंधनसे पकाई हुई खीर ताजा गौका घी गुड लाडू वगैरः नैवेद्यसे पूजै तथा अग्निमें आहुतियां दे जिसके लिये यह पूजाकर्म

हे आदित्य आगच्छ आदित्याय स्वाहा आदित्यानुचराय स्वाहा आदित्यमहत्तराय स्वाहा अग्नये स्वाहा अनिलाय स्वाहा वरुणाय स्वाहा सोमाय स्वाहा प्रजापतये स्वाहा ओं स्वाहा भूः स्वाहा भुवः स्वाहा स्वः स्वाहा ओं भूर्भुवः स्वः स्वधा स्वाहा ओं आदित्याय स्वगणपरिवृताय इदमर्घ्यं पाद्यं गंधं पुष्पं धूपं दीपं चरुं बलिं स्वस्तिकं यज्ञभागं च यजामहे प्रतिगृह्यतां प्रतिगृह्यतां प्रतिगृह्यतामिति स्वाहा। इत्यादित्याह्वाननं। "यस्यार्थे क्रियते कर्म स प्रीतो नित्यमस्तु मे। शांतिक इत्यादि ॥

तद्विवादुरुबिंबमष्टभिरितो भागैश्चरद्योजना-
शीत्योर्ध्वं तदिवाब्दलक्षयुतपल्लयौकायुरग्नेर्दिशि।
शीतांशो सरलाज्यकिंशुकसमितिसद्धान्नदुग्धादिभि-
स्त्वं कापालिकसत्क्रियाभिय इह ग्राय प्रशाग्रप्रभो ॥ २९ ॥

हे सोम आगच्छ सोमाय स्वाहा।

करता हूं वह देवता मेरे ऊपर हमेशा प्रसन्न रहे। ऐसा अंतमें सब जगह कहना चाहिये ॥ २७।२८ ॥ इस प्रकार सूर्यकी पूजाविधि हुई। "तद्विबादुरु" इत्यादि श्लोक पढकर "हे सोम" इत्यादिसे आह्वानादि करे फिर पूर्व कही ओंह्रीमें "आदित्याय" की जगह "सोमाय" बोलकर जलादि आठ द्रव्य चढावे ॥ देवदारुकी लकडीका चूरा घी ढाककी लकडीसे पकाया अन्न दूध–इन सबको मिलाकर आहूतियां अग्निमें दे, यह सोमकी पूजा

न्यूने विंबमितोंकयोजनशते क्रोशार्धमात्रं क्षिते-
र्बाह्यं द्विद्विसहस्रकेसरिमुखौर्भैक्षुप्रियः शूलभृत् ।
पल्यार्धायुरपाक्कुजात्र खदिराभृष्टैर्गुडाजोत्कटैः
संतुष्टो यवसक्तुभिर्घृतयुतैर्दुर्गादिभिर्धूप्यसे ॥ ३० ॥

हे अंगारक आगच्छ अंगारकाय स्वाहा ।

विंबं खं शशिनोष्टयोजनमतीत्योर्ध्वंव्रजन्भूजवत्
क्रोशार्धप्रमितं कुजस्थितिरितो वर्णाष्टिमुत्पुस्तकम् ।

हुई । २९ ॥ " न्यूने " इत्यादि श्लोक पढ़कर " हे अगारक " इत्यादिसे आह्वाननादि तीन करे फिर ओ ह्रींमें " अंगारकाय " लगाकर जलादि आठ द्रव्य चढावे । इसमे खैरकी लकड़ीसे भुने हुए गुड घीसे मिले हुए जौके सत्तुओसे तथा गूगुल घी राल इलाइची अगुरु आदिकी धूपसे दक्षिण दिशामे आहूतियां दे। इससे मंगलदेव प्रसन्न होता है ॥ ३० ॥ यह मंगलकी पूजा हुई । " विंबं " इत्यादि श्लोक पढकर "हे बुध " इत्यादिसे आह्वाननादि करे फिर ओह्रींमे "बुधाय" लगाकर जलादि अष्ट द्रव्य चढावे। इसकी पूजामे ब्रह्मचारीको अष्ट सिद्धि मिलती है। अपामार्गकी लकडीसे भातको बनाकर उसमें दूध डाले ऐसा नैवेद्य बनावे तथा राल घीकी धूपसे पश्चिमदिशामे आहूतियां दे यह बुधकी पूजा हुई

विभ्र त्वं विधुजोपवीतयुगपामार्गैधासिद्धौदन-
क्षीरं सर्ज रसाज्यधूपमजगो रक्षोदिशि स्वीकुरु ॥ २१ ॥

हे बुध आगच्छ बुधाय स्वाहा ।

तद्वाराद्दसयोजनैरुपरि या तद्वाद्विमानं मनागूनक्रोशमितः सपुस्तककमंडल्वक्षसूत्रोब्जगः ।
पल्यैकायुरिहोपवीतरुचिरोरस्कःपरिव्राडतः प्रत्यक् पिप्पलपकपायसहविर्धूपैर्गुरोऽभ्यर्च्यसे २२

हे बृहस्पते आगच्छ बृहस्पतये स्वाहा ।

सौम्याभ्वेध्युषितस्त्रियोजनमतिक्रांतेभ्रयानं तथा
प्रेर्यं क्रोशततं त्रिसूत्रफणभृत्पाशाक्षसूत्रैः स्फुरन् ।
प्रीतः पाशुपते सवर्षशतपल्यायुः प्लवस्थो मरुत्-
काष्ठायां गुडफल्गुपाचितयवानाज्यैः कवे पूज्यसे ॥ २३ ॥

हे शुक्र आगच्छ शुक्राय स्वाहा ।

॥ २१ ॥ " तद्वारा " इत्यादि श्लोक पढकर " हे बृहस्पते " इत्यादिसे आह्वानादि करे फिर ओंह्रींमें "बृहस्पतये" लगाकर जलादि द्रव्य चढावे यहांपर पश्चिमदिशामें पीपलकी लकडीसे बनी हुई खीरमें गौके घीसे मिश्रित धूप डाले उससे आहुतियां देवे । यह बृहस्पतकी पूजा हुई ॥ २२ ॥ " सौम्याभ्वे " इत्यादि श्लोक बोलकर " हे शुक्र इत्यादिसे आह्वानादि करे फिर

क्रोशार्धं पृथुयोजनैस्त्रिभिरुपर्यभ्रैः कुजान्मंडलं
तद्वद्वृत्तगतोर्द्धपल्यपरमायुष्कस्त्रिसूत्रीयुतः ।
नीतस्तृप्तिमुदक्शमींधनशृतैर्माषैस्तिलैस्तंदुलै
रालाज्यागुरुणेऽयसे श्रवणमुत्तैपालपूज्यः शने ॥ ३४ ॥

हे शनैश्चर आगच्छ शनैश्चराय स्वाहा ।

त्यक्तारिष्टद्रोनयोजनततस्वव्योमपानध्वजं
चत्वारि व्रजदंगुलान्यहरहः षष्ठे च मास्यैंदवम् ।

ओंह्रींमें "शुक्राय" जोडकर जलादि द्रव्य चढावे । यहां वायव्यदिशामें फल्गुकाष्ठसे भुने हुए जौ गुड घी मिलाकर अग्निमे आहुति दे। यह शुक्रकी पूजा हुई ॥ ३३ ॥ "क्रोशार्द्ध" इत्यादि श्लोकको पढकर "हे शनैश्चर" इत्यादिसे आह्वानादि करे फिर ओंह्रींमें "शनैश्चराय" लगाकर जलादि अष्ट द्रव्य चढावे । यहांपर शमीकी लकडी उरद तिल चांवल तथा राल घी अगुरुकी धूपसे आहूतियां दे। इस प्रकार शनैश्चरकी पूजा हुई ॥ ३४ ॥ "त्यक्त्वा" इत्यादि श्लोक पढकर "हे राहो" इत्यादिसे आह्वानादि करे फिर ओंह्रींमें "राहवे" लगाकर जलादि अष्ट द्रव्य चढावे। यहां दूबके ईंधनसे पकाया गया काला किया गया गेहूं आदिका चून तथा दूध घी लाख इनकी धूपसे अग्निमें आहूतियां दे॥

बिंबं छादयिता तदंशुनिवहै राहो द्विजार्चामहो
दूर्वापिष्टपयोघृताक्तजतुधूपेनेशदिश्यर्च्यसे ॥ ३५ ॥

हे राहो आगच्छ राहवे स्वाहा ।

षष्ठे षष्ठ उपेत्य मासि तपनस्येंदोस्तमोविंबव-
द्बिंबाद्बिंबमधश्चरन्मलिनयत्यंशक्रमैस्तद्वियत् ।
दर्शांतेधिवसाम्निहोर्ध्वदिशि तत्केतो सकुल्माषकं
स्फूर्जत्केतुसहस्रदेह सकुशं विल्वाढ्यधूपं भज ॥ ३६ ॥

हे केतो आगच्छ केतवे स्वाहा।

एते सप्तधनुःप्रमाणवपुरुत्सेधा नवापि ग्रहाः
शश्वच्चंद्रबलाबलाप्यसदसद्दानस्फुरद्विक्रमाः ।

यह राहुकी पूजा हुई ॥ ३५ ॥ "षष्ठे" इत्यादि श्लोक पढकर "हे केतो" इत्यादिसे आह्वा-
नादि करे फिर ओंह्रींमें "केतवे" लगाकर जलादि अष्ट द्रव्य चढावे । यहां कुल्माष (कु-
लथी) के चूनको दर्भके ईंधनसे पकावे तथा घी मिले हुए कच्चे वेलकी धूपसे आहुतियां दे।
यह केतु ग्रहकी पूजा हुई ॥ ३६ ॥ उसके बाद "एते" इत्यादि श्लोक पढकर "ओं ह्रीं"

सत्कृत्योपहृतामिमामिह मखे पूर्णाहुतिं प्राप्नुत
प्रीतिं व्यंक्त च यष्टृयाजकनृपादीष्टप्रदानाद् द्रुतम् ॥ ३७ ॥

पूर्णाहुतिः । ओं ह्रीं ह्रः फट् आदित्यमहाग्रह अमुकस्य शिवं कुरु २ स्वाहा । एवं सोमादिष्वपि योज्यम् ।

हुत्वा स्वमंत्रचितमंबुनि सप्तसप्तमुष्टिप्रमाणतिलशालियवं प्रसात्तिम् ।
नीता घृतप्लुतसमिद्भिरथाग्निकुंडे एकादशस्थवदवंतु सदा ग्रहा वः ॥ ३८ ॥

आशीर्वादः । इति ग्रहपूजाविधानम् । अथात्र मंडले स्नपनपीठे निवेश्य जिनचतुर्विंशतिं प्रागुक्तविधिना स्नपयेत् ।

लघ्वेषोष्टदले शांतिकर्मैकाशीतिके बृहत् । मंडले स्थाप्यतां कल्पो यथा ध्यानं तु तत्फलम् ॥ ३९ ॥

इत्यादिसे पूर्ण आहूति दे । हर एक ओंह्रींमे ग्रहोंके नाम तथा यजमानका नाम अवश्य लगाना चाहिये ॥ ३७ ॥ फिर 'हुत्वा' इत्यादि आशीर्वाद श्लोक पढे फिर सात सात मुठी प्रमाण तिल शालिचांवल जौ इन तीन धान्योंको जलमे क्षेपणकर घृतसे लिपटी हुई लकडीसे अग्निमें आहूतियां दे ॥ ३८ ॥ इस प्रकार नव ग्रहकी पूजा जानना ॥ उसके वाद उस मांडलेमें अभिषेकके सिंहासनपर चौवीस तीर्थंकरोंका स्थापन करके पहले कही हुई विधिसे अभिषेक करे ॥ लघुशांतिकर्म आठपत्रके मंडलपर और बृहत् शांतिकर्म इक्यासी कोठोंके

ते मंत्रविद्यथाम्नातमुक्तेनुक्ते तु कर्मणि। युंज्याद्यथार्हं विघ्नानामनुत्पत्त्यै शमाय च ॥ ४० ॥

इति शांतिकर्मविधानं । अथातो जलाशयमुपसद्य सुपवित्रपात्रे वरकाश्मीरकर्पूरादिना कार्णि-काया ॐ ह्रीं अर्हं श्रीपरब्रह्मणेनंतानंतज्ञानशक्तये नमः इति लिखित्वा पूर्वाद्यष्टदलेषु क्रमेण ओं ह्रीं श्रीप्रभृतिदेवताभ्यःस्वाहा १ ओं ह्रीं गंगादिदेवीभ्यः स्वाहा २ ओं ह्रीं सीताविद्धमहाह्रददेवेभ्यःस्वाहा ३ ओं ह्रीं सीतोदाविद्धमहाह्रददेवेभ्यः स्वाहा ४ ओं ह्रीं लवणोदकालोदमागधादितीर्थदेवेभ्यः स्वाहा ५ ओं ह्रीं सीतासीतोदामागधादितीर्थदेवेभ्यः स्वाहा ६ ॐ ह्रीं संख्यातीतसमुद्रदेवेभ्यः स्वाहा ७ ॐ ह्रीं

मंडलपर यथायोग्य करे। उसका फल ध्यानके माफिक मिलता है अर्थात् लघुशांतिकर्म भी सम्यक ध्यानसे कियाजाय तो महाफल देता है और बड़ा शांतिविधान भी थोडे ध्यानसे किये जानेपर थोडा फल देता है ॥ ३९ ॥ वह बुद्धिमान् इंद्र शास्त्रकथित रीतिसे तीर्थोदकादानविधिमें कहे गये लघु वृहत् शांतिविधान कर्मोंको अग्रिम विघ्नोंकी अनुत्पत्ति और पूर्वविघ्नोंकी शांतिके लिये यथायोग्य करे ॥ ४० ॥ इस प्रकार शांतिकर्मका विधान कहा गया। अब उसके बाद जलाशय (सरोवर नदी) के किनारे जाकर धोये हुए नवे थालमें उत्तम केशर कपूरसे अष्टपत्रकमलकी कर्णिका (वीच-भाग) में " ओं ह्रीं अर्हं " इत्यादि लिखकर पूर्वादि आठ पत्रोंपर क्रमसे " ओं ह्रीं श्री " इत्यादि आठ मंत्र लिखकर तीनवार मायाबीजकी ईकारमात्रासे वेष्टितकर क्रोंकार अंतमें

लोकाभिमततीर्थदेवेभ्यः स्वाहा ८ ॥ इति विलिख्य त्रिर्मायामात्रया परिक्षिप्य क्रोंकारेण निरुध्य बहिः " मुखमूलवपोपेतपत्रपद्मांकितः सितः । पववर्णांकादिकोणः कलशस्तोयमंडलम् " ॥ इत्येवं लक्षणं वरुणमंडलं चालिख्य परब्रह्मार्चनपुरस्सरं पत्रेषु जलदेवताः स्वस्वमंत्रपूतजलादिभिरुपचरेत् । तद्यथा ।

तद्ब्रह्मचिन्मयसुधारसपूरभोक्तृ वाक्यामृताप्लुतजगद्विधिपूर्वमेतत् ।
अब्गंधतंदुलकतांतचरुप्रदीपधूपप्रसूनकुसुमांजलिभिर्यजेऽस्मिन् ॥ ४१ ॥

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीपरमब्रह्मणेऽनंतानतज्ञानशक्तये इदं जलं गंधमक्षतान् पुष्पाणि चरुं दीपं धूपं फलं पुष्पांजलिं च निर्वपामीति स्वाहा ।

लिखे । उसके बाहर जलमंडल लिखकर श्री परब्रह्म अर्हतका पूजन करे, फिर आठ पत्रोंपर आठ प्रकारके जलदेवताओंका पूजन अपने २ मंत्रसे मंत्रित पवित्र जलादि द्रव्योंसे करे ॥ जलमंडलकी विधि इसतरह है कि पहले आठ पत्रका कमल बनावे उसके आगे कलशका आकार लिखे उसके मुखभागपर कमल खींचे उसके मध्यभागमें पत्रके ऊपर वकार लिखे उसके बाद कलशके नीचे भागपर कमल बनावे उसके मध्यपत्रमे पकार लिखे । कलशका वर्ण सफेद है, उस कलशकी चारो दिशाओंमे पकार लिखे, बाहरके भागमें चारकोनोंमें वकार लिखे-इस प्रकार वरुणमंडल (जलमंडल) जानना ॥ अब अष्टदल कमलपत्रकी पूजाविधि कहते हैं-" तद्ब्रह्म " इत्यादि श्लोक पढकर " ओं ह्रीं " इत्यादिसे परम ब्रह्म अर्हंत देवकी जलादि अष्ट द्रव्यसे पूजा करे ॥ ४१ ॥ " पद्मादि " इत्यादि श्लोक पढकर

पद्मादिदिव्यह्रदवारिविभूतीभोक्त्री श्रीपूर्वदिव्ययुवतीर्विधिपूर्वमेताः ।
अब्गंध... .... ॥ ४२ ॥

ओं ह्रीं श्रीप्रभृतिदेवताभ्यः इद.... . ... ।

गंगादिदिव्यसरिदंबुविभूतिभोक्त्री गंगादिदैवतवधूर्विधिपूर्वमेताः ।
अब्............ . ... ॥ ४३ ॥

ओं ह्रीं गंगादिदेवीभ्यः इदं . ... ।

सीतातदुत्तरसरित्प्रणयि ह्रदांभो भोक्षन्महाह्रदसुरान् विधिपूर्वमेतान् ।
अब्........... .... ॥ ४४ ॥

ओं ह्रीं सीताविद्धमहाह्रददेवेभ्यः इद............. ।

सीतातदुत्तरसरित्प्रणयि ह्रदांभो भोक्षन्महाह्रदसुरान् विधिपूर्वमेतान् ।
अब्. .... ॥ ४५ ॥

"ओं ह्रीं श्रीप्रभृति" इत्यादिसे पहले पद्मके ऊपर जलादि अष्टद्रव्य चढावे ॥ ४२ ॥ "गंगादि" इत्यादि श्लोक पढकर "ओं ह्रीं गंगादि" इत्यादिसे जलादि अष्ट द्रव्य दूसरे पद्मपर चढावे ॥ ४३ ॥ "सीता" इत्यादि श्लोक पढकर "ओं ह्रीं सीताविद्ध" इत्यादिसे तीसरे पद्मपर जलादि अष्टद्रव्य चढावे ॥ ४४ ॥ "सीता तदुत्तर" इत्यादि श्लोक पढकर

ओं ह्रीं सीतोदाविद्धमहाह्रदवेभ्य इदं .... ।

सिंधुप्रवेशपथतोयविभूति भोक्ष्यन् श्रीमागधादिविबुधान विधिपूर्वमेतान् ।

अन्... ॥ ४६ ॥

ओं ह्रीं लवणोदकालोदमागधादितीर्थदेवेभ्यः इदं .... ।

सिंधुप्रवेशपथतोयविभूतिमोक्ष्यन् श्रीभागधादिविबुधान विधिपूर्वमेतान् ।

अव् .. . . ॥ ४७ ॥

ओं ह्रीं सीतासीतोदामागधादितीर्थदेवेभ्यः इद. .... ।

संख्यातिगांबुनिधिनीरविभूति भोक्ष्यन् क्षारादिवारिधिसुरान् विधिपूर्वमेतान् ।

अव्............ .. . . ॥ ४८ ॥

ओं ह्रीं संख्यातीतसमुद्रदेवेभ्यः इदं . . . . ।

" ओं ह्रीं सीतोदाविद्ध " इत्यादिसे चौथे पत्रपर जलादि अष्ट द्रव्य चढावे ॥ ४५ ॥ " सिंधुप्रवेश " इत्यादि श्लोक पढकर " ओं ह्रीं लवणोद " इत्यादिसे पांचवें पत्रपर जलादि अष्ट द्रव्य चढावे ॥ ४६ ॥ " सिंधुप्रवेश " इत्यादि श्लोक पढकर " ओं ह्रीं सीतासीतोदा " इत्यादिसे छठे पत्र पर जलादि अष्टद्रव्य चढावे ॥ ४७ ॥ " संख्यातिगां " इत्यादि श्लोक पढकर " ओं ह्री संख्या " इत्यादिसे सातवें पत्रपर जलादि अष्टद्रव्य चढावे ॥ ४८ ॥

लोकप्रसिद्धपुरतीर्थजलार्द्धं भोक्ष्यन् लोकेष्टतीर्थमरुतो विधिपूर्वमेतान् ।
अब्‌ .. . . ॥ ४९ ॥

ओं ह्रीं लोकाभिमततीर्थदेवेभ्य इद... ....स्वाहा ।

एवं जलदेवताः प्रसाद्य तत्पूजा जलाशयमध्ये प्रविश्य मंत्रमिमं पठित्वा प्लावयेत् ।

ॐ "एतां भोक्त्र्योंबुधारानुरुहृदसरितां श्र्यादिगंगादिदेव्यस्तीर्थानां मामधाद्या इम उदधिसुरास्तोयधीनामिमेमी । अन्येषां चार्पितार्घा निजनिजसलिलश्रीविलासैर्जिनेंदोर्भक्तिप्रह्वाः प्रतिष्ठाभिषवमहकृते सारयंत्वेतदर्णः" ॥ ५० ॥

इति पूजाप्लवनमंत्रः । ततः शक्रास्तज्जलेन कलशान् पूरं पूरं तीरे प्रस्तीर्य चंदनस्रदूर्वादर्भादिभिरभ्यर्च्य तन्मुखेषु श्र्यादिमंत्रपूतं पल्लवफल विन्यस्य कृतकलशोद्धारमंत्रोपहारोपस्कारानेतानेकशः स्वयमुद्धृत्योद्धृत्य तत्क्षणसंमानितपुरंध्रीपाणिपद्मेषु समर्प्य शेषकलशान्निजकरकमलैरुद्धहंतो

"लोकप्रसिद्ध" इत्यादि श्लोक पढकर "ओं ह्रीं लोकाभिमत" इत्यादि कहकर आठवें पत्रपर स्थित देवताकी जलादि अष्ट द्रव्यसे पूजा करे ॥ ४९ ॥ इसप्रकार जलदेवताओंको पूजासे प्रसन्न करके जलाशयमें घुसकर इस आगेके "ओं एतां" इत्यादि श्लोकमंत्रसे उस लिखित कमलपत्रका विसर्जन कर दे (छोड़ दे) ॥ ५० ॥ उसके बाद वे इंद्र उस

गजादिवाहनान्यधिरुह्य महोत्सवेनाभिचैत्यालयमागच्छेयुः । ओं श्री ह्री धृतिकीर्तिबुद्धिलक्ष्मीशांति-पुष्टयः श्रमद्दिक्कुमार्यो जिनेन्द्रमहाभिषेककलशमुखेष्वेतेषु नित्यनिविष्टा भवत भवतेति स्वाहा । इति श्र्यादिमंत्रः ।

ॐ "क्षीराब्धिं सर्वतीर्थोदकमयवपुषा स्वैरमाक्रोशतोस्य क्षीरैः पद्माकरस्य प्रणयमुपगतान् स्नातकुंभीयकुंभान् । सानंदं श्र्यादिदेवीनिचयपरिचयोज्जृंभमाणप्रभावानेतानभ्युद्धरामो भगवदभिषवश्रीविधानाय हर्षात् ॥ ५१ ॥

इति कलशोद्धारमत्रः । एतत्पठित्वा पुष्पाक्षतेनोपहार्य कलशानुद्धरेत् । इति तीर्थोदकादानविधानम् । अथ जिनयज्ञादिविधानान्यभिधास्यामः—

जलसे कलशोंको भरकर किनारेपर रक्खे फिर उनको चंदन; पुष्पमाला-दूव-दर्भ-अक्षत सरसोंसे पूजकर उनके मुखपर 'श्री आदि' मंत्रसे पवित्रित पत्ता व फल रखके कलशोद्धार मंत्रसे पूजित कर एक एकको उठावे । फिर उसी समय सौभाग्यवती स्त्रियोंके हस्तकमलोंमें रखे और बचे हुए कलशोंको आप हाथमें लेकर हाथी आदिकी सवारीपर चढके महान उच्छवके साथ चैत्यालय (जिनमंदिर) में आवैं ॥ " ओं श्री " इत्यादि श्री आदि मंत्र है । " ओं क्षीराब्धि " इत्यादि कलशोद्धारमंत्रश्लोक हैं ॥ ५१ ॥ ऐसा पढकर पुष्प अक्षतादि

इंद्रश्चैत्यालयं गत्वा वीक्ष्य यज्ञांगसज्जनान् । यागमंडलपूजार्थं परिकर्माचरेदिदम् ॥ ५२ ॥
स्नानानुस्नानभागात्तधौतवस्त्रो रहः स्थितः । कृतेर्यापथसंशुद्धिः पर्यंकस्थोऽमृतोक्षितः॥५३॥
दहनप्लावने कृत्वा दिव्यस्वांगेषु दिक्षु च । न्यस्य पंचनमस्कारान् प्रयुक्तगुरुमुद्रकः ॥ ५४ ॥
व्युत्सृज्यांगं पूरकेण व्याप्ताशेषजगत्त्रयम् । शुद्धस्फटिकसंकाशं प्रातिहार्यादिभूषितम् ॥ ५५ ॥
पादाधोनं नमद्विश्वं स्फूर्जतं ज्ञानतेजसा । परमात्मानमात्मानं ध्यायन् जप्त्वापराजितम्॥५६॥

क्षेपण कर कलशोंको उठाना चाहिये ॥ इस प्रकार जलयात्राविधान वर्णन किया ॥ अब जिनयज्ञादि विधियोंको कहते है—प्रतिष्ठाचार्य इंद्र चैत्यालयमें जाकर पूजा सामग्री और श्रावकोंको देखकर यागमंडलकी पूजा करनेके लिये इस कहे जानेवाले अंगसंस्कारको करे ॥ ५२ ॥ पहले तो जलसे स्नान करे, उसके बाद मंत्रस्नान करे; पुन. धुले हुए धोती दुपट्टे पहरे । उसके बाद एकांतमें स्थित होकर ईर्यापथशुद्धि करके पद्मासन लगाकर अमृतमंत्रसे मंत्रित जलको अपने ऊपर छिड़के ॥ ५३ ॥ आगे कहे जानेवाली दहन प्लावन क्रियाओको करके अपने अंगोंमे और दिशाओंमें पंच नमस्कारका न्यास करके पंचगुरुमुद्राको धारण करे ॥ ५४ ॥ पूरकवायुसे कायोत्सर्ग करके परमात्माके समान अपना ध्यान करे और नमस्कार मंत्रको जपे । इसप्रकार परिणामोंकी शुद्धिसे पापोंका नाश कर पुण्यात्मा हुआ

---

१ एते श्लोकाः वसुनंदिसैद्धांतिकाचार्यविरचितप्रतिष्ठासारसंग्रहेपि संति इति तद्रीतिमनुसृत्यात्रापि उद्धृता इति प्रतीयते ।

परिणामविशुद्धयास्तपाप्मौघः पुण्यपुंजभाक् । ध्वस्तापायचयः कुर्याज्जिनयज्ञादिसंविधीन् ५७
झं वं स्वराष्टतं तोयमंडलद्वयवेष्टितम् । तोये न्यस्याग्रतर्जन्या तेनानुस्नानमावहेत् ॥ ५८ ॥
अर्धचंद्रपुटीरूपं पंचपत्रांबुजाननम् । नांतलांतास्रदिक्कोणं धवलं जलमंडलम् ॥ ५९ ॥
पृथग्द्विद्व्येकवाक्यांतमुक्तोच्छ्वासं जपेन्नव । वारान् गाथां प्रतिक्रम्य निषद्यालोचयेत्ततः॥६०॥
गुरुमुद्राग्रभू झं वं ह्वः पोहोभ्योमृतैः स्वके । स्रवद्भिःसिच्यमानं स्वं ध्यायन् मंत्रमिमं पठेत् ॥६१॥

विघ्नोंको दूर कर जिनेन्द्रदेवकी पूजादि क्रियाओंको करे ॥ ५५ । ५६ ।५७॥ अब अनुस्नाना-दि क्रियाओंको कहते है—झं व इन दो अक्षरोंको जलमंडलमे लिखकर उसको जलमे रखे; फिर तर्जनी अंगुलीसे जल लेकर अपने ऊपर डाले—यह मंत्रस्नान है[1] ॥ ५८ ॥ जो अर्ध-चंद्रपुटी स्वरूप हो जिसका मुख पांचकमल पत्ररूप हो जिसके, दिशाओंके कोने "प व" इन दो अक्षरोसे व्याप्त हो और श्वेतवर्ण हो, वह जलमंडल है ॥ ५९ ॥ एक उच्छ्वासमें तीन वार इस तरह तीन उच्छ्वासोमें नौवार मंत्रको जपकर "ईर्यापथे" इत्यादि श्लोक पढे ॥ ६० ॥ यह ईर्यापथशोधन किया है[2] । गुरुमुद्राके अग्रभागकी भूमिमें 'झं वं ह्वः पो ह.—'इन अमृत अक्ष-रोसे अपनेको सीचा हुआ समझ ध्यान करे । फिर इस " ओं ह्रीं अमृते " इत्यादि मंत्रको पढता हुआ जलको शरीरपर छांटे ॥ ६१ ॥ यह अमृतस्नान है ॥ त्रिकोण यंत्रके कोनोंमें

---

१ मंत्रस्नानम् । २ इर्यापथेर्शोधनम् ।

ॐ ह्रीं अमृते अमृतोद्भवे अमृतवर्षिणि अमृत स्रावय स्रावय स सं क्लीं २ ब्लूं २ द्रां द्रा द्रीं द्रीं द्रावय २ सं हं क्ष्वीं क्ष्वीं हं सः स्वाहा । इति अमृतस्नानम् ।

स्वस्तिकाग्रत्रिकोणांतर्गतरेफशिखावृतम् । अग्निमंडलमोकारगर्भं रक्ताभमास्थितम् ॥ ६२ ॥
सप्तधातुमयं देहं दहेद्रेफार्चिषां चयैः । सर्वांगदेशगैर्विष्वग्धूयमानैर्नभस्वता ॥ ६३ ॥
नाभिस्थसस्वरद्व्यष्टपत्राब्जांतरर्हं रतः । दहेच्छिखौघैरुद्यद्भिरष्टकर्ममयं वपुः ॥ ६४ ॥
वृत्तात्सबिंदोर्दिक्कोणस्वायाद्व्योमूत्रिकाकृतेः । कृष्णाद्वायुपुराद्वातैः प्रापद्भिः प्रेर्य भस्म तत् ॥ ६५ ॥
व्योमव्यापिघनासारैः स्वमाप्लाव्यामृतस्रुतम् । खेहं ध्यायन् सृजेद्देहममृतैरन्यपिंडवत् ॥ ६६ ॥

सांथिया वनावे । उस यंत्रके अंदर रेफशिखासे वेष्टित ओकारसहित लालवर्णवाले अग्निमंडलका चिंतन करे । फिर सात धातुमई देहको रेफकी ज्वालासे भस्म करे । नाभिमे स्थित सोलह कमलपत्रोंके मध्यमें स्थित अर्हके रेफकी शिखासे अष्टकर्ममयी शरीरको भस्म करे । यह दहनक्रिया है ॥ ६२ । ६३ । ६४ ॥ फिर गोलाकार बिंदुसहित वायुमंडलसे उस भस्मको दूर करे । उसके बाद " खे हं " इन दो अक्षररूपी अमृतजलसे अपनेको शुद्ध करके कायोत्सर्ग करे ॥ ६५ । ६६ ॥ यह प्लावनक्रिया है । अब अंगन्यासक्रिया कहते हैं—दोनों हाथोंकी कनिष्ठा आदि अंगुलियोंमे ' ओं ह्रां ' आदि नम-

---

१ दहनम् । २ प्लावनं ।

हस्तद्वये कनीयस्या द्व्यंगुलीनां यथाक्रमम्। मूलं रेखात्रयस्योर्ध्वमग्रे च युगपत्सुधीः॥६७॥
न्यस्योंह्रामादिह्रोमाढ्यान्नमस्कारान् करौ मिथः। संयुज्यांगुष्ठयुग्मेन द्विस्तान् स्वांगेष्विति न्यसेत्

ओं ह्रा णमो अरहंताणं स्वाहा हृदये १ ओं ह्रीं णमो सिद्धाण स्वाहा ललाटे २ ओं ह्रूं णमो आइरियाणं स्वाहा शिरसि दक्षिणे ३ ओं ह्रौ णमो उवज्झायाणं स्वाहा पश्चिमे ४ ओं ह्रः णमो लोए सव्व-साहूण स्वाहा वामे ५ पुनस्तानेव मत्रान् शिरःप्राग्भागे शिरसि दक्षिणे पश्चिमे उत्तरे च क्रमेण विन्यसेत्॥

तथा वामप्रदेशिन्यां न्यस्य पंचनमस्कृतीः। पूर्वादिदिक्षु रक्षार्थं दशस्वपि निवेशयत् ॥ ६९॥

क्षां क्षीं क्षूं क्षे क्षै क्षों क्षौं क्षं क्षः क्षः कूटबीजानि रक्षार्थम् ।

वर्मितोऽनेन सकलीकरणेन महामनाः। कुर्वन्निष्टानि कर्माणि केनापि न विहन्यते ॥ ७० ॥

स्कार मंत्रको स्थापन कर दोनों हाथोंको जोड़कर दोना अंगूठोसे " ओं ह्रां " इत्यादि बोलकर हृदय आदि स्थानोमें न्यास करे। यह अगन्यास है ॥ ६७। ६८ ॥ अब दिग्बंधन-क्रिया कहते हैं—उसके बाद बाएँ हाथकी तर्जनी उंगलीमें पंचनमस्कार मंत्रका न्यास (स्थापन) कर रक्षाके लिये पूर्व आदि दिशाओंमे क्रमसे उसी उंगलीसे " क्षां " आदि दशों अक्षरोंका न्यास करे ॥ ६९ ॥ इस सकलीकरणरूपी वख्तरको पहरे हुए जो मंत्रवाला

---

१ 'क्षा' आदि कूटाक्षरोंसे अथवा 'हा' आदि शून्य बीजसे दोनोंही प्रकारसे न्यास होता है। २ वामतर्जन्या दिशाबंधो विधेय । प्रतिष्ठासारसंग्रहे ह्रामित्यादिना शून्यबीजेनापि दिग्बंधो भवतीति लिखितमास्ते।

ओं नमोऽर्हते सर्वं रक्ष रक्ष हूं फट् स्वाहा । अनेन पुष्पाक्षत सप्तवारान् प्रजप्य परिचारकाणा शीर्षेषु प्रक्षिपेत् ॥ इति परिचारकरक्षा । ओं हूं क्षूं फट् किरिटि २ घातय २ परविघ्नान् स्फोटय स्फोटय सहस्रखंडान् कुरु २ परमुद्रा छिंद २ परमंत्रान् भिंद २ क्षः क्षः हूं फट् स्वाहा । अनेन श्वेतसिद्धार्थानभिमंत्र्य सर्वविघ्नोपशमनार्थं सर्वदिक्षु क्षिपेत् ॥ इति सकलीकरणविधानम् । इतो जिनयज्ञादिविधानं ।

व्योमापगाद्युत्तमतीर्थवारां धारा वरांभोजपरागसारा ।
तीर्थंकराणामियमंध्रिपीठे स्वैरं लुठित्वा त्रिजगत् पुनातु ॥ ७१ ॥

इष्ट कर्मोंको करता है, उसके कोइ विघ्न नही आता ॥ ७० ॥ "ओ नमो" इत्यादिसे पुष्प-अक्षतोंको सात वार पढकर पूजाके सहायकोंके ऊपर क्षेपण करनेसे उनको कोई भी विघ्न नहीं होताहै । इस प्रकार परिचारकोंकी रक्षा वर्णनकी । "ओ हूं" इत्यादि मंत्रसे सफेद सरसोंको

१ इत पूर्वं प्रतिष्ठासारोक्तपाठः क्षिप्यते–णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं ॥१॥ चत्तारि मंगलं अरहंतमंगलं सिद्धमंगलं साहुमंगलं केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं ॥ २ ॥ चत्तारि लोगोत्तमा अरहंतलोगोत्तमा सिद्धलोगोत्तमा साहुलोगोत्तमा केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा ॥ ३ ॥ चत्तारि सरणं पव्वज्जामि अरहंतसरणं पव्वज्जामि सिद्धसरणं पव्वज्जामि साहुसरणं पव्वज्जामि केवलिपण्णत्तो धम्मो सरणं पव्वज्जामि ॥ ४ ॥ ओं नमो अर्हते स्वाहा । अपवित्रः पवित्रो वा सुस्थितो दुःस्थितोऽपि वा । ध्यायेत् पंच

ओं ह्रीं अर्हं श्रीपरब्रह्मणेऽनंतानतज्ञानशक्तये जल निर्वपामीति स्वाहा । तीर्थोदकधारा ।

काश्मीरकृष्णागुरुगंधसारकर्पूरपौरस्त्यविलेपनेन ।
निसर्गसौरभ्यगुणोल्बणानां संचर्चयाम्यंघ्रियुगं जिनानाम् ॥ ७२ ॥
ओं ह्रीं.... गंधं निर्व० ।

मंत्रित कर सब दिशाओमे फेंके॥ इसप्रकार सकलीकरण विधि समाप्त हुई। अब जिनयज्ञादि विधान कहते है—प्रतिष्ठासारमे "णमो अरिहंताणं" इत्यादि टिप्पणीमे लिखे हुए पाठको पढे उसके बाद जलादि चढानेके श्लोक बोले ॥ "व्योमा" इत्यादि श्लोक पढकर "ओं ह्रीं" बोलकर जलधारा चढावे ॥ ७१ ॥ "काश्मीर" और "ओं ह्रीं" बोलकर चंदन चढावे

नमस्कारान् सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ५ ॥ अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थागतोऽपि वा । यः स्मरेत्परमात्मानं स बाह्याभ्यंतरे शुचि ॥ ६ ॥ अद्य मे क्षालितं गात्रं नेत्रे च विमलीकृते । स्नातोहं धर्मतीर्थेषु जिनेंद्र तव दर्शनात् ॥ ७ ॥ श्रीमज्जिनेन्द्रमभिवन्द्य जगत्त्रयेशं स्याद्वादनायकमनंतचतुष्टयार्हम् । श्रीमूलसंघसुदृशां सुकृतैकहेतुर्जिनेंद्रयज्ञविधिरेष मयाऽभ्यधायि ॥ ८ ॥ स्वस्ति त्रिलोकगुरवे जिनपुंगवाय स्वस्ति स्वभावमहिमोदयसुस्थिताय । स्वस्ति प्रकाशसहजोर्जितदृग्मयाय स्वस्ति प्रसन्नललिताद्भुतवैभवाय ॥ ९ ॥ स्वस्त्युच्छलद्विमलबोधसुधाप्लवाय स्वस्ति स्वभावपरभावविभासकाय । स्वस्ति त्रिलोकविततैकचिदुद्गमाय स्वस्ति त्रिकालसकलायतिविस्तृताय ॥ १० ॥ अर्हन् पुराणपुरुषोऽर्हति पावनानि वस्तूनि नूनमखिलान्ययमेक एव । अस्मिन् ज्वलद्विमलकेवलबोधवह्नौ पुण्यं समग्रमहमेकमना जुहोमि ॥ ११ ॥ द्रव्यस्य शुद्धिमधिगम्य यथानुरूपं भावस्य शुद्धिमधिकामधिगंतुकामः । आलंबनानि विविधान्यवलंब्य वल्गन् भूतार्थयज्ञपुरुषस्य करोमि

आमोदमाधुर्यनिधानकुंदसौदर्यशुंभत्कलमाक्षतानाम् ।
पुंजैः समक्षैरिव पुण्यपुंजैर्विभूषयाम्यग्रभुवं विभूनाम् ॥ ७३ ॥

ओं ह्रीं... अक्षत निर्व० ।

सुजातजातीकुमुदाब्जकुंदमंदारमल्लीबकुलादिपुष्पैः ।
मत्तालिमालामुखरैर्जिनेंद्रपादारविंदद्वयमर्चयामि ॥ ७४ ॥

ओं ह्रीं... पुष्पं निर्व० ।

नानारसव्यंजनदुग्धसर्पिपकान्नशाल्यन्नदधीक्षुभक्ष्म् ।
यथार्हहेमादिसुभाजनस्थं जिनक्रमाग्रे चरुमर्पयामि ॥ ७५ ॥

॥ ७२ ॥ " आमोद " और " ओं ह्रीं " कहकर अक्षत चढावे ॥ ७३ ॥ " सुजात " और " ओं ह्रीं " पढकर पुष्प चढावे ॥ ७४॥ " नानारस " और " ओ ह्रीं " बोलकर नैवेद्य चढावे

यज्ञम् ॥ १२ ॥ (ओं विधियज्ञप्रतिज्ञानाय प्रतिमाग्रे पुष्पांजलिं क्षिपेत् ॥) चिद्रूपं विश्वरूपव्यतिकरितमनाद्यंतमानंदसांद्रं यत्प्राक्तैर्विवर्तैर्व्यवृतदतिपतददु स्वसौख्याभिमाने । कर्मोद्रेकात्तदात्मप्रतिघमलभिदोद्भिन्ननिस्सीमतेज प्रत्यासीदत्परौज स्फुरदिह परमब्रह्म यक्षेर्हमाह्वम् ॥ १३ ॥ (ओं परमब्रह्मयज्ञप्रतिज्ञानाय प्रतिमोपरि पुष्पांजलिं क्षिपेत् ।) स्वामिन् संवौषट् कृतावाहनस्य द्विष्ठातेनोट्टंकितस्थापनस्य । स्व निर्नेकुं ते वषट्कारजाप्रत्सांनिध्यस्य प्रारभेयाष्टधेष्टिम् ॥१४ ॥ ओं ह्रीं अर्ह श्रीपरब्रह्म अत्रावतरावतर संवौषट् । अनेनावाहयेत् । ओं ह्रीं अर्हं श्रीपरब्रह्म अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ । अनेन तत्प्रतिष्ठापयेन् । ओं ह्रीं अर्हं श्रीपरब्रह्म मम सनिहितं भव वषट् । अनेन तद्वत् सनिधापयेत् ॥)

ओं ह्रीं नैवेद्यं निर्व० ।

ओं लोकानामर्हतां भूर्भुवः स्वर्लोकानेकीकुर्वतां ज्ञानधाम्ना ।
दीपव्रातैः प्रज्वलत्कीलजालैः पादांभोजद्वंद्वमुद्योतयामि ॥ ७६ ॥

ओं ह्रीं... आरार्तिकं निर्व० ।

श्रीखंडादिद्रव्यसंदर्भगर्भैरुद्यद्धूम्यामोदितस्वर्गिवर्गैः ।
धूपैः पापव्यापदुच्छेददक्षानंघ्रीनर्हत्स्वामिनां धूपयामि ॥ ७७ ॥

ओं ह्रीं धूप निर्व० ।

फलोत्तमादाडिममातुलिंगनारिंगपुंगाम्रकपित्थपूर्वैः ।
हृद्घ्राणनेत्रोत्सवमुद्गिरद्भिः फलैर्भजेर्हत्पदपद्मयुग्मम् ॥ ७८ ॥

ओं ह्रीं फल निर्व० ।

वार्गंधादिद्रव्यसिद्धार्थदूर्वानंद्यावर्तस्वास्तिकाद्यैरनिंद्यैः ।
हैमे पात्रे प्रस्तृतं विश्वनाथात् प्रत्यानंदादर्घमुच्चारयामि ॥ ७९ ॥

॥ ७५ ॥ " ओं लोकाना " और " ओं ह्रीं " बोलकर दीप चढावे ॥ ७६ ॥ " श्रीखंडादि " और " ओं ह्रीं " बोलकर धूप चढावे ॥ ७७ ॥ " फलोत्तमा " और " ओं ह्रीं " बोलकर फल चढावे ॥ ७८ ॥ " वार्गंधादि " और " ओं ह्री " बोलकर अर्घ चढावे ॥ ७९ ॥ फिर

ओं ह्रीं... अर्घं निर्वं० ।

वृषभो वृषलक्ष्मीवानजितो जितदुष्कृतः । शंभवः संभवत्कीर्तिः साभिनंदोभिनंदनः ॥ ८० ॥
सुमतिः सुमतिः पद्मप्रभः पद्मप्रभः प्रभुः । सुपार्श्वः पार्श्वरोचिष्णुश्चंद्रश्चंद्रप्रभः सताम् ॥ ८१ ॥
पुष्पदंतोस्तपुष्पेषुः शीतलः शीतलोदितः । श्रेयान् श्रेयस्विनां श्रेयान सुपूज्यः पूज्यपूजितः ८२
विमलो विमलोऽनन्तज्ञानशक्तिरनंतजित् । धर्मो धर्मोदयादित्यः शांतिः शांतिक्रियाग्रणीः ।८३।
कुंथुः कुंथ्वादिसदयः सुरप्रीतिररप्रभुः । मल्लिर्मल्लिजये मल्लः सुव्रतो मुनिसुव्रतः ॥ ८४ ॥
नमिर्नमत्सुरासारो नेमिर्नेमिस्तपोरथे । पार्श्वः पार्श्वस्फुरद्रोचिः सन्मतिः सन्मतिप्रियः ॥८५॥
एते तीर्थकृतोनंतैर्भूतसद्भाविभिः समम् । पुष्पांजलिप्रदानेन सत्कृताः संतु शांतये ॥ ८६ ॥

पुष्पाजलि. । इति जिनयज्ञविधान । अथात· सिद्धभक्तिविधानम् ।

प्रक्षीणे मणिवन्मले स्वमहसि स्वार्थप्रकाशात्मके
निर्मग्ना निरुपाख्यमोघचिदमोक्षार्थितीर्थक्षिपः ।

" वृषभो " इत्यादि सात श्लोक पढकर आशीर्वादके लिये पुष्पांजलि क्षेपण करे ॥ ८० ॥ ॥ ८१ । ८२ । ८३ । ८४ । ८५ । ८६ ॥ इसप्रकार जिन (अर्हंत) पूजाविधान हुआ । अब सिद्ध भक्तिकी विधि कहते हैं–" प्रक्षीणे " इत्यादि श्लोक पढकर अर्हंतकी प्रतिमाके आगे

कृत्वाऽनाद्यपि जन्म सांतममृतं साद्यप्यनंतं श्रितान् ।
सदृग्धीनयवृत्तसंयमतपः सिद्धान् भजेर्घेण वः ॥ ८७ ॥

अनेनार्हत्प्रतिमाग्रे सिद्धानामर्घं दत्वा भक्त्या स्तुवीत। तथाहि । अर्हत्प्रतिष्ठारंभक्रियाया पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावंदनास्तवसमेत सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं। इत्युच्चार्य णमो अरहंताणमित्यादि दंडकं पठित्वा थोस्सामीत्यादिस्तवं चाधीत्य सिद्धभक्तिमिमा पठेत् ।

यस्यानुग्रहतो दुराग्रहपरित्यक्त्वात्मरूपात्मनः
सद्द्रव्यचिदचित्रिकालविषयं स्वैः स्वैरभीक्ष्णं गुणैः ।
सार्थव्यंजनपर्ययैः समवयय्ज्जानाति बोधः समं
तत्सम्यक्त्वमशेषकर्मभिदुरं सिद्धान् परं नौमि वः ॥ ८८ ॥
यत्सामान्यविशेषयोः सह पृथक् स्वान्यस्थयोर्दीपव-
च्चित्तं द्योतकमुद्गिरन्मुदमरं नो रज्यति द्वेष्टि न ।
धारावाह्यपि तत्प्रतिक्षणनवीभावोद्धुरार्थार्पित-
प्रामाण्यं प्रणमामि वः फलितदृग्ज्ञप्त्युक्तिमुक्तिश्रिये ॥ ८९ ॥

सिद्धोंको अर्घ देवे ॥ ८७ ॥ उसके बाद भक्तिसहित स्तुति करे । वह इस तरह है—प्रथम तो

सत्तालोचनमात्रमित्यपि निराकारं मतं दर्शनं
साकारं च विशेषगोचरमिति ज्ञानं प्रमादीच्छया ।
ते नेत्रे क्रमवर्तिनी सरजसां प्रादेशके सर्वतः
स्फूर्जंती युगपत्पुनर्विरजसां युष्माकमंगोतिगाः ॥ ९० ॥
शक्तिव्यक्तिविभक्तविश्वविविधाकारौघकिर्मीरिता-
नंतानंतभवस्थमुक्तपुरुषोत्पादव्ययध्रौव्यव्ययात् ।
स्वं स्वं तत्त्वमसंकरव्यतिकरं कर्तुंन् क्षणं प्रत्यथो
भोत्क्षणमन्वयतः स्मरामि परमाश्चर्यस्य वीर्यस्य वः ॥ ९१ ॥
यद्बाधाहंति न जातु किंचिदपि न व्याहन्यते केनचि-
द्याप्तेष्वीतसमस्तवस्त्वपि सदा केनापि न स्पृश्यते ।
यत्र सर्वज्ञसमक्षमप्यविषयं तस्यापि चार्थाद्गिरां
तद्वः सूक्ष्मतमं स्वतत्त्वमभि वा भाव्यं भवोच्छित्तये ॥ ९२ ॥
गत्वा लोकशिरस्य धर्मवशतश्चंद्रोपमे सन्मुख-
प्राग्भाराख्यशिलातलोपरि मनागूनैकगव्यूतिके ।

" अर्हत्प्रतिष्ठा " इत्यादि बोलकर " णमो अरहंताणं " इत्यादि दंडक पढकर " थोस्सामि "

योगोज्झांगदरो न मित्यपि मिथो संबाधमेकत्र य-
ल्लब्ध्यानंतमितोपि तिष्ठथ स वः पुण्योवगाहो गुणः ॥ ९३ ॥
सिद्धाश्चेद्गुरवो निराश्रयतया भ्रश्यंत्ययःपिंडव-
त्तेऽघश्चेल्लघवोर्कतूलवदितश्चेतश्च चंडेन तत् ।
क्षिप्यंते तनुवातवातवलयेनेत्युक्ति युत्क्रुद्धतै-
र्नाम्नोपज्ञमपीष्यते गुरुलघुः क्षुद्रैः कथं वो गुणः ॥ ९४ ॥
यत्तापत्रयहेतिभैरवभवोदर्चिः श्रमाय श्रमो
युष्माभिर्विदधे व्यपच्यत तदव्याबाधमेतद्ध्रुवम् ।
येनोद्वेलसुखामृतार्णवनिरातंकाभिषेकोल्लस-
च्चित्कायान् कलयापि वः कलयितुं श्राम्यंति योगीश्वराः ॥ ९५ ॥
एतेनंतगुणाद्गुणाः स्फुटमयोद्धृत्याष्ट दिष्टा भव-
त्तत्वा भावयितुं सतां व्यवहृतिप्राधान्यतस्तात्त्विकैः ।

इत्यादि स्तुति कहकर इसे कहे जानेवाली स्तुतिको पढै जो कि "यस्यानुग्रहतो" इत्यादिसे लेकर ९६ श्लोक तक नौ श्लोकोंमें कही गई है ॥ ८८ ॥ ८९ । ९० । ९१ । ९२ । ९३ । ९४ । ९५ । ९६ ॥ जो

एतद्भावनया निरंतरगलद्विकल्पजालस्य मे
स्तादत्यंतलयः सनातनचिदानंदात्मनि स्वात्मनि ॥ ९६ ॥
उत्कीर्णामिव वर्तितामिव हृदि न्यस्तामिवालोकय-
न्नेतां सिद्धगुणस्तुतिं पठति यः शश्वच्छिवाशाधरः ।
रूपातीतसमाधिसाधितवपुः पातः पतद्दुष्कृत-
व्रातः सोऽभ्युदयोपभुक्तसुकृतः सिद्धेत् तृतीये भवे ॥ ९७ ॥

इति सिद्धभक्तिविधानम् । अथातो महर्षिपर्युपासनविधानम् ।

वृषं वृषभसेनाद्याः सिंहसेनादयोऽजितम् । संभवं चारुषेणाद्या वज्रनाभिपुरस्सराः ॥ ९८ ॥
कपिध्वजं चामराद्याः सुमतिं पद्मलांछनम् । ये वज्रचमरप्रष्ठाः सुपार्श्वं बलपूर्वकाः ॥ ९९ ॥
चंद्रप्रभं दत्तमुखाः पुष्पदंतं समाश्रिताः । विदर्भाद्याः शीतलेशमनगारपुरोगमाः ॥ १०० ॥
कुंथुप्रधानाः श्रेयांसं धर्माद्या द्वादशं जिनम् । विमलं मेरुपौरस्त्या जयार्याधाश्चतुर्दशम् ॥ १०१ ॥
धर्मं त्वरिष्टसेनाद्याः शांतिं चक्रायुधादयः । स्वयंभूप्रमुखाः कुंथुं कुंभार्याद्यास्त्वरप्रभम् ॥ १०२

कोई भव्य जीव इस सिद्धगुणस्तुतिको शुद्ध-मन-वचन कायसे करता है वह तीसरे भवमें अवश्य अनंत सुखका स्थान मोक्षको पा सकता है ॥ ९७ ॥ इस प्रकार सिद्धभक्तिकी विधि वर्णन की गई है । अब महर्षियोंकी पूजाविधि कहते हैं—" वृषं " इत्यादि श्लोकसे लेकर

मल्लिं विशाखप्रमुखा मल्ल्याद्या मुनिसुव्रतम्। नमीशं सुप्रभासाद्या वरदत्ताग्रतः सराः॥१०३
नेमिं पार्श्वं स्वयंभ्वाद्या गौतमाद्याश्च सन्मतिम्।तेभ्यो गणधरेशेभ्यो दत्तोऽर्घोऽयं पुनातु नः१०४
ये सन्मतेरिन्द्रभूतिर्वायुभूत्यग्निभूतिकौ। सुधर्ममौर्यौ मौड्याख्य पुत्रमैत्रेयसंज्ञितौ ॥ १०५॥
अकंपनो धवेलाख्यः प्रभासश्च गणाधिपाः। एकादशैदंयुगीनमुन्यार्दीस्तानुपास्महे॥१०६॥
श्रीगौतमसुधर्माह्वजंब्वाख्यान केवलेक्षणान्। श्रुतकेवलिनो विष्णुनंदिमित्रापराजितान्।१०७।
गोवर्धनं भद्रबाहुं दशपूर्वधरान पुनः। विशाखप्रौष्ठिलाचार्यौ क्षत्रियं जयसाह्वयम्॥ १०८॥
नागसेनं च सिद्धार्थं धृतिषेणसमाह्वयम्। विजयं बुद्धिलं गंगदेवाह्वं धर्मसेनकम्॥ १०९॥
एकादशांगनिष्णाताक्षत्रजलपालकौ। पांडुं च ध्रुवसेनं च कंसं चाथाग्रिमांगिनः॥११०॥
सुभद्रं च यशोभद्रं भद्रबाहुमनुक्रमात्। लोहाचार्यं यजामोत्र जिनसेनादिकानपि॥ १११ ॥
यजेर्हद्वलिमुक्तांगं पूर्वांशं धनं दिनम्। धरसेनगुरुं पुष्पदंतं भूतबलिं तथा॥ ११२ ॥
जिनचंद्रकुंदकुंदाचार्योमास्वातिवाचकौ। समंतभद्रस्वाम्यार्यं शिवकोटिं शिवायनम्॥११३॥

एकसौ सत्रहवे श्लोकतक पाठ पढकर वृषभसेन आदि आचार्योंको जलादि अष्टद्रव्यसे अर्घ देवे॥ ९८ से ११७ तक। सिद्धोंके बाद पुष्पांजलि देकर अर्घ चढाकर पंचांग प्रणाम करे इस प्रकार महर्षियोंका पूजाका विधान समाप्त हुआ। अब यहांसे यज्ञदीक्षाकी विधि कहते हैं–"न्यस्येह" इत्यादि श्लोक बोलकर भगवान्के सिंहासनके आगे चंदन पुष्प वस्त्रादिको

पूज्यपादं चैलाचार्य वीरसेनं श्रुतेक्षणम् । जिनसेनं नेमिचंद्रं रामसेनं सुतार्किकान्॥११४॥
अकलंकानंतविद्यानंदिमाणिक्यनंदिनः । प्रभाचंद्रं रामचंद्रं वासुवेंदुमवाससम् ॥ ११५ ॥
गुणभद्रादिकानन्यानपि श्रुततपःपरान् । वीरांगजातानर्घेण सर्वान् संभावयाम्यहम् ॥११६

निर्ग्रंथाः शुद्धमूलोत्तरगुणमणिभिर्येऽनगारा इतीयुः
सञ्ज्ञां ब्रह्मादिधर्मैऋषय इति च ये बुद्धिलब्ध्यादिसिद्धैः ।
श्रेण्योश्चारोहणैर्ये यतय इति समग्रेतराध्यक्षबोधै-
र्ये मुन्याख्यां च सर्वान् प्रभुमह इहतानर्घयामो मुमुक्षून् ॥ ११७ ॥

सिद्धानुत्तरेण पुष्पाजलिं वितीर्य पचांगं प्रणामं कुर्यात् ॥ इति महर्षिपर्युपासनविधानम् ।

अथातो यज्ञदीक्षाविधानम् ।

न्यस्येह भगवत्पादपीठे दिव्यं प्रसाधनम् । कृत्वेदमाददेऽनादिसिद्धमंत्राभिमंत्रितम्[1]॥११८॥
पूज्यपूजावशेषेण गोशीर्षेणाहृतालिना । देवाधिदेवसेवायै स्ववपुश्चार्चयेमुना[2] ॥ ११९ ॥
जिनांघ्रिस्पर्शमात्रेण त्रैलोक्यानुग्रहक्षमाः । इमाः स्वर्गरमादूतीरर्धरयामि वरस्रजः[3]॥ १२० ॥

मंत्रित कर रक्खे । यह चंदनादिका अभिमंत्रण हुआ । ११८ ॥ "पूज्य" इत्यादि श्लोक पढकर अपने अंगपर चंदनका लेप करे । यह चंदनलेपविधि हुई ॥ ११९ ॥ "जिनांघ्रि" इत्यादि

१ श्रीचंदनाद्यभिमंत्रणम् । २ श्रीचंदनानुलेपनं । ३ स्रग्धारणं ।

शुंभत्पुष्पतिकादशे शुचिरुची भ्राजिष्णुमैत्रीभरं
सच्छालापतिना गुणा नव विशोद्गीर्णैरिवासूत्रिते ।
एकद्रव्यवदार्षदग्भिरपि चोद्देश्ये प्रवेश्ये नख-
च्छिद्रेपीह महे प्रभोरहमिमे दिव्ये दधे वाससी ॥ १२१ ॥
मुक्ताशेखरपट्टयोर्निजकरैराक्रम्य चूकालिके
राज्ञो जित्वरवत्कमप्यतिकरं रोद्धुं बलाद् दृप्यतोः ।
स्फूर्जत्कुंडलकर्णपूररचितोपांतेंद्रचापश्रमे
मूर्द्ध्ने तन्मुकुटं जितार्थमजयत्यर्हत्प्रणामोद्धुरे ॥ १२२ ॥
प्रालंबसूत्रजिनसूत्रविराजिहार सद्दर्शनस्फुरितात्मतेजः ।
ग्रैवेयकं चरणचारु भजन् जिनेज्या सज्जस्तनोम्यमलचिद्रुचियज्ञैः[३] ॥१२३॥

कहकर माला पहरे । यह मालाधारणविधि है ॥ १२० ॥ "शुंभत्" इत्यादि पढकर देवांगवस्त्रोंको पहरे । यह वस्त्रधारण हुआ ॥ १२१ "मुक्ताशेखर" इत्यादि पढकर मुकुट धारण करना चाहिये । यह मुकुटधारणविधि जानना ॥ १२२ ॥ "प्रालंबसूत्र" इत्यादि पढकर यज्ञोपवीत (जनेऊ) धारण करे । यह यज्ञोपवीतविधि हुई ॥ १२३ ॥

१ देवांगवस्त्रपरिग्रहः । २ शेखरादिविशिष्टमुकुटोपयोगः । ३ प्रालंबसूत्राद्युपेतयज्ञोपवीतग्रहः इति ।

केयूरांगदकटकैर्दोलास्तंभौ जिनेन्द्रमखलक्ष्म्याः ।
सत्कृत्य भुजौ तद्रसमुन्मुद्रयितुं करेर्पये मुद्राम् ॥ १२४ ॥
छुरिकाछविविच्छुरितं रूपरुचि चुंबनोत्कदाममुखम् ।
सारसनं बद्धांघ्री सकनकमुद्रौ जिनाध्वरे दधे ॥ १२५ ॥
इदममलिनसम्यग्दर्शनज्ञानदेशव्रतमयचरितात्माकर्मिकब्रह्मचर्यम् ।
स्फुरदरमुपवासेनाद्य रत्नत्रयं मे भवतु भगवदर्हद्यज्ञदीक्षाविशिष्टम् ॥१२६॥
नन्वनहृद्युपवीतमर्जुनरुचिमन्यक्तरत्नत्रयं
ख्याताणुव्रतशक्तिपंचवसुमद्धी भूत्करे कंकणम् ।
मौंज्या श्रोणियुजा जिनक्रतुमिति ब्रह्मव्रतं द्योतयन्
यज्ञेस्मिन् खलु दीक्षितोहमधुना मान्योस्मि शक्रैरपि ॥ १२७ ॥

" केयूरांगद " इत्यादि श्लोक पढकर बाजू अंगूठी कडे पहरने चाहिये । यह कडे अंगूठी आदि पहरनेका विधान जानना ॥ १२४ ॥ " छुरिका " इत्यादि श्लोक पढकर करधनी व चरणमुद्रिका पहरे । यह कटिसूत्रादिविधि हुई ॥ १२५ ॥ " इदममलिन " इत्यादि श्लोक पढकर अर्हत्पूजाकी दीक्षाको स्वीकार करे ॥ १२६ ॥ " नन्वनह " इत्यादि श्लोक बोलकर

---

१ केयूरादियुक्तमुद्रिकास्वीकारः । २ कटिसूत्रादिसमेतचरणोर्मिकाधारण । ३ अर्हद्देवयज्ञदीक्षांगीकारः । ४ दीक्षा चिह्नोद्वहनं ।

ओं वज्राधिपतये आ हां अः ऐं ह्रौ ह्रः क्ष्ूं क्षं क्षः इंद्राय संवौषट् । अनेनैकविंशतिवाराना-त्मानमधिवासयेत् ॥ इति यज्ञदीक्षाविधानम् । ओं परमब्रह्मणे नमो नमः स्वस्ति स्वस्ति जीव जीव नंद नंद वर्द्धस्व वर्द्धस्व विजयस्व विजयस्व अनुशाधि अनुशाधि पुनीहि पुनीहि पुण्याहं पुण्याहं मांगल्यं मांगल्यं । पुष्पाजलिः ।

क्षेत्रपालाय यज्ञेस्मिन्नेतत्क्षेत्राधिरक्षिणे । बलिं दिशामि दिश्यग्रेर्वेद्यां विघ्नविघातिने ॥१२८॥

ओं ह्रीं क्रों अत्रस्थक्षेत्रपालाय इदं.. ... . . .स्वाहा ।

उत्खातपूरितसमीकृततत्कृतायां पुण्यात्मनीह भगवन्मखमंडपोर्व्याम् ।
वास्त्वर्चनादिविधिलब्धमखाभिभागं वेद्यां यजामि शशिभृद्दिशि वास्तुदेवम् ॥१२९॥

पुष्पांजलिः ।

श्रीवास्तुदेववास्तूनामधिष्ठातृतयानिशम् । कुर्वन्ननुग्रहं कस्य मान्यो नास्तीति मान्यसे ॥१३०॥

दीक्षाके चिह्न मौंजीबंधन ब्रह्मचर्यादिको धारण करे ॥ १२७ ॥ " ओं वज्राधिपतये ..... संवौषट् " इसको बोलकर इक्कीस वार अपनेको मंत्रित करे ॥ इस प्रकार यज्ञदीक्षाविधि जानना । अब मंडपकी प्रतिष्ठाविधि कहते हैं । " ओ परम " इत्यादि कहकर पुष्पोंको क्षेपण करे । " क्षेत्रपालाय " इत्यादि कहकर " ओ ह्रीं " इत्यादि पढकर क्षेत्रपालको जलादि चढावे ॥ १२८ ॥ " उत्खात " इत्यादि श्लोक पढकर पुष्पांजलि दे ॥ १२९ ॥ " श्रीवास्तु "

ओं ह्रीं क्रौं वास्तुदेवाय इदमित्यादि ·······   ·   ···स्वाहा ।

आयात भो वातकुमारदेवाः प्रभोर्विहारावसराप्तसेवाः ।
यज्ञांशमभ्येत सुगंधिशीतमृद्धात्मना शोधयताध्वरोर्वीम् ॥ १३१ ॥

ओं ह्रीं वायुकुमाराय सर्वविघ्नविनाशनाय महीं पूतां कुरु कुरु हूं फट् स्वाहा। दर्भपूलेन भूमिं समार्जयेत् ।

आयात भो मेघकुमारदेवाः प्रभोर्विहारावसराप्तसेवाः ।
गृह्णीत यज्ञांशमुदीर्णशंपा गंधोदकैः प्रोक्षत यज्ञभूमिम् ॥ १३२ ॥

ओं ह्रीं मेघकुमाराय धरा प्रक्षालय प्रक्षालयं अ ह स वं झ यः क्षः फट् स्वाहा । दर्भपूलोपात्तजलेन भूमिं सिंचेत् ।

आयात भो वह्निकुमारदेवा आधानविध्यादिविधेयसेवाः ।
भजध्वमिज्यांशमिमां मखोर्वीं ज्वालाकलापेन परं पुनीत॥ १३३ ॥

इत्यादि श्लोक तथा "ओं ह्रीं" बोलकर वास्तुदेवको जल आदि आठ द्रव्य चढावे ॥१३०॥ "आयात भोः" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर वायुकुमारको जलादि चढावे । दर्भकी बुहारीसे भूमिको शुद्ध करे ॥ १३१ ॥ "आयात भो "इत्यादि और 'ओं ह्रीं' इत्यादि कहकर मेघकुमारको बुलावे; फिर दर्भके पूलेसे जल लेकर छिडके ॥ १३२ ॥ "आयातभोः वह्नि "

ओं र अग्निकुमाराय भूमिं ज्वलय २ अ हं स वं झं ठं यः क्षः फट् स्वाहा ज्वलद्दर्भपूलानलेन भूमिं ज्वलयेत् । प्राचीमैशानीं चान्तरा वातकुमारादिस्थापनं ।

उद्भ्रान्त भो षष्टिसहस्रनागाः क्ष्माकामचारस्फुटवीर्यदर्पाः ।
प्रतृप्यतानेन जिनाध्वरोर्वीं सेकात्सुधागर्वमृजामृतेन ॥ १३४ ॥

ओं ह्रीं क्रौं षष्टिसहस्रसंख्येभ्यो नागेभ्यः स्वाहा । नागतर्पणार्थमैशान्यां दिशि जलं क्षिपेत् ।

ब्रह्मस्थाने मघोनः ककुभि हुतभुजो धर्मराजस्य रक्षो-
राजस्याहीन्द्रपाणे खनिरुहभृतः शम्भुमित्रस्य शंभोः
नागेंद्रस्यामृतांशोरपि सदकलसत्पुष्पदूर्वादिगर्भान्
दर्भान् वेद्यां न्यसामि न्यसितुमिह जिनाद्यासनानि क्रमेण ॥ १३५ ॥

दर्भन्यासविधानम् । "आभिः पुण्याभिरद्भिरेभिरर्चामि भूमिम्" । भूमिशुद्धिः ।

और "ओं रं" इत्यादि पढकर अग्निकुमारका आह्वानन करे । फिर जलते हुए दर्भके पूलेकी आगसे भूमिको तपावे ॥ पूर्व तथा ऐशानदिशामें वातकुमार आदिका स्थापन करे ॥ १३३ ॥ "उद्भ्रान्त" इत्यादि "ओं ह्रीं" इत्यादि पढकर नागकुमारको संतुष्ट करे । नागकुमारके तृप्त करनेके लिये ईशानदिशामें जलको क्षेपण करे ॥ १३४ ॥ "ब्रह्मस्थाने" इत्यादि पढकर दर्भको स्थापन करे ॥ १३५ ॥ "आभिः पुण्याभिः" इत्यादि पढकर मंडपके भीतर चारों तरफ

साष्टारत्निशतेंद्रिवेदिरुचिरं शक्रः कुवेरेण यं
ज्यायांसं मणिमंडपं विरचयत्यर्हत्प्रतिष्ठाकृते ।
अंतर्निर्मितदिविलक्ष्मीकटाक्षोद्भटः
सोयं मंगलमंडपो विजयते जैनेंद्रतिष्ठोत्सवे ॥ १३६ ॥

मंडपातः समंतात् कुकुमाक्तपुष्पाक्षत क्षिपेत् ।

पुण्या एतेन भूषा प्रवचनपठितस्तंभयज्ञांगपात्र
द्वाभावद्रव्यवीजध्वजकलशदलत्स्रग्वितानादिभावाः ।
स्तोत्राशीर्गीतवाद्यध्वनिनिचितदिशो भक्तिकौघास्तथैते
त्रिःसूत्रैः पंचवर्णैर्बहिरहमवसूत्र्यैनमर्घेण युंजे ॥ १३७ ॥

भूषणादिवस्तुषु पृथक् पुष्पाक्षतं प्रक्षिप्य बहिः पचवर्णसूत्रेण त्रीन् वारान् वेष्टयित्वा अर्घं दद्यात् ।
कुंकुसे (केशरसे) मिले हुए पुष्प- अक्षतका क्षेपण करे ॥ १३६ ॥ " पुण्या एतेन " इत्यादि पढकर आभूषण आदि वस्तुओंमे पुष्प अक्षत क्षेपण करके बाहर पांच रंगके डोरेको तिहरा लपेटकर अर्घ दे ॥ १३७ ॥ " मंडपस्यास्य " इत्यादि बोलकर तोरणके पास दाहिनी तरफ

---

१ " इंद्रवेद्यपि हस्ताना विज्ञेयाष्टोत्तरं शतम् । शतेंद्रो जिनबिंबानां प्रतिष्ठां कुरुते स्वयम् " ॥ तथाहि-द्वादशारत्निविस्तारं पंचाधिकदशप्रम । अष्टादशकरायामं सैकाविंशतिहस्तकम् । चतुर्विंशतिहस्तं वा दृढसूत्रेण सूत्रयेत् ॥

मंडपस्यास्य रक्षार्थं कुमुदांजनवामनान् । पुष्पदंतं च पूर्वादिद्वारेषु स्थापयाम्यहम् ॥ १३८ ॥

तोरणोपाताय सव्यदेशेषु कुकुमाक्तपुष्पाक्षतं क्षिपेत् ।

मुक्तास्वस्तिकमास्थितं नवसुधाधौतं मुखैः पंचाभि—
भीतं नव्ययवप्ररोहरुचिरैः कुंभं दृशा लालयन् ।
रंभास्तंभरुचाश्मगर्भखचितं सौवर्णदंडं दधत्
प्राग्द्वाराधिकृत प्रतीच्छ कुमुद त्वं पूतमेत बलिम् ॥ १३९ ॥

ओं ह्रीं कुमुदप्रतीहार निजद्वारि तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ इदं अर्घ्यं पाद्यं गंधं इत्यादि स्वाहा ।

मुक्ता ... . ।
लाहि त्वं बलिमंजनाजनरुचे द्वारे स्थितो दक्षिणे ॥ १४० ॥

ॐ ह्रीं अंजनप्रतीहार ... .. स्वाहा ।

मुक्ता...... .... ।
प्रत्यग्द्वारनियुक्त वामन बलिं कुंदद्युत स्वीकुरु ॥ १४१ ॥

कुंकुसे मिले हुए पुष्प अक्षतोंको क्षेपण करे॥ १३८ ॥ "मुक्ता" इत्यादि "ओं ह्रीं" इत्यादिसे कुमुदप्रतीहारको जलादि अष्ट द्रव्य चढावे ॥ १३९ ॥ "मुक्ता लाहि त्वं" इत्यादि बोलकर तथा "ओ ह्रीं" पढकर अंजनद्वारपालको जलादिसे संतुष्ट करे ॥ १४० ॥ "मुक्ता-प्रत्य-

ओं ह्रीं वामनप्रतीहार ....स्वाहा ।

मुक्ता... ।

स्रक्पुष्पोज्ज्वलपुष्पदंत बलिना तृप्योत्तरद्वाः स्थितः ॥ १४२ ॥

ओं ह्रीं पुष्पदंतप्रतीहार... . ...स्वाहा ।

इति मंडलप्रतिष्ठाविधानं ॥ अथातो वेदिप्रतिष्ठाविधानं ।

आदेशावहितान्यवासवपरीवारो विनिर्माप्य यां

दृक्शुद्धिप्रतिवृद्धये प्रयजते सौधर्मपोऽर्हत्प्रभुम् ।

सोयं वेदिमताल्लिकापरिकरश्चंद्रोपकाद्योप्ययं

सोत्र स्फूर्जति मंगलादिवदिमे ते भांति भांडोच्चयाः ॥ १४३ ॥

वेद्यां चंद्रोपकादिषु च कुंकुमाक्तं पुष्पाक्षतं क्षिपेत् ।

प्रोक्ष्य प्रोक्षणमंत्रपूतपयसा वेदीं वराद्यैः समा

न्द्वार" इत्यादि और "ओ ह्रीं" इत्यादि बोलकर वामनद्वारपालको प्रसन्न करे ॥१४१॥ "मुक्ता —स्रक पुष्प " इत्यादि " ओंह्रीं " इत्यादि बोलकर पुष्पदंत द्वारपालको अनुकूल करे ॥१४२॥ इस प्रकार मंडलप्रतिष्ठाकी विधि पूर्ण हुई । अब वेदीप्रतिष्ठाकी विधि कहते हैं । " आदे-शा " इत्यादि बोलकर वेदीके चंदोए आदिमें कुंकुंसे रंगे हुए पुष्प अक्षत क्षेपै ॥ १४३ ॥

लभ्याभ्यर्च्य चरुस्रगादिभिरमूं नीराजयाम्योजसे ।
लावण्योद्भूतयेत्रतार्थं लवणस्तामं पवित्रार्णसा
संपूर्णानवतारयामि कलशानस्या महिम्नेष्ट च ॥ १४४ ॥

प्रोक्षणादिविधि । इति वेदिकास्थापन । अथातो यागमंडलवर्तनविधानम् ।

नागेंद्रार्थंपते हरित्प्रभजपां भासासिताभप्रिया
युक्ता एत्य सवर्णचूर्णनिचयैः प्रीतेंद्रवेद्यामिव ।
वेद्यां द्वित्रिचतुर्गुणाष्टदलयुक्पद्मं चतुर्धाश्चतु-
ष्कोणं वर्तयतात्र मडलमथो वज्राह्लिखेंद्राश्रिषु ॥ १४५ ॥

ओं ह्रीं क्लीं श्वेतपीतहरितारुणकृष्णमणिचूर्णं स्थापयामि स्वाहा । चूर्णस्थापनमंत्रः ।

चंद्राभचंद्राभविमानमाल्यभूषांगरागा वरनागराज ।
हस्तांबुजस्थार्जुनरत्नचूर्णैर्वेदीं लिखागत्य जिनेंद्रयज्ञे ॥ १४६ ॥

ओं ह्रीं नागराजायामिततेजसे स्वाहा । श्वेतचूर्णस्थापनम् ।

" प्रोक्ष्य " इत्यादि कहकर वेदीपर जल छिडके ॥ १४४ ॥ यह प्रोक्षणादिविधि हुई । इस-प्रकार वेदीका स्थापन जानना । अब यागमंडलकी विधि कहते हैं । " नागेंद्रा " इत्यादि " ओं ह्रीं " कहकर पांचों रंगका चूर्ण स्थापन करे ॥ १४५ ॥ " चंद्राभ " इत्यादि " ओं ह्रीं " इत्यादि बोलकर नागराजकेलिये सफेद चूर्ण स्थापन करे ॥ १४६ ॥ " हेमाभ " इत्यादि

हेमाभ हेभामविलेपनस्रग्विमानभूषांशुकयक्षराज ।
हस्तार्पिता रत्नसुवर्णचूर्णैर्वेदीं लिखागत्य जिनेन्द्रयज्ञे ॥ १४७ ॥

ओं ह्रीं हेमप्रभाय धनदाय ठ ठ स्वाहा । पीतचूर्णस्थापनम् ।

हरित्प्रभामर्त हरित्प्रभस्रग्वासोविमानाभरणागराग ।
करात्तगारुत्मतरत्नचूर्णैर्वेदीं लिखागत्य जिनेंद्रयज्ञे ॥ १४८ ॥

ओं ह्रीं हरित्प्रभाय शत्रुमथनाय स्वाहा । हरितचूर्णस्थापनम् ।

रक्तप्रभामर्त्य जपाभभूषास्रग्वर्णकालंकरणाभ्रमाय ।
कराब्जराज कुरुविंदचूर्णैर्वेदीं लिखागत्य जिनेंद्रयज्ञे ॥ १४९ ॥

ओं ह्रीं रक्तप्रभाय सर्ववशकराय वषट् वौषट् स्वाहा । अरुणचूर्णस्थापन ।

भृंगाभवृंदारककृष्णवस्त्रविलेपनाकल्पविमानदामन् ।
पाणिप्रणीतासितरत्नचूर्णैर्वेदीं लिखागत्य जिनेंद्रयज्ञे ॥ १५० ॥

ओं ह्रीं कृष्णप्रभाय मम शत्रुविनाशनाय फट् २ घे घे स्वाहा । कृष्णचूर्णस्थापनम् ।

" ओ ह्रीं " इत्यादि बोलकर कुबेरके वास्ते पीले चूर्णको चढावे ॥ १४७ ॥ " हरित्प्रभा " " ओं ह्रीं " इत्यादिसे हरित्प्रभदेवको हरा चूर्ण चढावे ॥ १४८ ॥ " रक्तप्रभा " " ओ ह्री " बोलकर रक्तप्रभदेवको लाल चूर्णका स्थापन करे ॥ १४९ ॥ " भृंगाभ " ' ओ ह्रीं " इत्यादि कहकर कृष्णप्रभदेवको शत्रुनाशनकेलिये काले चूर्णका स्थापन करे ॥ १५० ॥ " शची "

शचीकटाक्षेषु शरण्यशक्र त्वमेत्य विघ्नौघविघातहेतो

करस्फुरद्वज्ररजोभरेण कोणेषु वज्राणि लिखाद्य वेद्याः ॥ १५१ ॥

वेदीकोणेषु प्रत्येकं हीरकं न्यसेत् । वज्रस्थापनम् । इति यागमंडलवर्तनाविधानम् ।

इत्याम्नायनिरस्तमोहतिमिरः सम्यग्जिनेज्यादिभिः

काचिद्भावविशुद्धिमाप्य विधिभिः सौधर्मभावं भजन् ।

कृत्वा मंडलपूजनं वितनुते योर्हत्प्रतिष्ठाविधिः

सोत्रामुत्र च मोदते शुभनिधिः स्तुत्यः शिवाशाधरैः ॥ १५२ ॥

इत्याशाधरविरचिते प्रतिष्ठासारोद्धारे जिनयज्ञकल्पापरनाम्नि तीर्थोदकादानादिविधानीयो नाम द्वितीयोऽध्याय ॥ २ ॥

इत्यादि बोलकर वेदीके कोनोमे हीरे रत्नका स्थापन करे ॥ १५१ ॥ इस तरह यागमंडल विधान कहा है। इस प्रकार गुरुआम्नायसे सब जानकर भावोंको निर्मल कर अपनेको सौधर्म समझता हुआ जो प्रतिष्ठाचार्य मंडल पूजन आदिसे अर्हतकी प्रतिष्ठाविधिका सब जगह प्रचार करता है वह पुण्यका खजाना प्रतिष्ठाचार्य दोनों लोकमें सुख पाता है और मोक्षके चाहनेवाले भव्योंसे अथवा मुझ आशाधरसे पूजित होता है ॥ १५२ ॥

इस प्रकार पं० आशाधरविरचित प्रतिष्ठासारोद्धारमें तीर्थोदक लाने आदिको कहनेवाला दूसरा अध्याय समाप्त हुआ ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अथातो यागमंडलपूजाविधानमभिधास्यामः—

निर्ग्रन्थार्याः प्रसादं कुरुत पदमिहायज्ञसद्धर्मदीप्त्यै
देवाः सर्वेच्युतांता विकुरुत सुतनुं क्ष्मामिमामेत शांत्यै ।
क्षप्त्वा कर्मारिचक्रं किमयित दसमस्फूर्जदावर्ज्य तेजः
सोधायं शासदीशस्त्रिजगदिह पशन्न स्थाप्यतेनुग्रहीतुम् ॥ १ ॥

प्रभावकसिंहसान्निध्यविधानाय समंतात् पुष्पाक्षतं क्षिपेत् ।

एते वर्षंतिवहाशीमृतमृषिगणाः साधु हूत्वाभिराद्धा
विश्वेदेवाश्च शास्त्रव्रजनपरिजना घ्नंतु विघ्नानिहैते ।
स्थानस्था एव चैन सह सुरमुनयस्तेऽहमिंद्राः स्तुवंतु
श्रद्धत्तार्यामयाय जिनयजनविधिः प्रस्तुतोधीत्य सिद्धान् ॥ २ ॥

अब याग मंडलकी पूजाकी विधि कहते हैं;—" निर्ग्रंथा " इत्यादि कहकर जिनमतकी प्रभावना करनेवालोंको निकट करके यज्ञमंडपके चारों तरफ पुष्प अक्षत क्षेपै ॥१॥ " एते वर्ष " इत्यादि श्लोक बोलकर साधर्मी भाइयोंके ऊपर पुष्प अक्षतकी वर्षा करे ॥ २ ॥

त्रिभुवनसधर्मिकामध्येषणाय समतात्पुष्पाक्षत विकिरेत् ।

दृग्शुद्धयादिसमिद्धशक्तिपरमब्रह्मप्रकाशोद्धुर
शब्दब्रह्मशरीरमीरितविपद्यन्मूलमंत्रादिभिः ।
इंद्राद्यैरभिराध्यते तदभितो दीप्राग्नि सः क्ष्मासने
न्यस्यार्चामि सुशुक्तिद्(भक्ति)महब्रह्माहमित्यक्षरम् ॥ ३ ॥

शब्दब्रह्मावर्जनाय कर्णिकामध्ये पुष्पांजलिं विसृजेत् ।

चिद्रूपं विश्वरूपव्यतिकरितमनाद्यंतमानंदसांद्रं
यस्माक् तैस्तैर्विवर्तैर्व्यतदतिपतद्दुःखसौख्याभिमानैः ।
कर्मोद्रेकात्तदात्मप्रतिघमलाभिदोद्भिन्ननिःसीमतेजः
प्रत्यासीदत्परौजः स्फुरदिह परमब्रह्म यक्षेर्हमाह्वम् ॥ ४ ॥

परमब्रह्मयज्ञप्रतिज्ञानाय कर्णिकातः कुसुमांजलिमावपेत् । इति प्रस्तावना ॥

"दृग्शुध्या" इत्यादि कहकर शब्द ब्रह्मके नामसे कर्णिकाके बीचमे पुष्पांजलि क्षेपण करे॥३॥ "चिद्रूपं" इत्यादि पढकर परब्रह्म अर्हंतकी पूजाके अभिप्रायसे कर्णिकाकेमध्यमें पुष्पोंको क्षेपण करे ॥ ४ ॥ "स्वामिन्" इत्यादि "ओं ह्रीं" इत्यादि बोलकर आह्वानन स्थापन सन्निधीकरण

स्वामिन् संवौषट् कृतावाहनस्य द्विष्ठांतेनोट्टंकितस्थापनस्य ।

स्वं निर्नेकुं ते वषट्कार जाग्रत् सान्निध्यस्य प्रारभेयाष्टधेष्टिम् ॥ ५ ॥

ओं ह्रीं अर्हं श्रीपरमब्रह्म अत्रावतरावतर संवौषट् । अनेन कर्णिकामध्ये पुष्पांजलिं प्रयुज्याऽवाहयेत् । ओं ह्रीं अर्हं श्री परमब्रह्म अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ । अनेन तद्वत् प्रतिष्ठयेत् । ओं इत्यादि मम सन्निहितं भव भव वषट् । अनेन तद्वत्संनिधापयेत् । आह्वानादिपुरस्सरपूजावसरप्रार्थना ।

अथ पूजा ।

चंचद्रत्नमरीचिकांचनकनद्भृंगारनालश्रुत–

श्रीखंडस्फुटिकादिवासितमहातीर्थांबुधाराश्रिया ।

हंतं दुःकृतमेतया स्वसमयाभ्यासोद्यतैराश्रितां

सत्कुर्वीय मुदा पुराणपुरुष त्वत्पादपीठस्थलीम् ॥ ६ ॥

ओं ह्रीं अर्हं श्री परब्रह्म.. .... नीरधारा ।

इमैः संतापार्चिः सपदि जयदत्तैः परिमल–

प्रथामूर्च्छद्घ्राणैरनिषद्गंगुञ्यतिकरात् ।

करे फिर पूजा करना आरंभ करे ॥ ५ ॥ " चंचद्रत्न " इत्यादि और 'ओं ह्रीं' कहकर जलधारा चढावे ॥ ६ ॥ " इमैः " इत्यादि तथा 'ओं ह्रीं पढकर चंदन चढावे ॥ ७ ॥ " सुगंधि "

स्फुरत्पीतच्छायैरिव शमनिधे चंदनरसै-
विलिंपेयं पेय शतमखदृशां त्वत्पदयुगम् ॥ ७ ॥

ओं ह्रीं . ... .गंधं ।

सुगंधिमधुरो जूसकलतंदुलछद्मना सुभक्तिसलिलोक्षितैरिव निरीय पुण्यांकुरैः ।
सुपुंजरचनाजित प्रणयपंचकल्याणकैर्भवांतकभवत्क्रमांवुप हरेयमेभिः श्रियै ॥ ८ ॥

ओं ह्रीं.... . . . .अक्षतं ।

हृदयकमलमन्वंचद्भिरामोदयोगाद्रसविसरविलासाल्लोचनाब्जे हसद्भिः ।
विशदिमजितबोधैर्बुद्धभावत्क्रमेतैश्चरणयुगमनूनैः प्रार्चयेयं प्रमूनैः ॥ ९ ॥

ओं ह्रीं ... ...पुष्पं ।

सुस्पर्शद्युतिरसगंधशुद्धिभंगी वैचित्री हृतहृदयेंद्रियैरमीभिः ।
भूतार्थक्रतुपुरुष त्वदंघ्रियुग्मं सान्नाय्यैरमृतसखैर्यजेय मुख्यैः ॥ १० ॥

ओं ह्रीं ... ... नैवेद्यं ।

इत्यादि और 'ओं ह्रीं' कहकर अक्षत चढावे ॥८॥ "हृदय" इत्यादि तथा 'ओं ह्रीं' बोलकर पुष्प चढावे ॥९॥ "सुस्पर्श" इत्यादि और 'ओ ह्रीं' बोलकर नैवेद्य चढावे ॥१०॥ "जाड्या"

जाड्याधायित्ववैरादिव शशिनमपि स्नेहयुक्तं दहद्भिः
सोदर्यस्वर्णयोगात् पटुतररुचिभिः सोदरत्वादिवाक्ष्णाम् ।
प्रेयोभिस्तत्प्रतापापहातिमिरहरैर्विश्वलोकैकदीपः
श्राद्धर्थंचद्भिरेभिस्तव पदकमले दीपयेयं प्रदीपैः ॥ ११ ॥

ओं ह्रीं....... .. .., ...आरार्तिकं ।

धूपानि मानसकृदुद्यदुदीरधूमस्तोमोल्लसन्नूनयनहृद्दलनेत्रनासान ।
दुष्कर्मगर्मुदचिरोद्धृतये धुताद्य त्वत्पादपद्मयुगमभ्यहमुत्क्षिपेयम् ॥ १२ ॥

ओं ह्रीं..... .... धूप ।

शाखापाकप्रणयविलसद्वर्णगंधर्द्धिसिद्ध-
ध्वस्तद्रव्यांतरमधुरसास्वादरज्यद्रसज्ञैः ।
एभिश्चोचक्रमुकरुचकश्रीफलाम्रातकाम्र-
प्रायैः श्रेयः सुखफलफलैः पूजयेयं त्वदंघ्रीन् ॥ १३ ॥

ओं ह्रीं.... .. ..फलम् ।

इत्यादि तथा 'ओंह्रीं' कहकर दीप चढावे॥११॥ " धूपा " इत्यादि और 'ओंह्रीं' कहकर धूप चढावे ॥ १२ ॥ " शाखा " इत्यादि तथा 'ओंह्रीं' कहकर फल चढावे ॥ १३ ॥ " जलगंधा-

जलगंधाक्षतप्रसूनचरुदीपधूपफलोत्तमै-
र्दधिदूर्वादिमंगलयुतैः पृथुकांचनभाजनार्पितैः ।
रचितमिमं विचित्रतौर्यत्रिककीर्तनजयजयस्वन
स्वस्त्ययनेद्धसभ्यमुदमर्घमनर्घ्य परिक्षिपेय ते ॥ १४ ॥

ओं ह्रीं अर्हं श्री परब्रह्मणे अनंतानंतज्ञानशक्तये इदं जलं गंधमक्षतान् पुष्पाणि चरुं दीपं धूपं फलं अर्घं च निर्वपामीति स्वाहा । इमान् मंत्रान् ह्युच्चारयन् पूजां दद्यात् । एवं सर्वत्र । इति परमपुरुषार्चनविधानम् ।

तद्बीजं परमं सर्वान् विघ्नान् येनाधिवासितं । निहंति मूलमंत्राय तस्मै पुष्पांजलिं क्षिपेत् १५

ओं नमो अरहंताणं ह्रौं स्वाहा । मूलमंत्रपूजा ।

ऋषभः केवलज्योतिरुन्मेषाय स्मरंति यम् । तस्मै केवलिमंत्राय ददामि कुसुमांजलिम् १६

ओं ह्रीं र्हं अर्हत्सिद्धसयोगिकेवलिभ्यः स्वाहा । केवलि मंत्रपूजा ।

क्षत " इत्यादि तथा " ओंह्रीं " इत्यादि बोलकर अर्घ चढावे ॥ १४ ॥ इसतरह परम पुरुष श्री अर्हंतदेवका पूजन हुआ । " तद्बीजं " इत्यादि तथा " ओ नमो " इत्यादि बोलकर मूलमंत्रको पुष्पांजलि चढावे ॥ १५ ॥ " ऋषभः " इत्यादि तथा " ओ ह्री " इत्यादि बोल-कर केवलिमंत्रको पुष्प चढावे ॥१६॥ " पुण्यश्रेणी " इत्यादि तथा "ओ अर्हं" इत्यादि पढ-

पुण्यश्रेणिशुद्धदृग्व्रत्तसेवारागाद्धद्धास्तत्तदैश्वर्यभुक्ता ।
या संहार्याभ्यर्णयत्युद्यबोधिं पुंसो नंद्यावर्तमालां यजे तं ॥ १७ ॥

ओं अर्हं नद्यावर्तवलयाय स्वाहा । नंद्यावर्तमालार्चनम् ।

शिवपथमनुबध्नतः समाधि प्रशमवतः सुखपर्वणां प्रबंधम् ।
यवबलयमनल्पबुद्धिकाम्यं वरकुसुमांजलिनांजसार्चयामि ॥ १८ ॥

ओं अर्हं यववलयाय स्वाहा । यववलयार्चनम् ।

भित्वा कर्मगिरीन् प्रबुद्धसकलज्ञेयादिसंतः शिवः
पुंसां शुद्धिविशेषतोच्छमनसा सेवाविधौ यस्य ताम् ।
सौख्यं लांति वृषार्पणादघहृतेर्ये वा मलं गालयं–
त्यर्घेणोपचरामि मंगलमहत्त्वानर्हतोभ्यर्हितान् ॥ १९ ॥

ओं अर्हन्मंगलार्घम् ।

कर नद्यावर्तमालाको पुष्पोंसे पूजे ॥ १७ ॥ " शिवपथ " इत्यादि तथा ओं अर्हं इत्यादि कहकर यववलयकी पूजा पुष्पोंसे करे ॥ १८ ॥ " भित्वा कर्मगिरी " इत्यादि पढकर अर्हंत मंगलको अर्घ चढावे ॥ १९ ॥ " नामध्वंसा " इत्यादि पढकर सिद्धमंगलको अर्घ चढावे

नामध्वंसा तैजसादायुरंतादुत्क्रम्यांगादुत्तमौदारिकाच्च ।
ये भत्क्षणां मंगलं लोकमूर्ध्नि मद्योतंते तान् भजेऽर्घेण सिद्धान् ॥ २० ॥

ओं सिद्धमंगलार्घम् ।

ये मार्गस्याचारका देशका ये ये चासक्तं ध्यायकाः साधयंति ।
सिद्धिं साधून् मंगलं भावुकानां तान् सर्वानप्युदग्रभक्त्यार्घयामि ॥ २१ ॥

ओं साधुमंगलार्घम् ।

दृग्बोधवर्धिष्णुदयाप्रभूष्णोः क्षांत्यादिदोष्णो जगदेकजिष्णो ।
सन्मंगलस्योपहरामि केवलिप्रज्ञप्तधर्मस्य सुवर्मणोऽर्घम् ॥ २२ ॥

ओं केवलिप्रज्ञप्तधर्ममंगलार्घम् ।

निश्चित्य श्रुत्या नैगमेनानुचिंतन् न्यस्याद्वा नामस्थापनाद्रव्यभावैः ।
भव्यैः सेव्यंते ये सदा मुक्तिकामैस्तेभ्योऽर्हद्भ्योऽर्घोस्त्वेष लोकोत्तमेभ्यः ॥ २३ ॥

अर्हल्लोकोत्तमार्घं ।

॥ २० ॥ "ये मार्ग" इत्यादि पढकर साधु मंगलको अर्घ चढावे ॥ २१ ॥ "दृग्बोध" इत्यादि पढकर केवलिकथित धर्ममंगलको अर्घ चढावे ॥ २२ ॥ "निश्चित्य" इत्यादि पढकर अर्हल्लोकोत्तमको अर्घ चढावे ॥ २३ ॥ "नामादिभि" इत्यादि पढकर सिद्ध लोको-

नामादिभिर्येष्टभिरप्यदुष्टैरिष्टाय संति प्रणिधीयमाना: ।
विन्यस्य नो आगमभावतस्ताल्लोकोत्तमान् साधु यजेत्र सिद्धान् ॥ २४ ॥

सिद्धलोकोत्तमार्घम् ।

त्र्यूना कोट्योनगारर्षियतिमुनिभिदो ये नवोत्कर्षवृत्त्या
नानादेशान् नृलोके शिवपथमनिशं साधयंतः पुनंति ।
घस्रे घस्रे सनीडी भवदमृतरमासंगमा साधवस्ते
भूता भव्या भवंतो विधिवदपचिताः पांतु लोकोत्तमा नः ॥ २५ ॥

साधुलोकोत्तमार्घम् ।

श्रद्धाय व्यवहारतत्त्वरुचिधी चर्यात्मरत्नत्रय
प्रादुःष्यतत्परमार्थतत्रयमयस्वात्मस्वरूपं बुधाः ।
सद्युक्तागमचक्षुषो विदधते लोकोत्तमः केवलि-
प्रज्ञप्तोऽभ्युदयापवर्गफलदः सोऽर्घ्येत धर्मोऽनघः ॥ २६ ॥

केवलिप्रज्ञप्तधर्मलोकोत्तमार्घम् ।

त्तमको अर्घ चढावे ॥ २४ ॥ " त्र्यूनाः " इत्यादि पढकर साधुलोकोत्तमको अर्घ चढावे ॥ २५ ॥ " श्रद्धाय " इत्यादि पढकर केवलिप्रणीतधर्म लोकोत्तमको अर्घ चढावे ॥ २६ ॥

सर्वप्राणिदयामयेन मनसा शुद्धात्मसंवित्सुधा–
स्रोतस्यात्मनि सन्निपत्य महसा शश्वत्तपंतः परम् ।
ये भव्यान्निजभक्तिभाविताधियो रक्षंति पापात् सदा
तानावर्ज्य सपर्ययात्र शरणं सर्वान् प्रपद्येऽर्हतः ॥ २७ ॥

अर्हच्छरणार्घम् ।

सांद्रानंदचिदात्मनि स्वमहसि स्फारं स्फुरंतः स्फुटं
पश्यंतो युगपत्त्रिकालविषयानंतानि पातान्वयाम् ।
षड्द्रव्यीं स्वपदाधिपत्यमचिराद्यच्छंति ये ध्यायतां
तानर्घेण यजामहे भगवतः सिद्धान् शरण्यानिह ॥ २८ ॥

सिद्धशरणार्घम् ।

आचारं पंचधा ये भवचकितधियश्चारयंतश्चरंति
व्याख्यांति द्वादशांगीं सुचरितनिरता ये च शुश्रूषकाणाम् ।

"सर्वप्राणी" इत्यादि पढकर अर्हंतशरणको अर्घ चढावे ॥ ७ ॥ "सांद्रा" इत्यादि पढकर सिद्धशरणको अर्घ चढावे ॥ २८ ॥ "आचारं" इत्यादि पढकर साधुशरणको अर्घ चढावे

साम्याभ्यासोद्यदात्मानुभवघनमुदो येंगिनां घ्नंति वैरं
ते सर्वेप्यर्घिता मे त्रिभुवनशरणं साधवः संतु सिद्धयै ॥ २९ ॥

साधुशरणार्घम् ।

सच्छूद्धोपग्रहीतमर्तिमथनाहार्यवैराग्यकृत्
सम्यग्ज्ञानमसंगसंगवदधिष्ठानं यदात्मा द्विधा ।
सिद्धः संवरनिर्जराभवशिवाह्लादावहः केवलि–
प्रज्ञप्तः शरणं सतामनुमत. सोर्घेण धर्मोर्च्यते ॥ ३० ॥

केवलिप्रज्ञप्तधर्मशरणार्घम् । ओं चत्तारिमंगलमित्यादिना स्वाहातेन पूर्ववदत्राप्यधिवासयेत् ।

इत्यर्चिताः परब्रह्मप्रमुखाः कर्णिकार्पिताः । संतु सप्तदशाप्येते सभ्यानां शमशर्मणे ३१

पूर्णार्घम् । इति द्वासप्ततिदलकमलकर्णिकाभ्यर्चनविधान । अथ षोडशपत्रस्थापितविद्यादेवतार्चनम् ।

॥ २९ ॥ "सच्छ्रद्धो" इत्यादि पढकर केवलिकथितधर्मशरणको अर्घ चढावे ॥ ३० ॥ "ओंचत्तारि मंगलं" यहांसे लेकर स्वाहातक पहलेकी तरह पाठ करे । "इत्यर्चिता" इत्यादि श्लोक बोलकर पूर्णार्घ चढावे ॥ ३१ ॥ इस प्रकार बहत्तरि पत्तोवाले कमलके कर्णिका भागका पूजन हुआ । अब सोलह पत्तोपर स्थित विद्यादेवियोंका पूजनविधान

विद्या प्रियाः षोडश दृग्विशुद्धि-पुरोगमार्हंत्यकृदर्थरागाः ।
यथायथं साधु निवेश्य विद्या-देवीर्यजे दुर्जयदोश्चतुष्काः ॥ ३२ ॥

विद्यादेवीसमुदायपूजाविधानाय समस्तहव्यद्रव्यपूर्णपात्रपरमपुरुषचरणकमलयोरवतार्य पार्श्वतो निवेशयेत् । एव सर्वत्रापि विधेयम् ।

विद्याः संशब्दये युष्मानायात सपरिच्छदाः ।
अत्रोपविशतैता वो यजे प्रत्येकमादरात् ॥ ३३ ॥
भगवति रोहिणि महति प्रज्ञप्ते वज्रशृंखले स्वलिते ।
वज्रांकुशे कुशलिके जांबूनदिकेस्तदुर्मदिके ॥ ३४ ॥
पुरुधाम्नि पुरुषदत्ते कालि कलाढ्ये कले महाकालि ।
गौरि वरदे गुणर्द्धे गांधारि ज्वालिनि ज्वलज्ज्वाले ॥ ३५ ॥

कहते हैं । "विद्याप्रियाः' इत्यादि पढकर विद्यादेवियोंके समूहकी पूजाके लिये सब पूजासामग्रीको अर्हतके चरणकमलोंमें आरतीरूप करके समीपमें रक्खे ॥ ३२ ॥ "विद्या संशब्द" इत्यादि पढकर आह्वाननादि करे ॥ ३३ ॥ "भगवति" इत्यादि तीन श्लोक बोलकर आवाहनआदिपूर्वक हर एककी पूजाके लिये पत्रोमे पुष्प अक्षत क्षेपण करे ॥ ३४।३५।३६ ॥ "विशोध्य" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं रोहिणि" इत्यादि बोलकर

मानवि देवि शिखंडिनि खंडिनि वैरौटि गुकुच्युतेऽच्युतिके ।
मानसि मनस्विनि रते यशसि महामानसीदमुचितं वः ॥ ३६ ॥

आवाहनादिपुरस्सरं प्रत्येकपूजाप्रतिज्ञानाय पत्रेषु पुष्पाक्षतं क्षिपेत् ।

अथ प्रत्येकपूजा ।

विशोध्य यो चेष्टगुणैः सरागो दृष्टिं विरागश्च परां प्रचक्रे ।
स कुंभशंखाब्जफलांबुजस्था—श्रिताच्यर्यसे रोहिणि रुक्मरुक्तम् ॥ ३७ ॥

ओं ह्रीं रोहिणि इद गंधं पुष्प धूपं दीपं चरुं बलिं स्वस्तिकं यज्ञभाग च यजामहे प्रतिगृह्यता प्रतिगृह्यता प्रतिगृह्यतामिति स्वाहा ।

दृग्ज्ञानचारित्रतपस्सु सूरिपुरस्सरेष्वप्यकृतादरो यः ।
तद्भाक्तिकां त्वाश्वगतेलिनीलां प्रज्ञप्तिकेर्चामि सचक्रखड्गाम् ॥ ३८ ॥

ओं ह्रीं प्रज्ञप्ते इदं .... स्वाहा ।

रोहिणीको जलादि अष्ट द्रव्य चढावे ॥ ३७ ॥ " दृग्ज्ञान " इत्यादि और ओंह्रीं इत्यादि बोलकर प्रज्ञप्तिको जलादि आठ द्रव्य चढावे ॥ ३८ ॥ " व्रतानि " इत्यादि तथा ओ ह्रीं बोलकर वज्रशृंखलाको जलादि आठ द्रव्य चढावे ॥३९॥ " ज्ञानोपयोगं " इत्यादि, "ओंह्रीं"

व्रतानि शीलानि च जातु योंतर्दृत्त्याभनग्नो बहिरीहया वा ।
तद्भंगिभ स्थापविशृंखलात्वा पीता च तृप्तिं पविशृंखलेस्मिन् ॥ ३९ ॥
ओं ह्रीं वज्रशृंखले . .. . ।
ज्ञानोपयोगं व्यदधादभीक्ष्णं यस्तं भजंतं श्रितपुष्पयानाम् ।
वज्रांकुशे त्वा सृणिपाणिमुद्यद्वीणारसां मञ्जु यजे जनाभाम् ॥ ४० ॥
ओं ह्रीं वज्रांकुशे .... ।
धर्मे रजद्धर्मफलेक्षणे च योजन्मभीस्तस्य मखे शिखिस्था ।
जांबूनदाभा धृतखड्गकुंता जांबूनदे स्वीकुरु यज्ञभागम् ॥ ४१ ॥
ओं ह्रीं जाबूनदे .... ।
शक्त्यार्थिनां बोधनसंयमांगं यस्त्यागमाधत्त तमानमंतीम् ।
कोकाश्रितां वज्रसरोजहस्तां यजे सितां पूरुषदत्तिके त्वाम् ॥ ४२ ॥
ओं ह्रीं पुरुषदत्ते. . ... ।

इत्यादि बोलकर वज्रांकुशाको जलादि आठ द्रव्य चढावे ॥ ४० ॥ " धर्मे " इत्यादि तथा "ओंह्रीं" कहकर जांबूनदाको जलादि आठ द्रव्य चढावे ॥ ४१ ॥ " शक्त्यार्थिनां " इत्यादि तथा "ओंह्रीं" बोलकर पुरुषदत्ताको जलादि आठ द्रव्य चढावे ॥४२॥ " तपांसि " इत्यादि

तपांसि कष्टान्यनिगूढवीर्यश्चरन् जगत्रैधमधश्चकार ।
यस्तन्नतार्चा भज कालि भर्मप्रभा मृगस्था मुशलासिहस्ता ॥ ४३ ॥

ओं ह्रीं कालि.... .. .. ।

चक्रे धिकसाधुषु यः समाधिं तं सेवमाना शरभाधिरूढा ।
श्यामाधनुः खड्गफलास्त्रहस्ता बलिं महाकालि जुषस्व शांत्यै ॥ ४४ ॥

ओं ह्रीं महाकालि........ .... ।

तपस्विना संयमबाधवर्जं प्रतिबधतात्मवदापदो यः ।
गोधागता हेमरुगब्जहस्ता गौरि प्रमोदस्व तदर्चनाशीः ॥ ४५ ॥

ओं ह्रीं गौरि... ।

तेने शिवश्रीसचिवाय योऽर्हत्, भक्तिं स्थिरां क्षायिकदर्शनाय ।
चक्रासिभ्रत्कूर्मगनीलमूर्ते गृहाण गांधारि तदंघ्रिगंधम् ॥ ४६ ॥

तथा " ओं ह्रीं " बोलकर कालीको अर्घ चढावे ॥ ४३॥ " चक्रेधिक " इत्यादि तथा ओ ह्रीं बोलकर महाकालीको अर्घ चढावे ॥ ४४ ॥ " तपस्विना " इत्यादि तथा " ओं ह्रीं" बोलकर गौरीको अर्घ चढावे ॥४५॥ "तेने" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर गांधारीको अर्घ चढावे

ओं ह्रीं गाधारि.. ।

सत्सूरिभक्ति प्रतिदेवता यो भेजे यजे ज्वालिनि तन्महे त्वाम् ।
शुभ्रां धनुः खेटकखड्गचक्राद्युग्राष्टबाहुं महिषाधिरूढाम् ॥ ४७ ॥

ओं ह्रीं ज्वालामालिनि .... ।

शुद्धोपयोगैकफलश्रुतार्थं यो भक्तिमभ्यासबहुश्रुतेषु ।
स्वं धिन्वतो मानवि केकिकण्ठनीलाकिटिस्थासझषत्रिशूला ॥ ४८ ॥

ओं ह्रीं मानवि शिखंडिनि.. ।

यो स्पृष्टदृष्टेष्टविरोधमर्हदुपज्ञमन्वागममन्वरज्यत् ।
त्वां सिंहगामात्तदर्पसर्पां यज्ञेस्य वैरोटि यजेभ्रनीलाम् ॥ ४९ ॥

ओं ह्रीं वैरोटि.............................. ।

॥ ४६ ॥ " सत्सूरि " इत्यादि तथा "ओ ह्री" कहकर ज्वालामालिनीको अर्घ चढावे ॥४७॥ " शुद्धोप " इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" कहकर मानवीको अर्घ चढावे ॥ ४८ ॥ " यो स्पष्ट " इत्यादि तथा " ओ ह्रीं " कहकर वैरोटीको अर्घ चढावे ॥४९॥ "षोढौ" इत्यादि तथा " ओं ह्रीं " बोलकर अच्युताको अर्घ चढावे ॥ ५० ॥ " मार्ग " इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर

षोढा नयी व्याधिवशोप्यवश्यं नावश्यकं यः समयाद्यपेक्षम् ।
धौताभिहस्तां हयगेच्युते त्वां हेमप्रभांतं प्रणतां प्रणौमि ॥ ५० ॥

ओं ह्रीं अच्युते .. .. ।

मार्गं वृषे निश्चलयन् विनेयान् प्राभावयद्यः सुतपः श्रुताद्यैः ।
रक्ताहिगा तत्प्रणताप्रणामप्रमुद्रांन्विता मानसि मेसि मान्या ॥ ५१ ॥

ओं ह्रीं मानसि .... ।

योधात्सधर्मस्त्रतिवत्सलत्वं रक्ता महामानसि तत्प्रणामे ।
रक्ता महाहंसगतेक्षमूत्रवरांकुशस्रक्सहितां यजे त्वाम् ॥ ५२ ॥

ओं ह्रीं महामानसि .. . . ।

सत्पूजाबलिदानलालितमनाः स्फारस्फुरद्वत्सली-
भावावेशवशीकृताः कृतधियामिष्टाश्च पूर्णाहुतिम् ।
विद्यादेव्य इमां प्रतीच्छत जिनज्येष्ठाप्रतिष्ठांजसा
निष्ठा मुख्यमनोरथान् फलवतः कर्तुं यतध्वं मम ॥ ५३ ॥

मानसीको अर्घ चढावे ॥ ५१ ॥ " योधात् " इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर महामानसीको अर्घ चढावे ॥ ५२ ॥ " सत्पूजा " इत्यादि बोलकर सबको पूर्णाहुति दे ॥ ५३ ॥ " एवं

पूर्णाहुतिः ।

एवं विद्यादेवताश्चंदनाद्यै रोहिण्याद्याः प्रीणिता मंत्रयुक्तैः ।
निर्भ्रंतोर्हद्यागविघ्नानशेषान् प्रीत्युत्कर्षं तज्जुषां पोषयंतु ॥ ५४ ॥

इष्टप्रार्थनाय पुष्पांजलिं क्षिपेत् । इति विद्यादेवतार्चनविधानं । अथ चतुर्विंशतिदलन्यस्तजिनमात्रिकार्चनम् ।

यासां गर्भगृहे हरिमणिहितश्र्यादिक्रिया संस्कृते
दिव्येंभोरुहविष्टरे किल निजामाधाय शक्तिं पराम् ।
उद्भूता वृषभादयो जिनवृषा विश्वेश्वरा निष्कला-
स्तांश्चाये जिनमातृकाः कजदलन्यस्ताश्चतुर्विंशतिः ॥ ५५ ॥

जिनमातृसमुदायपूजाविधानाय पूर्वविधिं विदध्यात् ।

विद्या " इत्यादि बोलकर इष्ट प्रार्थनाके लिये पुष्पांजलि चढावे ॥ ५४ ॥ इस प्रकार विद्यादेवियोंकी पूजाविधि हुई। अब चौवीस पत्रोंपर स्थित चौवीस जिनमाताओंकी पूजा कहते हैं। " यासां " इत्यादि श्लोक बोलकर जिनमाताओंकी पूजाके लिये पहलेकी तरह पूजाद्रव्यको समीप रखे ॥ ५५ ॥ " अंबा " इत्यादि बोलकर आवाहनादिपूर्वक प्रत्येक

अंबाः सशब्दये युष्मानायात सपरिच्छदाः । अत्रोपविशतैता वो यजे प्रत्येकमादरात् ५६

आवाहनादिपुरस्सर प्रत्येकपूजाप्रतिज्ञानाय पत्रेषु पुष्पाक्षत क्षिपेत् । अथ प्रत्येकपूजा ।

साकेताधिपमन्वनूकतिलक—श्रीनाभिराजप्रिये
सद्वृत्ते पुरदेवसंभवभवद्देवेंद्रसेवोत्सवे ।
त्रैलोक्याग्रपितामहि स्तुतगुणे स्तुत्यैरपीहाभिदां
देवि श्रीमरुदेवि भावयमहं दृष्टिप्रसादेन मे ॥ ५७ ॥

ओं मरुदेव्यै इद . ... ।

मन्विक्ष्वाकुमहोनुबद्धदिनकृद्वंशस्फुरत्कोशला—
स्वामिश्रीजितशत्रुपार्थिवमनोरोलंबराजीविनि ।
विष्वग्बंधुजयप्रदा जितजिनाधीशोद्भवन्यक्कृत—
न्यक्षस्त्रीप्रसवस्मयैव विजये त्वार्चभधिस्याजये ॥ ५८ ॥

ओं विजयसेनायै . ।

पूजाकी प्रतिज्ञा करनेकेलिये पत्रोंमे पुष्प अक्षतोंको क्षेपण करे ॥ ५६ ॥ "साकेता" इत्यादि तथा 'ओं मरुदेव्यै' इत्यादि बोलकर मरुदेवीको जलादि आठ द्रव्य चढावे ॥५७॥ "मन्विक्ष्वाकु" इत्यादि तथा 'ओं ह्रीं' बोलकर विजयसेनाको अर्घ चढावे ॥५८॥ "स्वावस्ति" इत्यादि

स्वावस्तिपुरेश्वर पुरवंशज दृढराज दृढतम प्रणयाम् ।
शंभवजिनरत्नखानिं सुखिनि सुषेणे महन्महीये त्वाम् ॥ ५९ ॥

ओं सुषेणायै........................।

साकेतपतौ भवतीमिक्ष्वाकुवरे स्वयंवरे निरताम् ।
अभिनंदनजिनजननीं सिद्धार्थेर्चामि सिद्धार्थाम् ॥ ६० ॥

ओं सिद्धार्थायै...........................।

नाभेयवंशनिषधाद्रिखेरयोध्यानाथस्य मेघरथभूमिपतेः सुपत्नि ।
सेवाप्रपन्नसुमतेः सुमतेः सवित्रि त्वां मंगले भुवनमंगलमर्चयामि ॥ ६१ ॥

ओं सुमंगलायै.......................।

मनुकुलजलधींदोर्देवि कौशांब्यधीश—प्रणयिनि धरणस्य क्ष्माविपद्वारणस्य ।
भवदपचितिसज्जेकानपद्मप्रभार्हन्—मणिधरणि सुसीमेस्यान्मयि श्रीरभीमे ॥६२॥

ओं सुसीमायै........................।

"ओं ह्रीं" बोलकर सुषेणाको अर्घ चढावे ॥५९॥ "साकेतपतौ" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर सिद्धार्थाको अर्घ चढावे ॥६०॥ "नाभेय" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर सुमंगलाको अर्घ चढावे ॥ ६१ "मनुकुल" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं बोलकर सुसीमाको अर्घ चढावे ॥६२॥

इक्ष्वाकुमुख्यकाशीशसुमतिष्ठनृपप्रियाम् । त्वां यजे पृथिवीषेणे सुपार्श्वजिनमातरम् ६३

ओं वसुंधरायै . . . . ।

सूर्यान्वयं चंद्रपुराधिपचंद्रं श्रिता महासेनमभेदवृत्त्या ।

चंद्रप्रभेशप्रभवप्रभावात् कस्य प्रतीक्षासि न लक्ष्मणेऽस्मिन् ॥ ६४ ॥

ओं लक्ष्मणायै... .... ।

काकंद्यधीशे पुरुदेववंश्ये सुग्रीवराजे निरुपाधिरागाम् ।

त्वां पुष्पदंतप्रसवाभिरामे यजामि यज्ञे जय रामिकेऽस्मिन् ॥ ६५ ॥

ओं रामायै . ... ।

त्वां राजभद्र पुरनृप वृषभान्वयदृढरथानुरागरथा ।

शीतलजिनाभिनंद्यं वंदे वंद्ये सतां सुनंद्येद्य ॥ ६६ ॥

ओं सुनदायै .. .. ।

"इक्ष्वाकु" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर वसुंधराको अर्घ चढावे ॥६३॥ "सूर्यान्वयं" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर लक्ष्मणाको अर्घ चढावे ॥ ६४ ॥ "काकंद्यधीशे" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर रामाको अर्घ चढावे ॥६५॥ "त्वां राजभद्र" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर सुनंदाको अर्घ चढावे ॥ ६६ ॥ "प्राणप्रियां" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर

प्राणप्रियां सिंहपुरारिजिष्णोः प्रकाशितेक्ष्वाकुकुलस्य विष्णोः ।
त्वां देवि नंदेर्चयतोद्यधन्यं श्रेयोजनन्यस्य जनस्य जन्म ॥ ६७ ॥

ओं विष्णुश्रियै......... ... . , ... ।

यथार्हमिक्ष्वाकुविभक्तसंपच्चंपाधिपश्रीवसुपूज्यवश्याम् ।
श्रीवासुपूज्यप्रजनोपजातजगज्जयेर्चामि जयावति त्वाम् ॥ ६८ ॥

ओं जयायै. . .. . ।

कांता कांपिल्पनाथार्ककुल्यश्रीकृतवर्मणः । जय श्यासे यजामि त्वां जननीं विमलेशिनः ६९

ओं सुशर्मलक्ष्म्यै . . .. ।

साकेतनायकैक्ष्वाकुसिंहसेन नमः सुधाम् । पूजयामि जयश्यामे त्वामनंतजितोंबकाम् ॥७०

ओं सुव्रतायै ... . ।

देवीं भानुमहाराजनाम्नो रत्नपुरेशिनः । कुरुवर्यस्य धर्मार्कप्राचीं त्वार्चामि सुप्रभे ॥ ७१ ॥

विष्णुश्रीको अर्घ चढावे ॥ ६७ ॥ "तथार्ह" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर जयाको अर्घ चढावे ॥ ६८ ॥ "कांता कांपिल्य" इत्यादि तथा ओ ह्रीं बोलकर सुशर्मलक्ष्मको अर्घ चढावे ॥ "साकेतनाय" इत्यादि तथा ओ ह्रीं बोलकर सुव्रताको अर्घ चढावे ॥ ७० ॥ "देवीं भानु" इत्यादि तथा ओ ह्रीं वोलकर ऐरणीको अर्घ चढावे ॥ ७१ ॥ "हस्तिनाग"

ओं ऐरण्यै . . . . ।

हस्तिनागनगरे कुरुवंशे विश्वसेननृपतेर्दयिताया: ।

शांतिकल्पतरुभोगभुवस्ते प्रार्चयामि चरणद्वयमैरे ॥ ७२ ॥

ओं कमलायै . ... ।

कुरुकुलशशांकहास्तिनपुरपरिदृढशूरसेननृपकांताम् ।

श्रीकांते कुंथुजिनप्रसवित्रीं पूजयामि त्वाम् ॥ ७३ ॥

ओं सुमित्रायै . . . ।

श्रीहास्तिसेनकुरुपस्य पत्नीं सुदर्शनाख्यस्य सुदर्शनस्य ।

मातः सवित्रीमरतीर्थकर्तुस्त्वां मित्रसेनेत्र महे महामि ॥ ७४ ॥

ओं प्रभावत्यै .. . . ।

मिथिलारक्षकेक्ष्वाकुप्रभुकुंभाग्रवल्लभाम् । प्रजापतिं यजे मल्लिजिने त्वां प्रजापतिं ॥ ७५ ॥

इत्यादि तथा ओ ह्रीं बोलकर कमलाको अर्घ चढावे ॥ ७२ ॥ "कुरुकुल" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर सुमित्राको अर्घ चढावे ॥ ७३ ॥ "श्रीहास्तिसेनः" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर प्रभावतीको अर्घ चढावे ॥७४॥ "मिथिलार" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर पद्मावती को अर्घ चढावे ॥ ७५ ॥

ओं पद्मावत्यै ... ... ।

हरिवंशवंशसुमणे राजगृहेशप्रिया सुमित्रस्य ।

मुनिसुव्रतजिनजननीं सोमे सौम्यां यजामि त्वाम् ॥ ७६ ॥

ओं वप्रायै ... ... ।

मिथिलानाथनृपान्वयविजयमहाराजसंज्ञनृपराज्ञीम् ।

संपूजयामि नमिजिनजनयित्रीं वप्लिे भवति ॥ ७७ ॥

ओं विनीतायै ... ... ।

द्वारवतीपरमेश्वरहरिवंशोत्तरसमुद्रविजयवशाम् ।

मातरमरिष्टनेमेः शिवदेवि यजे शिवाय त्वाम् ॥ ७८ ॥

ओं शिवदेव्यै ... ... ।

काशीश्रियस्त्यायिनि विश्वसेने प्रेमाकुलामुग्रकुलां वरार्के ।

पार्श्वप्रसूत्युद्धृतविश्वलोकां प्रह्वयाह्वये देवि महाम्यहं त्वाम् ॥ ७९ ॥

"हरिवंश" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर वप्राको अर्घ चढावे ॥ ७६ ॥ "मिथिला" इत्यादि तथा ओं ह्रीं कहकर विनीताको अर्घ चढावे ॥ ७७ ॥ "द्वारवती" इत्यादि और ओं ह्रीं पढकर शिवदेवीको अर्घ चढावे ॥ ७८ ॥ "काशीश्रिय" इत्यादि तथा ओं ह्रीं

ओं देवदत्तायै .... ।

स्वर्लक्ष्मीमिदखंडिकुंडनगरश्रीकाममर्माविधो
नाथानूकाविशेषकस्य माहिषी सिद्धार्थधात्रीपतेः ।
अंबा दुर्दमदुःषमासहचरद्धर्मश्रुतेः सन्मते-
र्यायाऽमि प्रियकारिणि प्रियकरी त्वास्मिन् प्रतिष्ठोत्सवे ॥ ८० ॥

ओं प्रियकारिण्यै इदं .... ॥

नाभेयाद्यर्हद्देवाः स्वभिहितमरुदेव्यादयः कोशलादि
क्ष्माभृन्नाभ्यादिदिव्यो हृदयसरसिजे भासमानाःसमर्च्य ।
पूर्णार्घं प्राप्यमाणा निजतनुजगुणग्रामगाढानुरागैः
प्रत्याहृत्यांतरायान् प्रथयत जगतां यूयमुच्चैः प्रमोदम् ॥ ८१ ॥

इति पूर्णार्घम् ।

इत्येता जिनमातरः सुदृगनुस्यूताखिलश्रीघना—
श्लेषानंदनिदानपुण्यरचना चार्च्यश्चतुर्विंशतिः ।

बोलकर देवत्ताका अर्घ चढावे ॥ ७९ ॥ "स्वर्लक्ष्मी" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर प्रियकारिणीको अर्घ चढावे ॥ ८० ॥ 'नाभेया' इत्यादि पढकर पूर्णार्घ चढावे ॥ ८१ ॥

भक्त्यास्मिन्नखिलक्षयज्ञसमयेऽस्माभिः समभ्यर्चिताः
प्रत्यूहानपहृत्य विष्टपहितां तत्सिद्धिमातन्वताम् ॥ ८२ ॥

एतद्वंदनामुद्रया पठित्वा भक्त्या पंचांगप्रणामं कुर्यात् । इति जिनमातृपूजनविधानम् । अथ द्वात्रिंशत्पुत्रारोपितशक्रार्चनम् ।

तत्तादृक्सुतपोनुषंगजपृथक् पुण्यानुभावोद्भव
स्वर्गैश्वर्यपराभिमानिकरसश्रोतोवगाहोत्सवान् ।
हुत्वान्यस्य यस्य मंत्रविहिता सतीन् कराब्जोल्लस—
द्यज्ञांगोल्बणितद्युतीन सुरपतीन द्वात्रिंशन संयजे ॥ ८३ ॥

त्रिभुवनपतियज्ञे व्यापृतानां व्यवायान् खरमृदुकुदृशां तु द्वेषमस्पष्टतां च ।
प्रातिनियतनियोगव्यक्तदुर्वारशक्तीन व्युपशमयितुमिंद्रानत्र संमानयामः ॥ ८४ ॥

द्वात्रिंशदिंद्रसमुदायपूजाविधानाय पूर्वविधिं विदध्यात्

" इत्येता " इत्यादि श्लोक पढकर वंदनामुद्रासे पचांग नमस्कार करे ॥ ८२ ॥ इसप्रकार जिनमाताओंकी पूजाविधि कही गई है । अब बत्तीस इंद्रोंकी पूजा कहते हैं–" तत्तादृक् " इत्यादि दो श्लोकोंसे बत्तीस इंद्रोंकी समुच्चयपूजा करनेके लिये पूर्वकी तरह कही हुई विधि करे ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ " इंद्रा " इत्यादि श्लोक पढकर आवाहन आदि पूर्वक हर एककी पूजा

इंद्राःसंशब्दये युष्मानायात सपरिच्छदाः । अत्रोपविशतैतान् वा यजे प्रत्येकमादरात् ॥८५

आवाहनादिपुरस्सरं प्रत्येकपूजाप्रतिज्ञानाय पत्रेषु पुष्पाक्षत क्षिपेत् ।

अथासुरेन्द्रादीना पृथक पूजा ।

कोणस्थमग्न्यादिदिगुप्रसप्त कोणाग्रनीक दृढमुद्गराढ्यम् ।
विशेषपादांबुजसख्यहृष्यच्चूडामणिं चारु यजेऽसुरेंद्रम् ॥ ८६ ॥

ओं ह्रीं असुरकुमारेन्द्राय इद जल गध... . ... ।

कूर्मश्रितं सप्तदिगाश्रितोर नावादिसैन्यं फणिपाशपाणिम् ।
जिनांघ्रिपुष्पांकफलांकमौलिं नागेंद्रमुच्चिद्रमुदर्चयामि ॥ ८७ ॥

ओं ह्रीं नागकुमारेंद्राय इद . — . .. . ।

तार्क्ष्यादिकक्षाकुलसप्तदिक्क धौतासिदंडं द्विरदाधिरूढम् ।
यजे सुपर्णेन्द्रमपास्तमोहविषेंद्रपादाप्तशिरः सुपर्णम् ॥ ८८ ॥

करनेके नियमके लिये पत्तोंपर पुष्प अक्षत क्षेपण करे ॥ ८५ ॥ अब सुरेंद्रोकी जुदी २ पूजा कहते हैं । “ कोणस्थ ” इत्यादि तथा “ ओं ह्रीं ” इत्यादि बोलकर असुरेंद्रको जल आदि आठ द्रव्य चढावे ॥ ८६ ॥ “ कूर्मश्रितं ” इत्यादि तथा ओं ह्रीं ” बोलकर नागकुमारेंद्रको अर्घ चढावे ॥ ८७ ॥ “ तार्क्ष्यादिकक्षा ” इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर सुपर्णकुमार इंद्रको

ओं ह्रीं सुपर्णकुमारेंद्राय इदं .... ।

सप्तासनसप्तगजादिसप्त सप्तेष्टयष्ट्योत्कटसप्तकाष्ठम् ।
द्वीपेंद्रमर्हाम्यहमर्हदंघ्रिनखेंदुलक्ष्मीकृतमौलिपीलुम् ॥ ८९ ॥

ओं ह्रीं द्वीपकुमारेंद्राय इदं .... ।

जलेभयात्रो मकरादिचक्रव्याकीर्णदिक्को वडिदंडचंडः ।
ईष्टां मदिष्टेरुदधीश्वरोर्हक्रमांशुरज्यन्मकराकमूर्द्धा ॥ ९० ॥

ओं ह्रीं उदधिकुमारेंद्राय इदं .... ।

सिंहाधिरूढं धृतधौतखड्गं खड्गाद्यधिष्ठातृसुरैः परीतम् ।
अर्हत्पदार्घीकृतमौलिवज्रं संभावयामि स्तनितामरेंद्रम् ॥ ९१ ॥

ओं ह्रीं स्तनितकुमारेंद्राय इदं ....

वराहवाहं करभादिदंडचंडं तडिद्दंडकरालहस्तम् ।
छायाछलस्वस्तिकसत्कृतार्हत्पादासनं विद्युदिनं धिनोमि ॥ ९२ ॥

अर्घ चढावे ॥ ८८ ॥ "सप्तासन" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर द्वीपकुमारेंद्रको अर्घ चढावे ॥ ८९ ॥ "जलेभयात्रो" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर उदधिकुमारेंद्रको अर्घ चढावे ॥ ९० ॥ "सिंहाधिरूढं" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर स्तनितकुमारको अर्घ चढावे ॥ ९१ ॥ "वराहवाहं" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर विद्युत्कुमारको अर्घ चढावे ॥ ९२ ॥ "दिक्कुं-

ओं ह्रीं विद्युत्कुमारेंद्राय इद..।

दिक्कुंजरस्थं परिघच्छतारिं सिंहाद्यनेंद्रीचरसप्रचक्रम् ।
नतिक्षणार्ईचरणांकशंकात्रशंकासिंहं प्रयजे दिगेंद्रम् ॥ ९३ ॥

ओं ह्रीं दिक्कुमारेंद्राय इदं..

स्तंभाधिरोहं शिबिकादिसैन्यव्याप्ताशमुल्कायुधमग्निमौलिं ।
अग्नींद्रमर्चामि जिनक्रमाग्रश्रीकुंभलालायितमौलिकुंभम् ॥ ९४ ॥

ओं ह्रीं अग्निकुमारेंद्राय इदं..।

कुरंगयुग्यं नगहेतिमश्व प्रष्ठामरानीकपरीतमूर्तिम् ।
यायेनिलेंद्रं नतमस्तकाश्वच्छायैर्जिनांघ्रिस्थलमंकयंतम् ॥ ९५ ॥

ओं ह्रीं वातकुमारेंद्राय इदं..।

सैन्यैरश्वरथेभपत्तिकलवाग्गंधादिभैःकौणनौ
ताक्ष्ये भास्वरगंडकोष्टकरटिट्टिभयाप्ययानार्वगैः ।

जरस्थं " इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर दिक्कुमारेंद्रको अर्घ चढावे ॥ ९३ ॥ " स्तंभादिरोहं " इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर अग्निकुमारेंद्रको अर्घ चढावे ॥ ९४ ॥ " कुरंगयुग्यं " इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर वातकुमारेंद्रको अर्घ चढावे ॥ ९५ ॥ सैन्यै " इत्यादि दो श्लोक बोल-

सप्ता प्राक्तनसप्तकक्रमवृताश्चूडाश्मदर्शीखगे—
न्द्रंत्यब्जध्वरुवर्द्धमानकमृगेद्रकुंभाश्वमौलिध्वजाः ॥ ९६ ॥

असुरफणिसुपर्णद्वीपवार्ध्यब्धिविद्युद्दिगनलपवनानां भावनानामधीशाः ।
दशविधपरिवर्गापकरत्नाढ्यधर्माभरणभवनभाजामस्तु पूर्णाहुतिर्वः ॥ ९७ ॥

पूर्णाहुति । इति भावनेंद्रार्चनम् ।

अथेह सर्वज्ञपदारविंदद्विरेफमभ्युद्यदरेफवषम् ।
नागायुधं किंनरशक्रमिष्टिमष्टापदाधिष्ठितमर्पयामि ॥ ९८ ॥

ओं ह्रीं किंनरेंद्राय इदं . . . . ।

नेतुं स्वसंज्ञार्थमिवान्यथात्वं शुश्रूषमाणं पुरुषोत्तमार्च्या ।
आलापये किं पुरुषेन्द्रमुद्यज्जयश्रियसायकमुद्वहंतम् ॥ ९९ ॥

ओं ह्रीं किंपुरुषेंद्राय इदं . . . . ।

कर पूर्णाहुति दे ॥ ९६ ॥ ९७ ॥ इसप्रकार भवनवासी इंद्रोंकी पूजाविधि हुई । " अथेह " इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर किंनरेंद्रको अर्घ चढावे ॥ ९८ ॥ " नेतु " इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर किंपुरुषेंद्रको अर्घ चढावे ॥ ९९ ॥ " मुमुक्षु " इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर

मुमुक्षुशार्दूलमदुग्रमुक्ति श्रीमेयसीं मश्रयतः श्रयंतम् ।
शार्दूलमारूढमयोग्रपिष्ट द्विष्टं महामहोरगेंद्रम् ॥ १०० ॥

ओं ह्रीं महोरगेंद्राय इदं ... .

गंधर्ववृंदारकगीयमानशुभ्रोरुकीर्तिश्रितमर्हदीशम् ।
प्रीणामि गंधर्वहरिं मराळलीलागतिक्लिष्टमरालपत्र ॥ १०१ ॥

ओं ह्रीं गन्धर्वेन्द्राय इद .. . . ।

आराद्वज्ञातनिधिव्रजार्हद्देवक्रमारब्धसशकसेवम् ।
यक्षामि यक्षेंद्रमधिष्ठिताहिपृष्टफणिश्लिष्टनिधीद्धदर्प्यम् ॥ १०२ ॥

ओं ह्रीं यक्षेन्द्राय इद .. . . ।

आनंक्ष्यमाणं क्षपिताक्षरक्षः रक्षैः परं पूरुषमाश्रिताय ।
श्रितोग्रहस्ताय हरिश्रिताय रक्षोधिराजाय बलिं ददामि ॥ १०३ ॥

ओं ह्रीं राक्षसेंद्राय इदं ... . ।

महोरगेंद्रको अर्घ चढावे ॥ १०० ॥ " गंधर्व " इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर गंधर्वेन्द्रको अर्घ चढावे ॥ १०१ ॥ " आराध्य " इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर यक्षेंद्रको अर्घ चढावे ॥ १०२ ॥ " आनक्ष्य " इत्यादि तथा ओं ह्रीं कहकर राक्षसेंद्रको अर्घ चढावे ॥ १०३ ॥

भूतेशिने भूतदयामयाय भूतार्थनिष्ठायमुहुर्नमंतम् ।
भूतेंद्रमाक्रांततुरंगराजं वलिप्रदानेन सुखाकरोमि ॥ १०४ ॥

ओं ह्रीं भूतेंद्राय इद ....।

ध्येयं सतां मोहपिशाचशांत्यै शांतैकनेतारमुपासितारम् ।
हेमांडकोड्डुम्मरदंडचंडं पिशाचशक्रं बलिना धिनोमि ॥ १०५ ॥

ओं ह्रीं पिशाचेंद्राय इद ....।

किन्नरकिंपुरुषगरुडगंधर्वनिधिपनिशाटभूतपिशाचैः ।
प्रतिपन्नशासनानां जिनशासन महिमभासनव्यसनानाम् ॥ १०६ ॥

ताभ्यां द्वाभ्यां प्रियाभ्यामपहृतमनसां द्विद्विदेवीसहस्र-
प्रेमार्द्रार्द्राक्षिभाजां पुरनिकरतताष्टांजनादिक्षितीनाम्
नित्योत्पादादिभौमव्रजविनयसृजां लोकरक्षैकदोष्णां
पूर्णापत्योत्सवानां युगपतिभिरसावस्तु पूर्णाहुतिर्वः ॥ १०७ ॥

"भूतेशिने" आदि तथा ओं ह्रीं बोलकर भूतेंद्रको अर्घ चढावे ॥ १०४ ॥ "ध्येयं सतां" इत्यादि तथा ओं ह्रीं कहकर पिशाचेंद्रको अर्घ चढावे ॥ १०५ ॥ "किन्नर" इत्यादि दो श्लोक पढकर पूर्णाहुति दे ॥ १०६ ॥ १०७ ॥ इस प्रकार व्यंतरेंद्रका पूजन हुआ । "सार्ह-

द्वाभ्या पूर्णाहुतिः । इति व्यंतरेन्द्रार्चनम् ।

सार्हच्चैत्यग्रहांकरम्यनगरोत्तानार्धगोलाकृति—
मव्यासांकमणीद्धमंडलकरव्रातामृतैः प्लावयन् ।
भूलोकं हरिवाहनः परिवृतो भोडुग्रहोपग्रह—
वृद्धैः कुंतकरश्वरस्थिरविधूपेतोथ सोमोऽर्च्यते ॥ १०८ ॥

ओं ह्रीं सोमेंद्राय इद ....

हित्वाधो दश योजनानि गगने तारा सदैकाध्वगा
मार्गैर्नित्यनवैश्वरमिह करोति द्वां निशां यः स्थितिः ।
तप्तस्वर्णभलोहिताक्षपुरभृद्दिवः स सूर्यश्वरै—
र्नालोकैरपरैः स्थिरैश्च रविभिः सत्रार्चतेर्च जिनम् ॥ १०९ ॥

ओं ह्रीं सूर्येंद्राय इद .. .. ।

विंशत्येकयुतानि योजनशतान्येकादशाद्रीश्वरं
मुक्त्वा क्ष्मामपि तच्छतानि त्रिदशान्यष्टौ विमानानि खे ।

चैत्य " इत्यादि तथा ओं ह्रीं कहकर सोमेंद्रको अर्घ चढावे ॥ १०८ ॥ " हित्वाधो " इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर सूर्येंद्रको अर्घ चढावे ॥ १०९ ॥ " विंशत्येक " इत्यादि तथा ओं ह्रीं

उच्चेतच्छतमाघनोदधिदशोपेतं ततान्याश्रितान्
ज्योतिष्कानन्नुगृह्णतोऽजरवयः पूर्णाहुर्तिवोर्पये ॥ ११० ॥

पूर्णाहुतिः । इति ज्योतिरिंद्रार्चनम् ।

एकत्रिंशद्युपटलमितेष्टादशे यास्कनाम्नि
श्रेणीबद्धे सततवसतिः पंचवर्णैर्विमानैः ।
तिस्रः श्रेणीर्वसुगुणचतुर्लक्षसंख्यैरवंतं
सौधर्मे प्राक् स्वरुकमिहार्चाम्यथैरावणस्थम् ॥ १११ ॥

ओं ह्रीं सौधर्मेंद्राय इदं .... ।

तद्वच्छ्रेणीबद्धमाप्योदगेकश्रेणींद्रोष्टाविंशति पंचवर्णाः ।
यक्षाः पाति स्वःपुरीर्यो जिनांघ्रिस्रक्चूलं तं यष्टुमीशानमीशे ॥ ११२ ॥

ओं ह्रीं ईशानेंद्राय इदं .... ।

बोलकर पूर्णार्घ चढावे ॥ ११० ॥ इसतरह ज्योतिष्कदेवेंद्रका पूजन हुआ । “ एकत्रिंश ” इत्यादि तथा ओ ह्रीं बोलकर सौधर्मेन्द्रको अर्घ चढावे ॥ १११ ॥ “ तद्वच्छ्रेणी ” इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर ईशानेंद्रको अर्घ चढावे ॥ ११२ ॥ “ सप्तस्वपाक ” इत्यादि तथा ओं

सप्तस्वपाकद्युपटलेषु सभाह्वमंत्ये श्रेणीनिबद्धमधितिष्ठति षोडशं यः ।
त्रिश्रेणिगद्विषविकृष्णविमानलक्ष-सार्चा नमन् जिनमुपैतु सनत्कुमारः ॥ ११३ ॥

ओं ह्रीं सनत्कुमारेंद्राय इदं . .... . ।

एकाष्टकृष्णोनविमानलक्षश्रेणीशमर्हत्प्रभुमाभजंतम् ।
महामि माहेंद्र मुदा वसंतं दिव्यास्पदः षोडश एव तद्वतः ॥ ११४ ॥

ओं ह्रीं माहेंद्राय इद .. . .।

पात्या स्थितोऽपाकृपटले चतुर्थे चतुर्दशं ब्रह्मपदं चतस्रः ।
यः कृष्णनीलोनविमानलक्षा ब्रह्मेंद्रमर्चामि तमाप्तभक्तम् ॥ ११५ ॥

ओं ह्रीं ब्रह्मेंद्राय इद . ...

द्वैतीयैके द्वादशं लांतवाख्यं श्रेणीबद्धं यः श्रितो भाकृद्युचक्रे ।
लक्षार्धं प्राग्भानि भुंक्ते विमानान्यर्हद्भक्तं तं यज लांतवेंद्रम् ॥ ११६ ॥

ह्रीं बोलकर सनत्कुमारेंद्रको अर्घ चढावे ॥ ११३ ॥ "एकाष्ट" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर माहेंद्रको अर्घ चढावे ॥ ११४ ॥ "पात्या स्थितो" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर ब्रह्मेंद्रको अर्घ चढावे ॥ ११५ ॥ "द्वैतीयैके" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर लांतवेंद्रको अर्घ चढावे ॥ ११६ ॥ "शुक्रेंद्र" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर शुक्रेंद्रको अर्घ चढावे

ओं ह्रीं लांतवेन्द्राय इदं...... . ... ।

शुक्रेंद्रमैकपटलिक चत्वारिंशत्सहस्रपीतसितधाम् ।
दशममहाशुक्रोदकश्रेणीबद्धास्पदं यजे जिनभक्तम् ॥ ११७ ॥

ओं ह्रीं शुक्रेन्द्राय इदं ... .. . ।

पीतार्जुनैकेंद्रकषट्सहस्रविमानभुक्ति जिनपूजनोक्तम् ।
यजे शतारेन्द्रमिहाष्टमेहं स्थितं सहस्रार उदग्विमाने ॥ ११८ ॥

ओं ह्रीं शतारेंद्राय इदं ... . . ।

सप्तश्वेतौकः शतैः षट् पटल्यां षष्ठ्यां अेकश्रेणिपाये पटल्याम् ।
षष्टे तिष्ठंत्यादे दक्षिणोदक्श्रेण्योश्चाये तांश्चतुःकल्पशक्रान ॥ ११९ ॥

तत्रानतेंद्रं जिनमाग्रहस्य संस्कारविद्राविनमोहतंद्रम् ।
अप्यद्भुतैर्भोगसुखैरलुप्तश्रामण्यशर्मस्मृतिमर्चयामि ॥ १२० ॥

ओं ह्रीं आनतेंद्राय इदं . . ।

॥ ११७ ॥ "पीतार्जुन" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर शतारेंद्रको अर्घ चढावे ॥ ११८ ॥ "सप्तश्वेतौ" इत्यादि दो श्लोक और ओं ह्रीं बोलकर आनतेंद्रको अर्घ चढावे ॥११९॥१२०॥

स्वर्भोगवर्गप्रसृताक्षवर्गोप्युदीच्यदेशाक्षसुखैः प्रसक्तः ।
अर्हत्प्रभौ व्यक्तविचित्रभावो भजत्विमां प्राणतजिष्णुरिज्याम् ॥ १२१ ॥

ओं ह्रीं प्राणतेंद्राय इदं .... ।

स्थितोपि मौले वपुषि प्रदेशैस्तनूमुदीचीमनुसंदधानः ।
भजत्यनंतर्हितवाजिनं यस्तं प्रीणयत्वर्हणयारणेंद्रम् ॥ १२२ ॥

ओं ह्रीं आरणेंद्राय इदं ... ... ।

कदाचिदप्यच्युतमुच्यतेशभक्तेश्चतेर्दुश्चुरितात्परीतम् ।
एकाग्रषष्ट्यग्रशतं विमानान्यधीशितारं प्रयतेच्युतेंद्रम् ॥ १२३ ॥

ओं ह्रीं अच्युतेंद्राय इद .. .... ।

सौधर्मैशानसानत्कुमारमाहेंद्रवासवब्रह्मेंद्रा
लांतवशुक्रशतारानतशक्रा प्राणतारणाच्युतशक्राः ।

" स्वभोगवर्ग " इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर प्राणतेंद्रको अर्घ चढावे ॥ १२१ ॥ " स्थितोपि " इत्यादि और ओ ह्रीं बोलकर आरणेंद्रको अर्घ चढावे ॥ १२२ ॥ " कदाचिद " इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर अच्युतेंद्रको अर्घ चढावे ॥ १२३ ॥ " सौधर्मै " इत्यादि दो श्लोक बोलकर पूर्णार्घ चढावे ॥ १२४ ॥ १२५ ॥ " इत्थं " इत्यादि श्लोक कहकर इष्टप्रार्थनाके

बालाग्रातरमेरुचूलिकषयोवायूभयोस्त्रभूतिभूषांगनाः
कल्पेंद्राः प्रददामि वोर्घितजिना यज्ञेत्र पूर्णाहुतिम् ॥ १२४ ॥
ये चत्वारिंशतेंद्रैर्भवनदिविषदा व्यंतराणां द्वियुक्त—
त्रिंशत्संख्यैर्ज्युधाम्ना त्रिगुणवसुतैः सिंहसम्राद् शशीनैः ।
अभ्यर्च्यंते चतुर्भिः समवसृतिषितैस्तन्मखारंभमुख्या
दद्यां पूर्णाहुतिं वो भवनवनसुरज्योतिरुद्धामरेंद्राः ॥ १२५ ॥

द्वात्रिंशत्पूर्णाहुतिः ।

इत्थ यथोचितविधिमतिपत्तिपूर्वयज्ञांशदानभृशदीपितपक्षपाताः
सर्वज्ञयज्ञपरिपूर्तिदुरीहितं मे मुख्यानुषंगिकफलैः प्रथयंतु शक्राः ॥ १२६ ॥

इष्टप्रार्थ नाय पुष्पाजलिंक्षिपेत्। इति द्वात्रिंशादिंद्रार्चनविधान

अथ पत्रांतरालस्थापितचतुर्विंशतियक्षार्चनम् ।

नाभेयाद्यपसव्यपार्श्वविहितन्यासांस्तदाराधका
अभ्युत्पन्नदृशः सदैहिकफलप्राप्तीच्छयार्चंति यान् ।
आमंत्र्य क्रमशो निवेश्य विधिवत्पत्रांतरालेषु तान्
कृत्वारादधुना धिनोमि बलिभिर्यक्षांश्चतुर्विंशतिम् ॥ १२७ ॥

लिये पुष्पांजलिको क्षेपण करे ॥ १२६ ॥ इस तरह बत्तीस इंद्रोंकी पूजाविधि हुई । अब

गोमुखादिचतुर्विंशतियक्षसमुदायपूजाविधानाय पूर्वविधिं विदध्यात् ।

यक्षाः संशब्दये युष्मानायात सपरिच्छदाः। अत्रोपविशतैतान् वो यजे प्रत्येकमादरात् १२८

आवाहनादिपुरस्सरप्रत्येकपूजाप्रतिज्ञानाय पत्रांतरालेषु पुष्पांजलिं क्षिपेत् । अथ प्रत्येकपूजा ।

सव्येतरोर्ध्वकरदीप्रपरश्वधाक्षसूत्रं तथा धरकरांकफलेष्टदानम् ।
प्राग्गोमुखं वृषमुखं वृषगं वृषांकभक्तं यजे कनकभं वृषचक्रशीर्षम् ॥ १२९ ॥

ओं ह्रीं गोमुखयक्षाय इदं .... ।

चक्रत्रिशूलकमलांकुशवामहस्तो निस्त्रिंशदंडपरशूग्रवराण्यपाणिः ।
चामीकरद्युतिरिभांकनतो महादियक्षोऽर्च्यतो जगतश्चतुराननोऽसौ ॥ १३० ॥

पत्रके मध्यमें स्थापन किये गये चौवीस यक्षोंकी पूजाविधि कहते है। "नाभेयाद्य" इत्यादि श्लोक बोलकर गोमुखादि चौवीस यक्षोंकी समुच्चयपूजामें पहलेकी तरह विधि करे ॥ १२७॥ "यक्षाः सं" इत्यादि श्लोक बोलकर आवहनादि पूर्वक हरएककी पूजा करनेकी प्रतिज्ञा करनेके लिये पत्रके मध्यमे पुष्प अक्षतोंको डाले ॥ १२८ ॥ अब हरएककी पूजा कहते हैं– "सव्येतरो" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर गोमुख यक्षको अर्घ चढावे ॥ १२९ ॥ "चक्र त्रिशूल" इत्यादि ओं ह्रीं बोलकर महायक्षको अर्घ चढावे ॥ १३० ॥ "चक्रासि" इत्यादि

ओं ह्रीं महायक्षाय इद. ... . ।

चक्रासिसृण्युपगसव्यसयोन्यहस्तैर्दंडत्रिशूलमुपयन् श्रितकार्तिकाच ।
वाजिध्वजप्रभुनतः शिखिगोंजनाभ–रुपसः प्रतीसतु बालिं त्रिमुखाख्ययक्षः ॥ १३१ ॥

ओं ह्रीं त्रिमुखाख्याय इद . . . ।

प्रेंखद्धनुःखेटकवामपाणिं सर्कंकपत्रास्यपसव्यहस्तम् ।
श्यामं करिस्थं कपिकेतुभक्तं यक्षेश्वरं यक्षमिहार्चयामि ॥ १३२ ॥

ओं ह्रीं यक्षेश्वरयक्षाय इदं ... . . ।

सर्पोपवीतं द्विषपन्नगोर्द्धकरं स्फुरद्दानफलान्यहस्तम् ।
कोकांकनम्रं गरुडाधिरूढं श्रीतुम्बरं श्यामरुचिं यजामि ॥ १३३ ॥

ओं ह्रीं तुम्बरयक्षाय इद . ... ।

तथा ओं ह्रीं बोलकर त्रिमुखयक्षको अर्घ चढावे ॥ १३१ ॥ "प्रेंखद्धनुः" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर यक्षेश्वरयक्षको अर्घ चढावे ॥ १३२ ॥ "सर्पोपवीत" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर तुंबरयक्षको अर्घ चढावे ॥ १३३ ॥ "मृगारूढं" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर

मृगारुहं कुंतकरापसव्यकरं सखेटा भयसव्यहस्तम् ।
श्यामांगमब्जध्वजदेवसेव्यं पुष्पाख्ययक्षं परितर्पयामि ॥ १३४ ॥

ओं ह्रीं पुष्पयक्षाय इदं ।

सिंहाद्रिरोहस्य सदंडशूलसव्यान्यपाणेः कुटिलाननस्य ।
कृष्णत्विषः स्वस्तिककेतुभक्तेर्मातंगयक्षस्य करोमि पूजाम् ॥ १३५ ॥

ओं ह्रीं मातंगयक्षाय इदं ।

यजे स्वधित्युद्यफलाक्षमाला वरांकवामान्यकरं त्रिनेत्रम् ।
कपोतपत्रं प्रभयाख्यया च श्यामं कृतेंदुध्वजदेवसेवम् ॥ १३६ ॥

ओं ह्रीं श्यामयक्षाय इदं .. ... . ।

सहाक्षमाला वरदानशक्तिफलाय सव्यापरपाणियुग्मः ।
स्वारूढकूर्मो मकरांकभक्तो गृह्णातु पूजामजितः सिताभः ॥ १३७ ॥

पुष्पयक्षको अर्घ चढावे ॥ १३४ ॥ " सिंहादि " इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर मातंगयक्षको अर्घ चढावे ॥ १३५ ॥ ' यजेस्वधि " इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर श्यामयक्षको अर्घ चढावे ॥ १३६ ॥ सहाक्षमाला " इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर अजितयक्षको अर्घ चढावे ॥ १३७ ॥ " श्रीवृक्ष " इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर ब्रह्म यक्षको अर्घ चढावे ॥ १३८ ॥

ओं ह्रीं अजितयक्षाय इद ... ... ।

श्रीवृक्षकेतन... धनुर्दंडखेट...ढ्यसव्यसय इंदु सितोंबुजस्थः ।
ब्रह्मासरश्व...निखड्गवरप्रदानव्यग्रान्यपाणिरुपयातु चतुर्मुखोर्चाम् ॥१३८॥

ओं ह्रीं ब्रह्मयक्षाय इदं .... . ।

त्रिशूलदंडान्वित...मइस्त. करेक्षसूत्रं त्वपरे फले च ।
बिभ्रति...ता गंड...केतुभक्तो लात्वीश्वरोर्चां वृषगस्त्रिनेत्रः ॥ १३९ ॥

ओं ह्रीं ईश्वरयक्षाय इदं. . . .

शुभ्रो धनुर्बभ्रफलाढ्यसव्यहस्तोन्यहस्तेषु गदेष्टदानः ।
लुलायलक्ष्मप्रणतस्त्रिवक्त्रः प्रमोदतां हंसचरः कुमारः ॥ १४० ॥

ओं ह्रीं कुमारयक्षाय इद... ।

यक्षो हरित्सपरशूपरिमाष्टपाणिः कौक्षेयकाक्षमणिखेटकदंडमुद्राः ।
बिभ्रच्चतुर्भिरपरैः शिखिगः किरांकनम्रः प्रतृप्यतु यथार्थचतुर्मुखाख्यः १४१

"त्रिशूलदंड" इत्यादि तथा ओ ह्रीं बोलकर ईश्वर यक्षको अर्घ चढावे ॥ १३९ ॥ "शुभ्रो धनु" इत्यादि तथा ओ ह्रीं बोलकर कुमारयक्षको अर्घ चढावे ॥ १४० ॥ "यक्षो हरित" इत्यादि तथा ओ ह्रीं बोलकर चतुर्मुख यक्षको अर्घ चढावे ॥ १४१ ॥ "पातालकः"

ओं ह्रीं चतुर्मुखयक्षाय इद. .... ।

पातालकः सशृणिशूलकजापसव्यहस्तः कषाहलफलांकितसव्यपाणिः ।
मेधाध्वजैकशरणो मकराधिरूढो
रक्तोर्च्यतां त्रिफणनागशिरास्त्रिवक्त्रम् ॥ १४२ ॥

ओं ह्रीं पातालयक्षाय इद .... ।

सचक्रवज्रांकुशवामपाणिः समुद्गराक्षालिवरान्यहस्तः ।
प्रवालवर्णस्त्रिमुखो झषस्थो वज्रांकभक्तोंचतु किंनरोऽर्च्याम् ॥ १४३ ॥

ओं ह्रीं किंनरयक्षाय इद .. .. ।

वक्रानधोऽधस्तनहस्तपद्मफलोन्यहस्तार्पितवज्रचक्रः ।
मृगध्वजार्हत्प्रणतः सपर्यां श्यामः क्रिटिस्थो गरुडोभ्युपैतु ॥ १४४ ॥

ओं ह्रीं गरुडयक्षाय इद. . .. ।

इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर पातालयक्षको अर्घ चढावे ॥ १४२ ॥ " सचक्र " इत्यादि तथा ओ ह्रीं बोलकर किंनरयक्षको अर्घ चढावे ॥ १४३ ॥ " वक्रान " इत्यादि तथा ओ ह्रीं बोलकर गरुडयक्षको अर्घ चढावे ॥ १४४ ॥ " सनाग " तथा ओं ह्रीं बोलकर गधर्वयक्षको

सनागपाशोर्ध्वकरद्वयोधः करद्वयात्तेषु धनुः सुनीलः।
गंधर्वयक्षः स्तभकेतुभक्तः पूजामुपैतु श्रितपक्षियानः ॥ १४५ ॥

ओं ह्रीं गंधर्वयक्षाय इदं . .. ।

आरभ्योपरिमात्करेषु कलयन् वामेषु चापं पविं
पाशं मुद्गरमंकुशं च वरदः षष्ठेन युंजन् परैः।
बाणांभोजफलस्रगच्छपटलीलीलाविलासास्त्रिदृक्
षड्वक्त्रष्टगरांकभक्तिरसितः खेंद्रोर्च्यते शंखगः ॥ १४६ ॥

ओं ह्रीं खेन्द्रयक्षाय इदं . ।

सफलकधनुर्दंडपद्म खड्गमदरसुपाशवरमदाष्टपाणिम्।
गजगमनचतुर्मुखेन्द्रचापद्युतिकलशांकनतं यजे कुबेरम् ॥ १४७ ॥

ओं ह्रीं कुबेरयक्षाय इदं ।

जटाकिरीटोष्टमुखस्त्रिनेत्रो वामान्यखेटासिफलेष्टदानः।
कूर्मांकनम्रो वरुणो वृषस्थः श्वेतो महाकाय उपैतु तृप्तिम् ॥ १४८ ॥

अर्घ चढावे ॥ १४५ ॥ 'आरभ्यो' इत्यादि तथा ओं ह्रीं पढकर खेन्द्रयक्षको अर्घ चढावे ॥ १४६ ॥ "सफलक इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर कुबेरयक्षको अर्घ चढावे ॥ १४७ ॥ "जटाकिरीटो" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर वरुणयक्षको अर्घ चढावे ॥ १४८ ॥ "खेटा-

ओं ह्रीं वरुणयक्षाय इदं ... . ।

खेटासिकोदंडशराकुशाब्ज—चक्रेष्टदानोल्लसिताष्टहस्तम् ।

चतुर्मुखं नंदिगमुत्पलाकभक्तं जपाभं भृकुटिं यजामि ॥ १४९ ॥

ओं ह्रीं भृकुटियक्षाय इदं ... . ।

श्यामस्त्रिवक्त्रो द्रुघणं कुठारं दंडं फलं वज्रवरौ च बिभ्रत् ।

गोमेदयक्षः क्षितशंखलक्ष्मा पूजा नृवाहोऽर्हतु पुष्पयानः ॥ १५० ॥

ओं ह्रीं गोमेदयक्षाय इदं ... .. ।

ऊर्ध्वद्विहस्तधृतवासुकिरुद्भटाधः सव्यान्यपाणिफणिपाशवरप्रणंता ।

श्रीनागराजककुदं धरणोऽभ्रनीलः कूर्मश्रितो भजतु वासुकिमौलिरिज्याम् १५१

ओं ह्रीं धरणयक्षाय इदं . ।

मुद्गप्रभो मूर्धनि धर्मचक्रं बिभ्रत्फलं वामकरेथ यच्छन् ।

वरं करिस्थो हरिकेतुभक्तो मातंगयक्षोंगतु तुष्टिमिष्टया ॥ १५२ ॥

सि " इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर भृकुटि यक्षको अर्घ चढावे ॥ १४९ ॥ " श्यामस्त्रि " इत्यादि तथा ओं ह्रीं पढकर गोमेदयक्षको अर्घ चढावे ॥ १५० ॥ " ऊर्ध्वद्विहस्त " इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर धरणयक्षको अर्घ चढावे ॥ १५१ ॥ " मुद्गप्रभो " इत्यादि तथा ओं ह्रीं

ओं ह्रीं मातगयक्षाय इदं ... . ।

इत्थं योग्योपचारव्यतिकरपरमो जागरान् गृहाग्रव्यापाराः
शश्वदर्हत्प्रभुसमयमहस्तायिनो यक्षमुख्याः ।
तद्भक्तोद्धर्षहर्षाप्लुतजलधिनिरुच्छ्वासलीलावगाह
प्रत्यूहापोहकृद्वचः सृजतु परमसौपर्वपूर्णाहुतिर्वः ॥ १५३ ॥

पूर्णाहुतिः । इति चतुर्विंशतियक्षार्चनविधानम् । अथ चतुर्विंशतिपत्राग्रस्थापितशासनदेवतार्चनम् ।

संभावयंति वृषभादिजिनानुपास्य तद्धामपार्श्वनिहिता वरलिप्सवो याः ।
चक्रेश्वरीप्रभृतिशासनदेवतास्ताः द्विर्द्वादशादलमुखेषु यजे निवेश्य ॥ १५४ ॥

चतुर्विंशतिशासनदेवतासमुदायपूजाविधानाय पूर्वविधिं विदध्यात् ।

यक्षयः संशब्दये युष्मानायात सपरिच्छदाः । अत्रोपाविशतैता वो यजे प्रत्येकमादरात् १५५

बोलकर मातंगयक्षको अर्घ चढावे ॥ १५२ ॥ "इत्थं योग्यो" इत्यादि श्लोक पढकर पूर्णार्घ दे ॥१५३॥ इसप्रकार चौवीस यक्षोंकी पूजाका विधान हुआ । अब चौवीस पत्रोंके अग्रभागमें स्थापित शासनदेवताओंकी पूजा कहते है । "संभावयान्ति" इत्यादि श्लोक पढकर चौवीस शासनदेवताओंकी समुदायपूजाकेलिये पूर्व कही हुई विधि करे ॥ १५४ ॥ "यक्ष्य " ...

आवहनादिपुरस्सरप्रत्येकपूजाप्रतिज्ञानाय पत्राग्रेषु पुष्पाक्षतं क्षिपेत् । अथ प्रत्येकपूजा ।

भर्माभाद्य करद्वयालकुलिशा चक्रांकहस्ताष्टका
सव्यासव्यशयोल्लसत्फलवरा यन्मूर्तिरास्तेंबुजे ।
तार्क्ष्ये वा सह चक्रयुग्मरुचकत्यागैश्चतुर्भिः करैः
पंचेष्वास शतोन्नतप्रभुनतां चक्रेश्वरीं तां यजे ॥ १५६ ॥

ओं ह्रीं अप्रतिहतचक्रे देवि इद .. .. ।

स्वर्णद्युतिशखरथांगशस्त्रा लोहासनस्थाभयदानहस्ता ।
देवं धनुः सार्धचतुःशतोच्चं वंदारुवीष्टामिह रोहिणीष्टेः ॥ १५७ ॥

ओं ह्रीं अजितदेवि इदं ... . ।

पक्षिस्थार्धेंदुपरशुफलासीढीवरैः सिता । चतुश्चापशतोच्चार्हद्भक्ता प्रज्ञप्तिरिज्यते ॥ १५८ ॥

श्लोक बोलकर आवाहन आदि पूर्वक हरएककी पूजा करनेकी प्रतिज्ञाके लिये पत्रके अग्रभागमें पुष्प अक्षत क्षेपण करे ॥ १५५ ॥ अब प्रत्येककी पूजा कहते है-" भर्मा " इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर चक्रेश्वरी देवीको जल आदि आठ द्रव्य चढावे ॥ १५६ ॥ "स्वर्णद्युति" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर अजितादेवीको जलादि द्रव्य चढावे ॥ १५७ ॥ "पक्षिस्था"

ओं ह्रीं नम्रे देवि इद ... ... ।

सनागपाशोरुफलाक्षसूत्रा हंसाधिरूढा वरदानुयुक्ता ।
हेमप्रभार्धत्रिधनुः शतोच्चतीर्थेशनम्रा पविमृंखलार्चाम् ॥ १५९ ॥

ओं ह्रां दुरितारि देवि इद ... ... ।

गजेंद्रगावज्रफलोद्यचक्रवरांगहस्ता कनकोज्ज्वलांगी ।
गृह्णानुदंडत्रिशतोन्नतार्हन्नताचर्ना स्वज्ञवरार्च्यते त्वम् ॥ १६० ॥

ओं ह्रीं मोहिनि देवि इद.. ... . ।

सिता गोवृषगा घंटां फलशूलवरान्वृताम् । यजे कालीं द्विको दंडशतोच्छ्रायाजिनाश्रयाम् ॥

ओं ह्रीं मानवेदाव इद .... ।

चंद्रोज्ज्वलां चक्रशरासपाश चर्मत्रिशूलेषुझषासिहस्ताम् ।

इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर नम्रादेवीको जलादि द्रव्य चढावे ॥ १५८ ॥ "सनाग" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर दुरितारि देवीको अर्घ चढावे ॥ १५९ ॥ "गजेंद्र" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर मोहिनी देवीको जलादि चढावे ॥ १६० ॥ "सिता" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर मानव देवीको जलादि चढावे ॥१६१ ॥ "चंद्रो" इत्यादि

श्रीज्वालिनीं सोर्धधनुःशतोच्चजिनानतां कोणगतां यजामि ॥ १६२ ॥

ओं ह्रीं ज्वालामालिनीदेवि इद . . . . ।

कृष्णा कूर्मासनाधन्वशतोन्नजिनानता । महाकालीज्यते वज्रफलमुद्गरदानयुक् ॥ १६३ ॥

ओं ह्रीं भृकुटि देवि इद. . . . . ।

झषदामरुचकदानोचितहस्तां कृष्णकालगां हरिताम् ।

नवतिधनुस्तुगाजिनप्रणतामिह मानवीं प्रयजे ॥ १६४ ॥

ओं ह्रीं चामुंडे देवि इद . . . . ।

समुद्गराब्जकलशां वरदां कनकप्रभाम् । गौरीं यजेशीतिधनुः प्रांशु देवीं मृगोपगाम १६५

तथा "ओं ह्रीं" बोलकर ज्वालामालिनीदेवीको जलादि द्रव्य चढावे ॥ १६२ ॥ "कृष्णा" इत्यादि तथा "ओ ह्री" पढकर भृकुटि देवीको जलादि चढावे ॥ १६३ "झष" इत्यादि तथा "ओ ह्रीं" कहकर चामुंडा देवीको जलादि चढावे ॥ १६४ ॥ "समुद्ग" इत्यादि तथा ओ ह्रीं कहकर गोमेधकिदेवीको जलादि अष्टद्रव्य चढावे ॥ १६५ ॥ "सपद्म" इत्यादि

ओं ह्रीं गोमधकि देवि इदं... .... ।

सपन्नमुसलांभोजदाना मकरगा हरित् । गांधारी सप्ततीष्वास तुंगप्रभुनताच्यंते ॥ १६६ ॥

ओं ह्रीं विद्युन्मालिनि देवि इद......... .... ।

षष्टिदंडोच्चतीर्थेशनता गोनसवाहना । ससर्पचापसर्पेषुर्वैरोटी हरिताच्यंते ॥ १६७ ॥

ओं ह्रीं विद्यादेवि इद ... ... ।

हेमाभा हंसगा चापफलबाणवरोद्यता । पंचशच्चापतुंगार्हद्भक्ता नतमतीज्यते ॥ १६८ ॥

ओं ह्रीं कुंभिणि देवि इदं.... .... ।

सांबुजधनुदानांकुशशरोत्पला व्याघ्रगा प्रवालानिभा ।
नवपंचकचापोच्छ्रिताजिननम्रा मानसीह मान्येत ॥ १६९ ॥

तथा "ओंह्रीं" कहकर विद्युन्मालिनीदेवीको जलादि चढावे ॥ १६६ ॥ षष्टि" इत्यादि तथा ओंह्री" बोलकर विद्यादेवीको जलादि द्रव्य चढावे ॥ १६७ ॥ "हेमाभा" तथा ओंह्रीं" बोलकर कुंभिणिदेवीको जलादि द्रव्य चढावे ॥ १६८ ॥ "सांबुज" इत्यादि तथा "ओंह्रीं"

ओं ह्रीं परभृते देवि इदं........ .... ।

चक्रफलेढिवरांकितकरां महामानसीं सुवर्णाभाम् ।
शिखिगां चत्वारिंषद्धनुरुन्नताजिनमतां प्रयजे ॥ १७० ॥

ओं ह्रीं कंदर्पदेवि इदं.. .... ।

सचक्रशंखासिवरां रुक्माभां कृष्णकोलगाम् । पंचत्रिंशद्धनुस्तुग् जिननम्रां यजे जयाम्॥१७१

ओं ह्रीं गांधारिणी देवि इदं... .... ।

स्वर्णाभां हंसगां सर्पमृगवज्रवरोद्धुराम् । चाये तारावतीं त्रिंशच्चापोच्चमभ्रभाक्तिकाम्॥१७२॥

ओं ह्रीं कालिदेवि इदं........ .... ।

पंचविंशतिचापोच्चदेवसेवापराजिता । शरभस्थार्च्यते खेटफलासिवरयुक् हरित् ॥ १७३ ॥

ओं ह्रीं मनजातदेवि इदं................................ ।

बोलकर परभृतादेवीको जल आदि चढावे ॥ १६९ ॥ "चक्रफले" इत्यादि तथा "ओंह्रीं" बोलकर कंदर्पदेवीको जल आदि चढावे ॥ १७० ॥ "सचक्र" इत्यादि तथा "ओंह्रीं" बोलकर गांधारिणी देवीको जल आदि चढावे ॥ १७१ ॥ "स्वर्णाभां" इत्यादि तथा "ओंह्रीं बोलकर काली देवीको जल आदि चढावे ॥ १७२ ॥ "पंचविंशति" इत्यादि तथा "ओंह्रीं" बोलकर मनजातदेवीको जल आदि चढावे ॥ १७३ ॥ "पीतां" इत्यादि तथा

पीतां विंशतिचापोच्चस्वामिका बहुरूपिणीम् । यजे कृष्णाहिगां खेटफलखड्गवरोद्धराम् ॥ १७४॥

ओं ह्रीं सुगंधिनि देवि इदं .... ।

चामुंडा यष्टिखेटाक्षसूत्रखड्गोत्कटा हरित् । मकरस्थार्च्यते पंचदशदंडोन्नतेशभाक् ॥ १७५ ॥

ओं ह्रीं कुसुममालिनि देवि इदं........................ ।

सव्येकद्युपगप्रियंकर सुतुक् प्रीत्यै करे बिभ्रतीं
दिव्याम्रस्तबकं शुभंकरकराश्लिष्टान्यहस्तांगुलिम् ।
सिंहे भर्तृचरे स्थितां हरितभामाम्रद्रुमच्छायगां
वंदारुं दशकार्मुकोच्छ्रयजिनं देवीमिहाम्रां यजे ॥ १७६ ॥

ओं ह्रीं कूष्मांडिनि देवि इदं........................ ।

येष्टुं कुर्कटसर्पगात्रिफणकोत्तंसा द्विषो यात षट्
पाशादिः सदसत्कृते च धृतशंखास्पादिदो अष्टका ।
तां शांतामरुणां स्फुरच्छृणिसरोजन्माक्षव्यालांबरां
पद्मस्थां नवहस्तकप्रभुनतां यायज्मि पद्मावतीम् ॥ १७७ ॥

"ओंह्रीं" बोलकर सुगंधिनिदेवीको जल आदि चढावे ॥ १७४॥ "चामुंडा" इत्यादि तथा "ओंह्रीं बोलकर कुसुममालिनीको जल आदि चढावे ॥ १७५ ॥ "सव्ये" इत्यादि तथा "ओंह्रीं बोलकर कूष्मांडिनी देवीको जल आदि द्रव्य चढावे ॥ १७६ ॥ "येष्टुं" इत्यादि

ओं ह्रीं पद्मावतीदेवि इदं... . .. . ।

सिद्धायिका सप्तकरोच्छ्रितांगजिनाश्रयां पुस्तकदानहस्ताम् ।
श्रितां सुभद्रासनमत्र यज्ञे हेमद्युतिं सिंहगतिं यजेहम् ॥ १७८ ॥

ओं ह्रीं सिद्धायिनि देवि इदं . .. . ।

इत्यावर्जितचेतसः समुचितैः सन्मानदानैः स्फुरन्
स्यात्कारध्वजशासनद्विषदपक्षेपोच्छलद्युक्तयः ।
यक्ष्यं संघनृपादिलोकविपदुच्छेदादिहार्हन्महे
कुर्वाणाः सहकारितां सममिमां गृह्णंतु पूर्णाहुतिम् ॥ १७९ ॥

पूर्णाहुतिः । इति शासनदेवतार्चनविधानम् । अथ द्वारपालानुकूलनम् ।

सोमयमवरुणधनदा जिनदेवीद्वारपालननियुक्ताः ।
स्वं स्वमिहैत्य नियोगं कुर्वन्त्यः को न वः स्पृहयेत् ॥ १८० ॥

सोमादिद्वारपालसामुख्यविधानाय दिक्षु पुष्पाक्षत क्षिपेत् ।

तथा "ओंह्रीं" बोलकर पद्मावती देवीको जल आदि द्रव्य चढावे ॥१७७॥ "सिद्धायिकां इत्यादि तथा "ओंह्रीं" बोलकर सिद्धायिनी देवीको जल आदि आठ द्रव्य चढावे १७८॥ "इत्यावर्जित" इत्यादि श्लोक कहकर आठ द्रव्यसे सबको पूर्णार्घ दे ॥ १७९ ॥ इस प्रकार

कोदंडकांडस्फुटहृष्टिमुष्टिमकृद्रटोद्भव्यकथानुरक्तम् ।
वेद्याः पुरो द्वारमिमामवंतं सोमोपगृह्णाम्युचितैर्भवंतम् ॥ १८१ ॥

ओं धनुर्धराय अर अर त्वर त्वर हूं सोम आगच्छागच्छ इदं जलं.. ..... ।

द्विद्वर्गदंडोद्यतचंडदंडं प्रचंडसामाजिकसंकथास्थम् ।
वेदिप्रतीहारमपाच्यमेतं पांतं यम त्वामनुकूलयामि ॥ १८२ ॥

ओं दंडधराय अर २ त्वर २ हूं यम आगच्छागच्छ इदं ... . ।

विषाक्तजिह्वायुगलीढसृक्कस्फुलिंगवात्युग्रभुजगरज्जुः ।
प्रतीच्यवेदीमुखदत्तभृत्यव्रतः प्रचेतः कुरु चारुचेतः ॥ १८३ ॥

ओं पाशधराय अर २ त्वर २ हू वरुण आगच्छागच्छ इदं .... ।

शासनदेवताओंका पूजन समाप्त हुआ । अब द्वारपालोंको अनुकूल करते है । "सोम" इत्यादि श्लोक बोलकर उन सोम आदिको सन्मुख करनेके लिये दिशाओंमें पुष्प अक्षतको बखेरै ॥ १८० ॥ "कोदंड" इत्यादि तथा "ओंधनु" इत्यादि बोलकर सोमको जल आदि आठ द्रव्य चढावे ॥१८१ ॥ "त्रिद्वर्ग" इत्यादि तथा "ओं दंड" इत्यादि बोलकर यमको जल आदि चढावे ॥ १८२ ॥ "विषाक्त" इत्यादि तथा "ओं पाश" इत्यादि बोलकर वरुणको जल आदि चढावे ॥ १८३ ॥ 'इतस्ततो" इत्यादि तथा "ओं गदा" इत्यादि बोलकर

इतस्ततो नाभिगिरेः सगर्भां गदां सलीला भ्रमयन्नुदीच्ये ।
द्वारे निषण्णोनुचरैर्वितर्दैः कुबेर वीरानुसरोपचार ॥ १८४ ॥

ओं गदाधराय अर २ त्वर २ हू कुबेर आगच्छागच्छ इद...... ।

एवं प्रियाकृताः सोमप्रमुखा द्वास्थकुंजराः । क्षुद्रान् क्षिपंतो विशतः सलुनु मन्वताम् ॥ १८५ ॥

पुष्पांजलिः । इति द्वारपालानुकूलनाविधानम् । अथ दिक्पालानुकूलनम् ।

वा१८८

इंद्राग्निश्राद्धदेवाः शरपतिवरुणस्पर्शनश्रीदरुद्राः
पूर्वाद्याशासु वेद्यास्त्रिजगदधिपतेः प्राप्तरक्षाधिकाराः ।
तद्यज्ञेस्मिन्भवात्मप्रयति विहरतामेत्य पल्यादियुक्ता
विघ्नंतो यथास्वं वितनुत समयोद्योतमौचित्य कृभ्याः ॥ १८६ ॥

इंद्रादिदिक्पालानामावाहनादिपुरस्सराध्येषणाय दिक्षु पुष्पाक्षत क्षिपेत् । अथ पृथगिष्टि. ।

रूप्याद्रिस्पर्द्धिघंटायुगपटुकटुटंकारनानिशुंभ—
कूपासख्यातिचित्रोज्ज्वलविलसल्लक्ष्मवर्ष्मद्वयस्थं ।

कुबेरको अर्घ आदि चढावे ॥ १८४ ॥ "एवं प्रिया" इत्यादि बोलकर पुष्पोंको क्षेपण करे ॥ १८५ ॥ इसतरह द्वारपालोंको अनुकूलकरनेकी विधि हुई । अब दिक्पालोंको प्रसन्न करनेकी विधि कहते हैं । "इंद्रादि" इत्यादि श्लोक बोलकर इंद्र आदि दिक्पालोंका आवाहन आदि करनेके लिये चारोंतरफ पुष्प अक्षत क्षेपण करे ॥ १८६ ॥ अब इनकी जुदी जुदी पूजा

रूप्यत्सामानिकादित्रिदशपरिवृतं रूच्यसंच्यादि देवी
लोलाक्षं वज्रभूषोद्भटसुभगरुचं प्रागिहेंद्रं यजामि ॥ १८७ ॥

ओं ह्रीं इन्द्र आगच्छागच्छ इंद्राय स्वाहा... ....।

रुक्माकृघुर्घुरस्रगलचटुकपृथुमायभृंगाभतुंग—
स्थं रौद्रपिंगेक्षणयुगममलं ब्रह्मसूत्रं शिखाग्रम् ।
कुंडी वामप्रकोष्ठे दधतमितरपाण्यात पुण्याक्षसूत्रं
स्वाहान्वीतं धिनोमि श्रुतिमुखरसभं प्राच्यपाच्यंतरेऽग्निम् ॥ १८८ ॥

ओं ह्रीं अग्ने आगच्छागच्छ अग्नये स्वाहा ।

कल्पांताब्दोघजेत्र त्रिगुणफणिगुणोद्ग्राहितग्रैवघंटा
टंकारात्युग्रसृंगक्रमहतभधरव्रातरक्ताक्षसंस्थं
चंडार्चिः कांडदंडोद्धुमरकरमतिक्रूरदारादिलोक
कार्ष्ण्योद्रेकं नृशंसं प्रथममथ यम दिश्यपाच्यां यजामि ॥ १८९ ॥

कहते हैं ॥ "रूप्यादि" इत्यादि तथा "ओंह्रीं" बोलकर इंद्रको पूजाद्रव्य चढावे ॥१८७॥
"रुक्मा" इत्यादि तथा "ओंह्री" इत्यादि बोलकर अग्निको पूजाद्रव्य चढावे ॥ १८८ ॥
"कल्पांता" इत्यादि तथा "ओंओं" इत्यादि बोलकर यमको पूजाद्रव्य चढावे ॥ १८९ ॥

ओं आ क्रों ह्रीं यमागच्छागच्छ यमाय स्वाहा ।

आरूढं धूमधूम्रायतविकटसटास्ताग्रदिक्रूक्षरूक्ष्मा
लक्षाक्षावशिष्टास्फुटरुदितकला योद्गमाभांगमृक्षम् ।
क्रूरक्रव्यातपरीतं तिमिरचयरुचं मुद्गरक्षुण्णरौद्र-
क्षुद्रौघं त्रात याम्या परहरतमहं नैर्ऋतं तर्पयामि ॥ १९०

ओं आं क्रौं ह्रीं नैर्ऋत्यागच्छागछ नैर्ऋत्याय स्वाहा ।

नित्यांभः कोलिपांडूत्कटकापिलविशच्छेदसोदर्यदंत-
प्रोत्फुल्यत्पक्ष्मखेलत्करकरिमकरव्योमयानाधिरूढम् ।
प्रेंखन्मुक्ताप्रवालाभरणभरमुपस्थाद्दाराहताक्षं
स्फूर्जद्भीमाहिपासं वरुणमपरादिग्रक्षणं प्रीणयामि ॥ १९१ ॥

ओं आ क्रों ह्रीं वरुणागच्छागच्छ वरुणाय स्वाहा ।

वल्गच्छृंगाग्रभिन्नांबुदपटलगलत्तोयपीतश्रमाभ्र
प्लुत्यस्तस्वांतरंहः खुरकाषितकुलग्रावसारंगयुग्यम् ।

"आरूढं" इत्यादि तथा "ओं" इत्यादि बोलकर नैर्ऋत्यको अर्घ चढावे ॥ १९० ॥
नित्यांभ" इत्यादि तथा" ओ आं" इत्यादि पढकर वरुणको अर्घ चढावे ॥ १९१ ॥" वल्ग"

व्याकोलद्रावयंभं त्रिजगदसुधृतिव्यग्रमुग्रद्रुमाखं
सर्वार्थानर्थसर्गप्रभुमनिलमुदक् प्रत्यगंतः प्रणौमि ॥ १९२ ॥

ओं आं क्रों ह्रीं अनिलागच्छागच्छ अनिलाय स्वाहा ।

हांसोघो नाह्यमानं पवननरिवृतत्केतुपंक्ति विमानं
स्वारूढः पुष्पकाख्यं क्रमसखरसनादामयुक्ताकलापः ।
अग्राम्योद्दामवेषः सुललितधनदेव्यादिवक्राब्जभृंगः
शक्तीभिन्नारिमर्मा भजतु बलिमुदग्भुक्तिवीरः कुबेरः ॥ १९३ ॥

ओं आ क्रों ह्रीं कुबेरागच्छागच्छ कुबेराय स्वाहा ।

सास्नावाचालकिंकिण्यनणुरणनझणत्कारमंजीरसिंजा
रम्योच्चशृंगहेलाविहरदुरुशरच्चंद्रशुभ्रर्षभस्थम् ।
भास्वद्भूषाभुजंगभुजगासितजटाकेतकार्द्धेंदुचूलं
दधत्शूलं कपालं सगणवमिहार्चामि पूर्वोत्तरेशम् ॥ १९४ ॥

ओं आ क्रों ह्रीं ईशानागच्छागच्छ ईशानाय स्वाहा ।

इत्यादि तथा "ओं आं" इत्यादि बोलकर वायुको अर्घ चढावे ॥१९२॥ "हांसो" इत्यादि तथा "ओं" इत्यादि पढकर कुबेरको अर्घ चढावे ॥ १९३ ॥ "सास्ना" इत्यादि तथा "ओं" इ-

इत्यर्हन्मदुसामवायिकनयाह्वानादियोग्यक्रमे—
दिक्पालाः कृततुष्टयः परिजनोत्कृष्टश्रियोष्टाप्यमू ।
दृष्ट्वा कामदमर्हदध्वरमरं दिक्चक्रमाक्रामतो
भव्यान् संदधतः शुभैः सह भजंत्वेतर्हि पूर्णाहुतिम् ॥ १९५ ॥

पूर्णाहुतिः । इति दिक्पालार्चनविधानम् । अथ दिक्चतुष्टयनिविष्टप्रभावनोद्भटयक्षानुकूलनम् ।

प्रभु भक्तुमिहागत्य प्राचीं चिन्वान्निजश्रिया । बलिं विजययक्षेश मंत्रपूतां स्वसात्कुरु ॥१९६॥

ओं ह्मल्र्व्यूं विं विजययक्ष बलिं गृहाण गृह्ण गृह्ण स्वाहा ।

अत्रापाचीमलंकृत्य भजमानो जगत्पतिम् । यथार्हबलिसंतुष्टो वैजयंत जयंत नु ॥ १९७ ॥

ओं ह्मल्र्व्यूं वैं वैजयंत बलिं ... ... ।

देवाधिदेवसेवार्थे प्रतीचीं दिशमास्थितः । बलिदानेन संप्रीतो जयंत जय दुर्जयान् ॥ १९८ ॥

ॐ ह्मल्र्व्यूं जं जयंत बलिं ... ... ।

त्यादि कहकर ईशानको अर्घ चढावे ॥ १९४ ॥ "इत्यर्ह" इत्यादि बोलकर पूर्णार्घ चढावे ॥ १९५ ॥ इसतरह दिक्पालोंकी पूजाविधि पूर्ण हुई । अब चारों दिशाओंके यक्षोंका सत्कार करते हैं । "प्रभुं" इत्यादि तथा "ओं" इत्यादि बोलकर विजययक्षको अर्घ चढावे ॥ १९६ ॥ "अत्रापा" इत्यादि तथा "ओं" इत्यादि बोलकर वैजयंतको अर्घ चढावे ॥ १९७ ॥ "देवाधि" इत्यादि तथा "ओं" इत्यादि बोलकर जयंतको अर्घ चढावे ॥ १९८ ॥ "उदीचीं" इत्यादि

उदीचीं भूषयन् भूत्या सर्वज्ञोपासनोत्सुकः। अपराजित यक्ष त्वं प्रीयस्व बलिनामुना॥१९९॥

ॐ क्ष्म्ल्व्र्यूं अं अपराजित बलि.... .... ।

एव संमानिता यूयं जिनेंद्रसमये रताः। प्रतिष्ठासमयेऽमुष्मिन् यतध्वं विश्वशांतये ॥ २०० ॥

पूर्णाहुतिः। इति विजयादियक्षानुकूलनविधानम्। अथैशानदिश्यनावृतार्चनम्।

जंबूवृक्षस्य नानामणिमयवपुषः प्राज्यजंबूद्रुतस्य
प्राक्शाखामावसंत नवजलदरुचं पक्षिराजाधिरूढम्।
कुंडीशंखाक्षमालारथचरणकरं त्राणनिःशेषजंबू—
द्वीपश्रीकं यजेस्मिन् विधुरविधुतयेनावृतं व्यंतरेंद्रम् ॥ २०१ ॥

ओं दशदिशाधिनाथं त्रैलोक्यदंडनायक जंबूद्वीपाधिपतिं गरुडपृष्ठमारूढं स्निग्धभिन्नाजनाभमक्षसूत्रकमंडलुव्यग्रहस्त चतुर्भुज शंखचक्रविधृतभुजादंडं यक्षिणीसहित सपरिजन सपरिवारमनावृत देवं समाह्वयामीह स्वाहा हे अनावृतागच्छागच्छ अनावृताय स्वाहा अनावृतपरिजनाय स्वाहा।

तथा "ओं" इत्यादि बोलकर अपराजितको अर्घ चढावे ॥ १९९ ॥ "एवं समा" इत्यादि श्लोक बोलकर पूर्णार्घ चढावे ॥ २०० ॥ इस प्रकार विजयादि यक्षोंका सत्कार हुआ। अब ईशानदिशाके अनावृत यक्षकी पूजा कहते हैं। "जंबूवृक्ष" इत्यादि तथा "ओं दश" इत्यादि पढकर जल आदि अष्ट द्रव्य चढावे ॥ २०१ ॥ "ब्रह्मांते" इत्यादि तथा "ओ ह्रीं" बोलकर

ब्रह्मांते दिक्षु रुद्राद्यधिपतिषु समाग्न्यामसूर्याभपूर्व—
द्विद्विस्वर्भूगणैकोचरभूतिषु वसंत्यष्ट सारस्वताद्याः।
यद्वर्गास्ते स्वतंत्राः क्षतविषयतृषो भाविजन्माप्यमोक्षाः
पूर्वज्ञा मेघ लौकांतिकसुरमुनयस्तीर्थकृच्छंसिनोऽर्च्याः ॥ २०२ ॥

ओं ह्रीं लौकांतिकदेवेभ्यः पुष्पाजलिं निर्वपामीति स्वाहा। ब्रह्मेंद्रोपरि देवर्षिपुष्पांजलिः।

मुख्योपचारिकचरित्रचितोरुपुण्यपाकाप्तखस्थसितरत्नविमानवासान्।
अर्हत्प्रतिष्ठितिमिमामनुमोदमानान् संमानयामि कुसुमांजलिनाहमिंद्रान् ॥ २०३ ॥

ओं ह्रीं अहमिंद्रदेवेभ्य पुष्पाजलिं निर्वपामीति स्वाहा। अच्युतेंद्रोपरि अहमिंद्रपुष्पांजलिः।

अथ विधिशेषम्।

पूर्वादिदिक्षु वेद्या मंगलशांतिकजयेष्टसिद्ध्यर्थम्।
मंगलशस्त्रपताकाकलशानथ योजयेष्टशः क्रमशः॥ २०४ ॥

मंगलादिस्थापनाप्रतिज्ञानाय दिक्षु पुष्पाक्षत क्षिपेत्।

लौकांतिक देवोंके लिये पुष्पोंको चढावे ॥ २०२ ॥ "मुख्यो" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर अहमिन्द्र देवोंके लिये पुष्पांजलि चढावे ॥ २०३ ॥ अब शेष विधान कहते हैं। "पूर्वादि" इत्यादि श्लोक पढकर मंगल आदि आठ द्रव्योंकी स्थापनाके लिये दिशाओंमें पुष्प अ-

छत्राब्दध्वजचामरयुगतोरणतालवृंतनंद्यावर्तम् ।
दीपं च प्रणवमुखं न्यसामि मंत्रार्पितं श्रियै स्वाहांतम् ॥ २०५ ॥

ॐ श्वेतछत्राश्रियै स्वाहा । एवमन्येष्वपि मंगल्यष्टकस्थापनम् ।

दधती पविमिंद्राणी चक्रं वैष्णव्यसिं च कौमारी ।
सीरं वाराही मुशलं ब्रह्माणी गदां महालक्ष्मी ॥ २०६ ॥
शक्तिं चामुंडायाग्नि माहेशी भिंडमालमाग्नंतु ।
विघ्नान् प्रणवमुखाख्या गर्भस्वाहांतमंत्रविन्यस्ताः ॥ २०७ ॥

ओं इंद्राण्यै स्वाहा । एवमन्यास्वपि आयुधाष्टकस्थापनम् ।

पीता प्रभारुणा पद्मा कृष्णाभा मेघमालिनी । हरिन्मनोहरा श्वेता चंद्रमालेंद्रनीलभा ॥ २०८ ॥
सुप्रभाख्या जया श्यामा विजया पंचवर्णभा । दिक्षु तिष्ठंत्विमा देव्यः सवर्णध्वजपाणयः २०९

ओं प्रभायै स्वाहा । एवमन्यास्वपि पताकाष्टकस्थापनम् ।

क्षत वगैरे ॥ २०४ ॥ "छत्र" इत्यादि तथा "ओं" इत्यादि पढकर श्वेतछत्रादि आठ मंगल द्रव्योंको जलादि चढावे ॥ २०५ ॥ "दधती" इत्यादि दो श्लोक तथा "ओं" इत्यादि बोलकर आठ आयुध (हथियार) स्थापना करे ॥ २०६ ॥ २०७ ॥ "पीता" इत्यादि दो श्लोक तथा "ओं" इत्यादि बोलकर आठ पताकाओंका स्थापना करे ॥ २०८ ॥ २०९ ॥ "शुभान्" इ-

शुभ्रान प्रकूप्रशरणोत्तममंगलार्थान कुंभान मुखार्पितसुपल्लवमातुलिंगान् ।
स्रक्चंदनाक्षररुचोंबुभृताभिवेश्य सूत्रेण पंचरुचिना त्रिगुणं वृणोमि ॥ २१० ॥

कलशाष्टकस्थापनम् ।

बाणैर्जयाय सिद्धार्थैरर्थसिद्धयै यवारकैः । संतानवृद्धयै च चतुर्वेदीकोणान विभूषणैः २११

बाणचतुष्टयादिस्थापनम् ।

सगुडलवणां सलोष्टां पांडुशिलासोदरेसु सूत्रवृताम् ।
भोगोपभोगसंपत्प्रथनीं वेद्यां पुरः शिलां निदधे ॥ २१२ ॥

ओं सर्वजनानंदकारिणि सौभाग्यवति तिष्ठ २ स्वाहा । शिलास्थापनम् ।

हैमं रूप्यं चांदनमाहोस्वित् क्षीरवृक्षज पट्टम् ।
धौतासितवस्त्रापिहितं प्रभुमधिकर्तुं न्यसामि वेद्यंतः ॥ २१३ ॥

ओं भद्रासनश्रियै स्वाहा । पट्टस्थापनम् । अथ पीठचतुष्टयार्चनम् ।

नद्वेदीचतुरंतसांगुलवितस्त्युद्देशशुंभत्कर—
व्यासायामयुतासनेषु कमलान्यालिख्य तत्कर्णिकाः ।

त्यादि श्लोक बोलकर आठ कलशोंका स्थापन करे ॥ २१० ॥ "बाणै" इत्यादि श्लोक पढकर बाण आदि चार द्रव्योंको स्थापन करे ॥ २११ ॥ "सगुड" इत्यादि तथा "ओं" इत्यादि बोलकर शिलाकी स्थापना करे ॥ २१२ ॥ "हैमं" इत्यादि तथा "ओं" इत्यादि बोलकर

प्राग्वत् प्राच्यं तथा दलेष्वनुदिशं देवीर्जयाद्याः पृथक्—
जंभाद्याश्च विदिग्दलेषु धिनुयां दिग्द्वाररैरक्षिणः ॥ २१४ ॥

बहिर्मंडलपूजाप्रतिज्ञानाय पुष्पांजलिं क्षिपेत् । अत्रापि पूर्ववत् कर्णिकाः परब्रह्मादिपदैः पूरयित्वा तत्पत्रदलेषु पूर्वादिदिक्षु ओं जये स्वाहा, ओं विजये स्वाहा, ओं अजिते स्वाहा, ओं अपराजिते स्वाहा । आग्नेय्यादिविदिक्षु च ओं जंभे स्वाहा, ओं मोहे स्वाहा, ओं स्तंभे स्वाहा, ओं स्तंभिनि स्वाहा इति लिखित्वा बहिश्चतुर्द्वारचतुष्कोणमंडलं विलिख्य तद्बहिः पूर्ववद्दिक्पालान् द्वारपालान् यक्षदेवांश्च संस्थाप्य चिद्रूप विश्वरूपेत्यादिविधिना कर्णिकार्चनं संक्षेपेण कृत्वा जयादिदेवीर्दिक्पालान् द्वारपालान् यक्षांश्च पूजयेत् । अथ जयादिदेवतार्चनम् ।

जयाद्याः श्लब्दये युष्मानायात सपरिच्छदाः । अत्रोपविशतैता वो यजे प्रत्येकमादरात् २१५

काष्ठासन (पट्टा) स्थापित करे ॥ २१३ ॥ अब चार पीठोंकी पूजा कहते हैं । "तद्वेदी" इत्यादि श्लोक कहकर बाह्यमंडलकी पूजाके लिये पुष्पोंको क्षेपण करे ॥ २१४ ॥ यहांपरभी पहलेकी तरह कर्णिकामें अरहंत आदि पदोंको लिखकर उस कमलपत्रपर पूर्व आदि दिशाओंमें "ओं जये" इत्यादि चार पद लिखे । फिर आग्नेयी आदि विदिशाओंके पत्तोंपर "ओं जंभे" इत्यादि चार पद लिखे । उसके बाद बाहरके चार दरवाजोंपर चौकोन मंडल लिखकर उसके बाहर पहलेकी तरह दिक्पाल, द्वारपाल और यक्षदेवोंको स्थापन करके "चिद्रूपं" इत्यादि कही हुई विधिसे कर्णिकाकी संक्षेपसे पूजा करे । फिर जयादि देवी, दि-

आवाहनादिपुरस्सरप्रत्येकपूजाप्रतिज्ञानाय पुष्पाक्षत क्षिपेत् ।

जये जयाद्ये विजये विजैनि जैने जितेपराजितेस्मिन् ।
जंभेवमोहनेस्ति भाः स्तंभिनि रक्ष रक्षास्मान् ॥ २१६ ॥

स्वोपग्रहाय पत्रेषु पुष्पाक्षतानि क्षिपेन् । अथ प्रत्येकपूजा ।

इहार्हतो विश्वजनीनवृत्तेः कृतौ कृताराातिजये जये त्वाम् ।
सद्गंधपुष्पाक्षतदीपधूपफलादिसंपादनया धिनोमि ॥ २१७ ॥

ओं ह्रीं जये देवि आगच्छागच्छ इदं... ... . ।

जिनाधिराजे विजयैकविद्ये जगद्विजेतुः कुसुमायुधस्य ।
विजेतरि स्फारितभूरिभक्ति त्वामत्र यज्ञे विजये यजेहम् ॥ २१८ ॥

ओं ह्रीं विजये देवि. .... ।

कपाल, द्वारपाल, और यक्षोंको पूजे ॥ अब जया आदि देवताओंकी पूजा कहते हैं । जया इत्यादि श्लोक बोलकर आवाहनादिपूर्वक हर एककी पूजा करनेकी प्रतिज्ञाके लिये पुष्प-अक्षतोंको क्षेपण करे ॥ २१५ ॥ "जये" इत्यादि श्लोक बोलकर अपने उपकारके लिये पत्रोंपर पुष्प अक्षतको क्षेपण करे ॥ २१६ ॥ अब प्रत्येककी पूजा कहते हैं । "इहा" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर जया देवीको जलादि आठ द्रव्य चढावे ॥ २१७ ॥ "जिना" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर विजयाको अर्घ चढावे ॥ २१८ ॥ "जग" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं"

जगज्जयोज्जागरिणां कषायद्विषां न केनापि जितं जिनेंद्रम् ।
आवर्जयंतामजितोर्जितोजामूर्जाप्तये त्वामजितेर्चयामि ॥ २१९ ॥

ओं ह्रीं अजिते.... .. . . ।

पराजितारेरपराजितात्रैरप्याश्रितस्यारिपराजयाय ।
जगत्प्रभोरत्र महे महामि पराजिते त्वामपराजितेत्र ॥ २२० ॥

ओं ह्रीं अपराजिते . . . . ।

व्यामोहनिद्रां भुवनानि जंभ विशंत्युद्धरतो जिनस्य ।
वितन्वतां यज्ञमजन्यहंत्रीं त्वा देवि जंभे परिपूजयामि ॥ २२१ ॥

ओं ह्रीं जंभे .. . . ।

चिरं जगन्मोहविषेणसुप्तं स्याद्वादमंत्रेण विबोधयंतम् ।
श्रीबुद्धमाराधयतां हि मोहे त्वां मोहयतीमहितान्महामि ॥ २२२ ॥

ओं ह्रीं मोहे....... ...., ।

बोलकर अजिताको जलादि चढावे ॥ २१९ ॥ "पराजि" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर अपराजिताको जलादि आठ द्रव्य चढावे ॥ २२० ॥ "व्यामोह" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर जंभा देवी पर जलादि चढावे ॥ २२१ ॥ "चिरं" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर

जिनं महाभव्यविशुद्धिभावमासादमुस्तंभमुपास्ति यस्तम् ।
प्रकुर्वतं स्तंभयतां स्तमंतं स्तंभे सृजंतीं भवतीं यजामि ॥ २२३ ॥

ओं ह्रीं स्तंभे देवि .... ।

प्रवादिनां स्तंभयतोत्र मानस्तंभेन दूरादपि मंक्षु मानम् ।
जिनेस्य यज्ञेर्चनया सपत्नधीस्तंभिनि स्तंभिनि संस्तुवे त्वाम् ॥ २२४ ॥

ओं ह्रीं स्तंभिनि देवि.. ।

इत्येताः पृथुयशसो जयादिदेव्यो देशामभिरुचिते जिनेंद्रयज्ञे ।
पूर्णाहुतिमिह लंभिताः प्रपूज्य श्रेयांसि प्रददतु भव्यभाक्तिकेभ्यः॥ १२५ ॥

पूर्णाहुतिः ।

प्राच्याद्याग्नेयकोणादिपत्रेष्विष्टाः क्रमादिमाः। अष्टौ जयादिजंभादिदेव्यः शांतिं वितन्वताम् ॥

इष्टप्रार्थना । इति जयादिदेवतार्चनविधानम् । अथ दिक्पालान् द्वारपालान् यक्षांश्च संक्षेपेण सत्कुर्यात् । इति बहिर्मंडलचतुष्टयार्चनविधानम् ।

मोहा देवीको जल आदि द्रव्य चढावे ॥ २२२ ॥ "जिनं" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर स्तंभादेवीको जल आदि द्रव्य चढावे ॥ २२३ ॥ "प्रवादि" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर स्तंभिनीको जल आदि द्रव्य चढावे ॥ २२४ ॥ "इत्येताः" इत्यादि श्लोक बोलकर स-

इत्थं निष्ठितपूज्यपूजनविधिः शक्रो महार्घेण तां
त्रिर्वेदीमवतार्य भूतिभरतो भक्त्या परीत्यामतः ।
सद्भूषाश्चतुरोष्ट वा सुकुसुमैस्तं जापयन् मतस-
द्रूपं मंत्रमनादिसिद्धमुरुधीरीशानवेदीं यजेत् ॥ २२७ ॥

णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाण णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं। चत्तारि मंगलं अरहतमंगल सिद्धमंगलं साहुमगल केवलीपण्णत्तो धम्मो मंगल। चत्तारि लोगोत्तमा अरहंतलोगोत्तमा सिद्धलोगोत्तमा साहुलोगोत्तमा केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा। चत्तारिसरणं पव्वज्जामि अरहंतसरण पव्वज्जामि सिद्धसरणं पव्वज्जामि साहुसरणं पव्वज्जामि केवलिपण्णत्तो धम्मो सरणं पव्वज्जामि ह्रौं स्वाहा। अनादिसिद्धमंत्रः। इति मूलवेदिकार्चनविधानम्। अथोत्तरवेदिकार्चनम्।

वेद्यां चान्यां सुरगिरिशिलावेदिवत्कार्णिकायां
प्राग्वन्मंत्रानथ कजदलेष्वष्टसु श्र्यादिदेवीः ।

बको पूर्णार्घ देवे ॥ २२५ ॥ "प्राच्या" इत्यादि श्लोक बोलकर इष्टवस्तुकी प्रार्थना करे ॥ २२६ ॥ इसतरह जया आदि देवताओंकी पूजा हुई। इसके बाद दिकपाल, द्वारपाल और यक्षोंका संक्षेपसे सत्कार करे ॥ इसप्रकार बाह्य मंडलचतुष्ककी पूजाविधि जानना। "इसप्रकार" वह इंद्र पूजाविधि करके अनादि सिद्ध मंत्रको जपता हुआ ईशानवेदीको पूजे ॥ २२७ ॥ "णमो" इत्यादि स्वाहातक अनादिसिद्ध मंत्र जानना ॥ इसतरह मूलवेदी-

अर्हद्वादीन् क्षितिपुरबहिर्दिक्षु देवीजयाद्या
न्यस्य द्वारेष्वनु च चतुरो यक्षदेवान् यजामि ॥ २२८ ॥

ईशानवेद्यां यागमंडलपूजाप्रतिज्ञानाय पुष्पांजलिं क्षिपेत् । अथ पूर्वविधिना कर्णिकातःस्थापिता परब्रह्मादिपूजा विधाय पद्मदलेष्वष्टौ श्र्यादिदेवी. पूजयेत् । तथाहि ।

याः सामानिकपर्षदंबुजपरीवारान्वया ह्यूर्ध्वभू
पद्मादिह्रदपुष्करेंदुविशदप्रासादवासा मुदा ।
सेवंते बहुधा जिनेंद्रजननीं श्र्यादीश्रयंत्यो गुणान्
भांतीं पुष्पमुखैः करात्तकलशैस्ताः श्र्यादिदेवीर्यजे ॥ २२९ ॥

श्र्यादिदेवीसमुदायपूजाविधानाय पत्राष्टके कुंकुमालुलितपुष्पाक्षत क्षिपेत् । अथ पृथगिष्टिः ।

की पूजाविधि हुई । अब उत्तरवेदीकी पूजा कहते हैं । "वेद्यां" इत्यादि श्लोक पढकर ईशानवेदीमें यागमंडलकी पूजा करनेके लिये पुष्पोंको क्षेपण करे ॥ २२८ ॥ अब पहले कही हुई विधिके अनुसार कर्णिकाके मध्यमें स्थापित अरहंत आदि परमेष्ठीकी पूजा करके आठ कमलपत्रोंपर श्री आदि आठ देवियोंकी पूजा करे । उसीको कहते हैं । "याःसामा" इत्यादि श्लोक बोलकर श्रीआदि देवीयोंके समूहकी पूजा करनेके लिये आठ पत्तोंपर केशरसे लेपे हुए पुष्पअक्षतोंको क्षेपण करें ॥ २२९ ॥ अब जुदी जुदी पूजा कहते हैं । "श्र्याद्याः"

श्र्याद्याः संघभव्दये युष्मानायात सपरिच्छदाः। अत्रोपविष्टास्तैता वो यजे प्रत्येकमादरात्॥२३०॥

आवाहनादिपुरस्सरप्रत्येकपूजाप्रतिज्ञानाय पत्रेषु पुष्पाक्षतं क्षिपेत् ।

क्षोण्या पार्श्वततेंद्रकार्मुकतादिद्वंद्वद्युतिं तन्वतो

हिम्याद्रेरुपरित्यमुज्ज्वलयतः पद्मह्रदं पुष्करात् ।

यत्यद्द्रव्यवरैः सुरालह्रदतैर्गर्भे विशोध्य श्रियं

तन्वाना जिनमातरं भजति या सा श्रीस्तदिज्यार्च्यते ॥ २३१ ॥

ओं सुवर्णवर्णे चतुर्भुजे पुष्पमुखकलशहस्ते श्रीदेवि आगच्छागच्छ इदं जलं .. .. ।

नानारत्नमयूखपार्श्वखचितक्षीरादवेलाक्षिपो

मूर्द्धन्युल्लसतो महाहिमवतः पद्मान् महापाद्मिके ।

संविद्वालसखीमुपेत्य विनयाल्लज्जां दृशोर्यजती

यार्हन्मातुरुपासनां वितनुते सा ह्रीर्जपाभार्च्यते ॥ २३२ ॥

इत्यादि श्लोक बोलकर आवाहनादिपूर्वक हरएककी पूजा करनेकी प्रतिज्ञा करनेके लिये पत्तोंपर पुष्प और अक्षत क्षेपण करे ॥ २३० ॥ "क्षोण्या" इत्यादि तथा "ओं सुवर्ण" बोलकर श्रीदेवीको जल आदि आठ द्रव्य चढावे ॥ २३१ ॥ "नानारत्न" इत्यादि तथा "ओं रक्त" इत्यादि बोलकर ह्री देवीको अर्घ चढावे ॥ २३२ ॥ "उद्यंतं" इत्यादि तथा "ओं

ओं रक्तवर्णे चतुर्भुजे पुष्पमुखकलशहस्ते ह्रीदेवि इदं... . ... ।

उद्यंतं सहतोभितो हरिधनुष्कीर्णो रविं मीकरै—
मूर्द्धोर्वीं निषधस्य चुंबति महापद्मादपि ज्यायसी ।
कंजादेत्य तिगिंछ एधितरुचेर्धैर्ये परं पुष्यतीं
या जैना भजतेंबिकामुपहरे नां चीनवर्णा धृतिम् ॥ २३३ ॥

ओं सुवर्णवर्णे चतुर्भुजे पुष्पमुखकलशहस्ते धृति देवि इद .... ।

पार्श्वोद्भासिविचित्ररत्नरुचिरां वैडूर्यगात्रीं गदां
द्वीपनेव धृतां पुनात्युपरिमे नीलाचलं नीरजात् ।
भातः केसरिणि श्रियैत्य विधिवद्या सज्जयंती स्तुतौ
रुक्माभा वरिवस्यतीशजननीं तां कीर्तिमर्चाम्यहम् ॥ २३४ ॥

ओं सुवर्णवर्णे चतुर्भुजे पुष्पमुखकलशहस्ते कीर्तिदेवि इद .. .. ।

भास्वद्भक्तिविचित्रितोभयवपुर्भागेंद्रनागमती--
क्षिष्णो रुक्मिगिरेर्महांतमुपरित्यं पुंडरीकं श्रितात् ।

सु" इत्यादि बोलकर धृति देवीको जलादि चढावे ॥ २३३ ॥ "पार्श्वो" इत्यादि तथा "ओं सु" इत्यादि बोलकर कीर्ति देवीको अर्घ चढावे ॥ २३४ ॥ "भास्वद्भ" इत्यादि तथा "ओं सु" इत्यादि बोलकर बुद्धिदेवीको जलादि चढावे ॥ २३५ ॥ "रत्नांबु" इत्यादि तथा "ओं

पाञ्जादेत्य हिरण्यकश्यपरिचरत्यर्हत्सविम्बीं जग—
द्बोधं कंदलयंत्यकं बलिमहं तस्यै ददे बुद्धये ॥ २३५ ॥

ओं सुवर्णवर्णे चतुर्भुजे पुष्पमुखकलशहस्ते बुद्धिदेवि इद . ... ।

रत्नांशुच्छुरितोभयांतकनकश्रोणीध्रशृंगस्निहः
रकुर्वाणमधित्यकां शिखरिणो यत्पुंडरीकं श्रिया ।
आबध्नाति ततोंबुजादुपरतावार्यै भवोद्भासिनी
भर्माभा जुषतैंविकां जिनपतेर्लक्ष्मीं यजे तामहम् ॥ २३६ ॥

ओं सुवर्णवर्णे चतुर्भुजे पुष्पमुखकलशहस्ते लक्ष्मी देवि इदं ... . ।

दृश्यादृश्यवपुर्भिरस्फुटशची साक्षात्सुखं श्र्यादिभि—
स्तत्तन्मंगलधारणादिविधिभिर्देव्या यदुद्भाव्यते
तत्मत्पूहबहिष्कृतं विदधती तस्या मनोनिर्वृतिं
कांचित्कांचनकांतिरुत्किरति या शांतिर्मया सार्च्यते ॥ २३७ ॥

ओं सुवर्णवर्णे चतुर्भुजे पुष्पमुखकलशहस्ते शाति देवि इद. .... . ।

सु" इत्यादि बोलकर लक्ष्मीदेवीको अर्घ चढावे ॥ २३६ ॥ "दृश्यादृश्य" इत्यादि तथा "ओं
सु" इत्यादि बोलकर शांतिदेवीको जलादि चढावे ॥ २३७ ॥ "संक्रांते" इत्यादि तथा "ओं

संक्रांतेंदु यथामुखीनवलवक्रुर्क्षि जिनाध्यासितं
बिभ्रत्यावपुषीश्वरे गुणगणे भोगेषु भक्तेषु च ।
देव्याः पुष्टिमनुक्षणं भगुणयंत्यन्यासु या स्तभ्यते
गांगेयांगरुगर्हतोर्हति महे सा पुष्टिरिष्टिं न काम् ॥ २३८ ॥

ओं सुवर्णवर्णे चतुर्भुजे पुष्पमुखकलशहस्ते पुष्टिदेवि इदं . ..... ।

इत्यष्टैता दिक्कुमारीर्जिनांबापरिचारिकाः। प्रसाद्य हविषां पूर्णाः पूर्णाहुत्यो विदध्महे ॥२३९॥

पूर्णाहुतिः ।

एवं संभाविताः कर्तुर्जिनजन्ममहोत्सवम् । श्रीमुख्यदेवतास्वष्टास्तुष्टये संतु यज्वनाम् ॥२४०॥

इष्टप्रार्थनाय पुष्पांजलिं क्षिपेत् । एव श्र्यादिदेवीरभ्यर्च्य दिक्पालादीन् पूर्ववत्क्रमेण पूजयेत् ।

इत्युत्तरवेदिकार्चनविधानम् ।

ऐतिह्यादिति यागमंडलमहं निर्वर्त्य वेदीविधिं
चिद्धृत्यं शुभभावसंपतिपरां निर्माप्य भव्यात्मनाम् ।

सु" इत्यादि बोलकर पुष्टि देविको जलादि चढावे ॥ २३८ ॥ "इत्यष्टै" इत्यादि श्लोक बोलकर पूर्णार्घ चढावे ॥ २३९ ॥ "एव" इत्यादि श्लोक बोलकर इष्ट वस्तुकी प्रार्थनाकेलिये पुष्पोका क्षेपण करे ॥ २४० ॥ इसप्रकार श्री आदि देवियोंको पूजकर दिक् पालोंको पूर्व क-

इष्ट्वामृश्य च सर्वशः प्रतिकृतीराशाधरोंतश्चरत्–
कीर्तिः सोत्तरसाधकोनुरहसं गच्छेत्पुरा कर्मणे ॥ २४१ ॥

इत्याशाधरविरचिते प्रतिष्ठासारोद्धारे जिनयज्ञकल्पापरनाम्नि यागमंडलपूजाविधानीयो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

हे हुए क्रमसे पूजे । इस तरह उत्तर वेदीकी पूजा विधि हुई । मैंने (आशाधरने) यह वेदीका विधान शास्त्रके अनुसार कहा है । जो कोई इस विधीको जानकर और विचार कर करेगा वह मुमुक्षु भव्यजीव उत्तम सुखको अवश्य प्राप्त होगा ॥ २४१ ॥

इसप्रकार पं० आशाधर विरचित जिनयज्ञकल्प द्वितीय नामवाले प्रतिष्ठासारोद्धारमें यागमंडलकी पूजाविधी कहनेवाला तीसरा अध्याय समाप्त हुआ ॥ ३ ॥

॥ चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अथो विविक्तदेशस्थः प्रतिष्ठाचार्यकुंजरः । प्रतिष्ठाविधये कुर्यात् परिकर्मेदमादृतः ॥ १ ॥

प्रागेकां सुखसचार्यां प्रातिहार्यादिशालिनीम् । पुरोधाय सुरम्यार्चां प्रतिष्ठेयं निरूपयेत्॥२॥

शस्ताशस्तात्मभावार्जितवृषवृजिनच्छेदहृष्यत्परा यः
स्वर्गाच्छ्वभ्रादथैत्य त्रिजगदुपकृतिव्यक्तिमाहात्म्यसंपत् ।
शक्राद्यैर्यौतिरागादहमहमिकया सेव्यते सिद्ध्यधीशः
पश्यंत्यज्ञास्तदर्चां स्वचितामिह नये स्थाप्यतेर्हंस्स तेभ्यः ॥ ३ ॥

अब चौथा अध्याय कहते हैं । याग मंडलकी पूजाके बाद उत्तम प्रतिष्ठाचार्य एकांतस्थानमें प्रतिष्ठा विधिके लिये इस आगे कहेजानेवाली क्रियाको करे ॥ १ ॥ सबसे पहले एक प्रतिमाको लावे । जोकि अच्छीतरह अपनेपर चल सके, प्रातिहार्य आदि सहित हो और देखनेमें बहुत अच्छी हो ॥ २ ॥ " शस्ता " आदि श्लोकोंमे जैसा प्रतिमाका वर्णन किया है वैसी प्रतिमाको न्यायपूर्वक पैदा किये हुए द्रव्यसे बनवाकर प्रतिष्ठा कराते हैं वे

कल्याणैः श्रितभूतभाविसुनयत्रित्वौभयेः पंचाभि-
श्चित्तं वित्तमशेषमोहमथनाद्वासत्यविद्याभिदि ।
प्रत्यग्ज्योतिषि तीर्थकृत्वनियतं निर्बीजयोगे स्फुरद्
ध्यात्वार्चा स्थिरचित्क्षणाष्टकपदे यो क्षेत्रबीजाक्षरम् ॥ ४ ॥

द्रव्यैः स्वैः सुनयार्जितैर्जिनपतेर्बिम्बं स्थिरं वा चल
ये निर्माप्य यथागमं सुदृषदाद्यात्मात्मनान्येन वा ।
लग्ने वाल्गुनि लंभयंति तिलकं पश्यंति भक्त्या च ये
ते सर्वेपि महोदयांतमुदयभव्यां लभंतेऽद्भुतम् ॥ ५ ॥

प्रतिष्ठेयनिरूपणा । अथ सकलीकरणम् । अत्रादावनेन मंत्रेण स्वहस्तौ पवित्रयेत् । ओं णमो अरहंताणं णमो केवलिणे सुअगदेवि पसत्थ हत्थेहि हुं फट् स्वाहा । हस्तद्वयपवित्रकरणमंत्रः । ततः

भव्यजीव उत्तमपदको पाते हैं ॥ ३ । ४ । ५ । यह प्रतिमाका वर्णन हुआ । अब सकली-करण क्रिया कहते हैं । उसमें पहले "ओं णमो" इत्यादि मंत्रसे अपने हाथ पवित्र करे । उसके बाद सुरभिमुद्रा धारण करके इस आगेकी पवित्र विद्याको सात बार चिंतवन करे । वह विद्या "ओं णमो" से लेकर स्वाहा तक कही है । उसके बाद अंगन्यास करे वह इसप्रकार है ।

सुरभिमुद्रा धृत्वा इमा शुचिविद्या सप्तवारान् न्यसेत्। ओ णमो अरहंताण णमो सिद्धाणं णमो आगा-समागीणं णमो विज्झायाणं णमो सव्वोसहिपत्ताण णमो सय बुद्धाणं णमो केवलिणे स्वाहा । इमा च। ओं अर्हन्मुखकमलवासिनि पापात्मक्षयंकरि श्रुतज्वालासहस्रप्रज्वलिते सरस्वति मम पापं हन हन क्षा क्षीं क्षु क्षौं क्ष क्षीरधवले अमृतसभवे व वं हू स्वाहा । शुचीकरणमंत्रौ । ततः सकलीकुर्यात् । ओं अं नमः सुहृदये, ओं सिं स्वाहा शिरासि, ओं आ वषट् शिखाया, ओ ओं घे घे कवचं, ओं सा-हूं फट् स्वाहा अस्त्र, ओं हौ वषट् नयनयो' । पुनः ओ ह्रा णमो अरहंताण स्वाहा हृदये, ओं ह्रीं णमो सिद्धाणं स्वाहा ललाटे, ओं ह्रू णमो आइरियाण स्वाहा शिरोदक्षिणे, ओं ह्रौ णमो उवज्झायाणं स्वाहा पश्चिमे, ओ ह्र' णमो लोए सव्वसाहूण स्वाहा वामे । पुनस्तान्येव पदानि ललाटे मूर्ध्नि दक्षिणे पश्चिमे वामे चेति न्यसेत् । सकलीकरणमत्र. । तत ।

ओं " उसहाइजिणं पणमामि सया अमलो विरजो वरकप्पतरू ।
सवकामदुहा मम रक्ख सदा पुरु विज्जणही पुरु विज्जणिही ॥ ६ ॥

"ओं" इत्यादि पहला मत्र बोलकर हृदय स्थानको स्पर्श करे । दूसरेसे मस्तकको, तीसरेसे चोटीको चौथेसे कवचको पांचवेंसे अस्त्रको और छठेमंत्रसे नेत्रोंको छुए । अथवा "ओ ह्री" इत्यादि पहले मंत्रसे हृदयका स्पर्श करे. दूसरेसे मस्तकका, तीसरेसे शिरके दाहिनी तरफका, चौथेसे पश्चिमकी तरफका, पांचवेसे बांई तरफका स्पर्श करे । इन्हीं पदोंको बोलकर मस्त-

ओं " अट्ठेव य अट्ठसया अट्ठसहस्सा य अट्ठकोडीओ।
रक्खंतु ते सरीरं देवासुरपणमिया सिद्धा ॥ ७ ॥ स्वाहा।

अनेन स्वस्यागप्रत्यंगपरामर्शः कार्यः। ततः ओं धनु धनु महाधनु। स्वाहा। इमां धनुर्विद्या वामकरांगुलिपर्वसु विन्यस्य प्रतिमाग्रे वामपादांगुष्ठेन सरेफाग्रपुरस्सरं धनुरालिख्य वामपादेनाक्रम्य कायोत्सर्गेण स्थितः सन् ओं णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं थभेइ जल जलण चिंतियमित्तेण पंचणमोकारो अरि मारि चोर राउल घोरुवसग्गं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः विणासेइ स्वाहा। इदं सप्तवारान् हृद्युच्चार्य अष्टोत्तरशतं धनुर्विद्यामावर्तयेत्। इति सकलीकरण विधानं। अथ **प्रतिष्ठा**।

करके दक्षिण पश्चिम और बांयें भागमे स्थापन करे ॥ यह सकलीकरण मंत्रकी क्रिया हुई। उसके बाद छठे सातवें दो श्लोकमंत्र पढकर अपने अंग उपांगोको छुए ॥ ६ ॥ ७ ॥ उसके पीछे "ओधनु" इत्यादि धनुषविद्याको बांये हाथकी उंगलियोंके पोरुओंमें स्थापनकर प्रतिमाके आगे बांयें पैरके अंगूठेसे रेफ सहित बाणयुक्त धनुषको लिखकर बांये पैरसे आच्छादितकर खड्गासनसे "ओं णमो" इत्यादि स्वाहा पर्यंत मंत्रको सातवार मनमें बोलकर एकसौ आठवार धनुषमंत्रको जपै। इसतरह सकलीकरण क्रियाका कथन किया। अब प्रतिष्ठा करनेकी विधि कहते हैं;—सकलीकरणादि कर्म करनेके बाद प्रतिष्ठाचार्य वेदीके पूर्वसिंहासनके

कृतकर्माधुनावेदीं प्रौच्यपठिाग्रभूतले । इह गंधांबुसंसेकसत्पुष्पप्रकारांचिते ॥ ८ ॥
भद्रासनं निवेश्यात्र विश्वकर्मसमक्षतः । गर्भावतारकल्याणं स्थापयापीदमर्हताम् ॥ ९ ॥

ओं मूलवेद्याः पूर्वस्या दिशि जयादिपीठस्य पुरस्ताद्भद्रासनं निवेशयामीति स्वाहा । भद्रासननिवेशनम् ।

वंशक्षायिकदृक्सामिद्धसुधियां योस्मिन्मनूनामभू-
द्ये चेक्ष्वाकुकुरुग्रनाथहरियुग्वंशाः पुरोवेधसा ।
आधानादिविधिप्रबंधमहिताः सृष्टास्तदुत्थार्यभू-
भर्तृस्वामिकजीविता सुकुलजा जैन्यो जयंत्यंबिकाः ॥ १० ॥

मृत्यादित्रयदृग्विशुद्धचनुगाचित्सत्कर्मणोआगम-
द्रव्यो गोतमगोत्रभागभिजनो नेमिस्तथा सुव्रतः ।
तद्वत्काश्यपगोत्रिणस्तदितरे णोकर्मनोआगम-
द्रव्योद्येष्वभवन स्वयं यदुदरेष्वंबाः प्रसीदंतु ताः ॥ ११ ॥

आगेकी जगहको गंधोदकसे छिडककर पुष्पोंको क्षेपण कर उस जगह पर कारीगरके सामने उत्तम सिंहासन रखे और "मैं अर्हत्प्रभुका गर्भकल्याणक स्थापन करता हूं" ऐसा कहै। उस समय "ओं मूल" इत्यादि मंत्र बोलना चाहिये ॥ ८ ॥ ९ "वंश" इत्यादि दो श्लोक बोलकर जिनमाताओंकी स्तुती करे ॥ १० ॥ ११ ॥ अब जिनमाताओंके नाम कहते है ;—

मरुदेवीं वृषस्यांबा विजयामजितस्य च । सुषेणां संभवेशस्य सिद्धार्थां नंदनप्रभोः ॥१२॥
सुमंगलाह्वां सुमतेः सुसीमां पद्मरोचिषः । वसुंधरां सुपार्श्वस्य लक्ष्मणां चंद्रलक्ष्मणः॥१३॥
रामां श्रीपुष्पदंतस्य सुनंदां शीतलार्हतः । विष्णुश्रियं श्रेयसश्च वासुपूज्यप्रभोर्जयाम् ॥१४॥
सुशर्मलक्ष्मीं विमलार्हतोऽनंतस्य सुव्रताम् । ऐरिणीं धर्मनाथस्य कमलां शांत्यधीशिनः १५
सुमित्रां कुंथुनाथस्य अरभर्तुः प्रभावतीम् । मल्लेः पद्मावतीं वप्रां सुव्रतस्य मुनीशिनः॥१६॥
विनतां नमिनाथस्य शिवां नेमिजिनेशिनः। देवदत्तां च पार्श्वस्य वीरस्य प्रियकारिणीम्॥१७॥
चतुर्विंशतिमप्येताः सवित्रीस्तीर्थकारिणाम् । स्थापयामीह तद्गर्भपवित्रितजगत्त्रयाः ॥ १८ ॥

ऋषभनाथकी मरुदेवी अजितकी विजया, संभव नाथकी सुषेणा, अभिनंदनकी सिद्धार्था, सुमतिजिनकी सुमंगला, पद्मप्रभकी सुसीमा, सुपार्श्वकी वसुंधरा, चंद्रप्रभकी लक्ष्मणा, पुष्पदंतकी रामा, शीतलनाथकी सुनंदा, श्रेयांसनाथकी विष्णुश्री और वासुपूज्य प्रभुकी जया है ॥ १२ ॥ ॥१३॥१४॥ विमलनाथकी सुशर्मलक्ष्मी, अनतनाथकी सुव्रता, धर्मनाथकी ऐरिणी, शांतिनाथकी कमला, कुंथुनाथकी सुमित्रा, अरनाथकी प्रभावती, मल्लिनाथकी पद्मावती, सुव्रतप्रभुकी देवदत्ता और महावीरप्रभुकी प्रियकारिणी—इन चौवीस जिनमाताओंकी स्थापना इस जगह करता हूं । इन्हींके गर्भसे तीन जगत पवित्र होता है । १५।१६।१७।१८ ॥ "ओं"

ॐ मरुदेव्यादिजिनेंद्रमातरोत्र सुप्रतिष्ठिता भवंत्विति स्वाहा । जिनमातृस्थापनार्थं भद्रपीठस्योपरि पुष्पाजलिं क्षिपेत् ।

षण्मासान् भुवमेष्यतां नवदिवश्चाजग्मुषामर्हतां
पित्रोः सौधमपीद्धमुत्सृजति या रैदो महेंद्राज्ञया ।
स्वर्णा गावधुतामरद्रुमफलासारभ्रमं कुर्वतीं
व्यक्तुं तामिह रत्नवृष्टिमुचितं मुंचामि पुष्पोच्चयम् ॥ १९ ॥

ओ धनाधिपते अर्हत्पितामौधे रत्नवृष्टि मुंच मुंचेति स्वाहा । कनकशलाका रत्नपंचकविमिश्रचित्रकुसुमाजलिं भद्रपीठस्याग्रत प्रकिरेत् । रत्नवृष्टिस्थापन ।

सर्वर्तुकामिवरवस्त्रफलप्रसूनशय्यासनाशनविलेपनमंडनानि ।
तत्तत्क्रियोपकरणानि तथेप्सितानि तीर्थेमशातुरुपदीकुरुतां धनेशः ॥ २० ॥

इत्यादि बोलकर जिनमाताओंकी स्थापनाके लिये सिंहासनके ऊपर पुष्पोंको क्षेपण करै । "षण्मासान्" इत्यादि तथा "ओं" इत्यादि बोलकर सोनेकी सलाई पांच तरहके रत्न—इनसे मिले हुए पुष्पोंको सिंहासनके आगे वखेरै । इस तरह रत्नवर्षाका स्थापन हुआ ॥ १९ ॥ "सर्वर्तु" इत्यादि तथा "ओं" इत्यादि बोलकर उत्तम कपड़े अंगूठी हार फल पत्र पुष्प आदिको सिंहासनके आगे रखे । इन सब वस्तुओंको शिल्पी ग्रहणकरे ॥ २० ॥ उसके बाद

ओं निधीश्वर जिनेश्वरमात्रे भोगोपभोगागान्युपनयोपनयेति स्वाहा । चारुवस्त्रमुद्रिकाहारफलपत्रपुष्पादिकं पीठाग्रे प्रतिष्ठयेत् । तच्च सर्वं विश्वकर्मा गृह्णीयात् ।

माताको सोलह स्वप्नोंका देखना। गर्जता हुआ सफेद ऐरावत हाथी १ बैल २ सिंह ३ देव हस्तियोंसे स्नान कराई गई लक्ष्मी ४ लटकतीं दो फूलोंकी मालायें ५ चांदनीयुक्त पूर्णचंद्रमा ६ ऊगता हुआ सूर्य ७ कमलोंसे ढके हुए सुवर्णमई कलशे ८ सरोवरमें क्रीडा करता मछलियोंका जोड़ा ९ दिव्य सरोवर १० चंचल लहरोंवाला समुद्र ११ रत्नजड़ा सिंहासन १२ मणियोंसे जटित विमान १३ नागेंद्रका भवन १४ प्रकाशमानरत्नोंकी राशि १५ धूमरहित जलती हुए अग्नि १६—ये सोलह स्वप्न हैं इनको देखकर माताको जगना । उसके बाद अपने पतिसे स्वप्नोंका फल सुनना । वह इस तरह है—पहले स्वप्नमें सफेद ऐरावत हाथी देखनेसे उत्तम पुत्रका होना, बैलके देखनेसे तीन लोकका गुरु होना, सिंह देखनेसे अनंत बलसहित होना, स्नान कराई गई लक्ष्मीके देखनेसे इंद्रोंकर सुमेरु पर्वतपर अभिषेक होना, पुष्पमाला देखनेसे धर्मतीर्थका प्रवर्तक होना, पूर्णचंद्रमा देखनेसे संसारको आनंदित करना, सूर्यके देखनेसे तेजस्वी होना, दो सुवर्णके घड़े देखनेसे रत्नादिकी खानिका स्वामी होना, मछलियोंका जोड़ा देखनेसे बहुत सुखी होना, सरोवर (तालाव) देखनेसे शुभलक्षणों सहित होना, समुद्रके देखनेसे केवलज्ञानी होना, सिंहासनके देखनेसे बड़े भारी राज्यका अधिकारी होना, विमान देखनेसे स्वर्गसे आकर जन्म होना, नागेंद्रका भवन देखनेसे अवधिज्ञानी

मंद्रं गर्जतमैन्द्रं द्विपमुडुपशयं तत्सगंधं गवेंद्रं
सिंहं शैलेन दंतं जलरुहि कमलां स्नाप्यमानां सुरेभैः ।
दाम्नी खे लंबमाने भ्रमदलिपटले चंद्रिकाकीर्णदिक
चद्रं प्रद्योतमर्कं सरसि झषयुगं क्रीडदन्योन्यरक्तम् ॥ २१ ॥
कुंभौ हेमौ सुधाद्यौ स्फुटकमलमुखौ छन्नमच्छाप्सरोब्जै-
श्चद्रत्नोर्मिमर्त्रि तडिदुचितमरुच्चापजिर्त्सिहपीठम् ।
कांत्यान्योन्यं हसंत्या सुरफणिमदने द्वा करै रंजयंतं
रत्नौघं प्रज्वलंत ज्वलनमपि निशातुर्ययामे द्विरष्टौ ॥ २२ ॥
स्वप्नान् दृष्ट्वा प्रबुद्धा झटिति घटितमुच्छृण्वती तूर्यनादान्
पत्युः प्रीतात्तदुक्त्या सुतनु सुतमिभस्ते स तादृग्महांतम् ।
ब्रूते विश्वाग्रिमं गौः करिकुलकषितानंतवीर्यं गमेंद्र-
मेरौ स्नाप्य द्विमालं वृषसमयकररश्मौः प्रजाह्लादहेतुम् ॥ २३ ॥
भास्वान् दीप्रं विशारिद्वयमतिसुखिन कुंभयुग्मं निधीशं
कासारो लक्ष्मसारं परविदमुदधिर्विष्टरं प्राज्यराज्यम् ।

होना, रत्नराशिके देखनेसे अनेक गुणोंका खजाना होना, निर्धूम अग्निके देखनेसे कर्मरूपी ईंधनका जलाना—ये स्वप्नोंको फल है ॥ २१ । २२ । २३ । २४ ॥ स्वप्नोंको देखना स्थापन

घरेतारं सुरौकः फणिगृहमवधिज्ञानिनं सद्गुणाब्धि
रत्नौघोहोऽम्ममग्निः स्तमितिविदितसतत्फलैषार्हदंबा ॥ २४ ॥

षोडश सत्पुष्पाणि तावंत्येव च सत्फलानि परिवर्त्य पीठाग्रतः स्थापयेत् । स्वप्नावलोकनस्थापनम् ।

श्री ह्री धृते कीर्तिमती च लक्ष्मि शांते च पुष्टे च सहैत्य जिष्णोः ।
आज्ञानियोगेन तथा स्वभक्त्या पित्रे निवेद्याचतदभ्यनुज्ञाः ॥ २५ ॥
विशोध्य गर्भं सुपवित्रदिव्यद्रव्यैर्यथास्थाननियोगमेनाम् ।
सुभक्त्या गूढमुपास्यमानां शच्या भजध्वं पुरुदिकुमार्यः ॥ २६ ॥

ओं दिक्कुमार्यो जिनमातरमुपेत्य परिचरत परिचरतेति स्वाहा । सद्वस्त्रालंकारा अष्टौ वरकुमारींमंगलताबूलहस्ताः संनिधाप्य पीठं परितः सकुंकुमरंजितपुष्पाक्षतं क्षिपेत् । गर्भशोधनपूर्ववादिक्कुमारीपरिचर्यास्थापनं ।

करनेकेलिये सोलह उत्तम पुष्पोंको तथा सोलह उत्तम फलोंको सिंहासनके आगे स्थापन करे । श्री ह्री धृति कीर्ति बुद्धि लक्ष्मी शांति पुष्टि—इन देवियोंकर गर्भ शोधन करना ॥ २५ । २६ ॥ आठ कुमारी कन्यायें स्वच्छ वस्त्र आभूषणोंको पहनके हाथमें फल आदि मंगलीक द्रव्य लेकर सिंहासनके पास आके केशर मिले हुए पुष्प अक्षतोंको क्षेपण करें । ग-

सर्वौषधिचंदनपंचमृद्भिर्विलिप्य तीर्थोदकपंचकेन ।
विशोध्य पीठं जिनमज्जगर्भे गर्भोपमेस्मिन्नवतारयामि ॥ २७ ॥

तामेव रहसि पुरा निरूपितप्रतिष्ठेयामर्हत्प्रतिमा नूतनसितनासितसद्वस्त्रप्रच्छादिता पुरस्सरटकिकाकरविश्वकर्मसौधर्मेन्द्रौ महोत्सवेनानीय मुविशुद्धभद्रासनगर्भपद्मे निवेशयेता ।

यो गगांबुसुरत्नपुष्पकृतभूपस्कारमिंद्रासन—
द्रकूपं प्रमदाकुलीकृतजगद्गर्भं प्रविश्योत्तमे ।
लब्धे वामातिरंजयन् रविरिह प्राची परानुग्रह-
ग्राहाद्यद्भूतिवर्द्धतेस्म सुदृशां सोऽयं जिनस्तन्मुदे ॥ २८ ॥

ओं णमोर्हते केवलिने परमयोगिने शुक्लध्यानाग्निनिर्दग्धकर्मेन्धनाय सौम्याय शाताय वरदाय

ह गर्भशोधन और दिकुमारियोंकी सेवाविधि स्थापन कीजाती है । सर्वौषधि चंदन आदिसे सिंहासनको पवित्र करके कारीगर और सौधर्मेंद्र दोनों उत्तम वस्त्रसे ढकी हुई प्रतिष्ठेय प्रतिमाको महान उच्छवके साथ लाकर शुद्ध सिंहासनके भीतर कमलपत्रमें स्थापित करें ॥ २७ ॥ उसके बाद " यो गंगां ' इत्यादि तथा " ओंणमो " इत्यादि बोलकर कुंकुसे रंगे हुए चमेलीके पुष्प तथा अक्षतोंको मूलनायक और दूसरी प्रतिमाओंके ऊपर क्षेपण करे ॥ २८ ॥ गर्भावतार विधि कहते हैं । "हक् " इत्यादि दो श्लोक बोलकर

अष्टादशदोषविवर्जिताय स्वाहा। जात्यकुंकुमपिंजरितजातिपुष्पाक्षतं तस्या अन्यासां च प्रतिष्ठेयमानानामुपरि क्षिपेत्। गर्भावतारण।

दृक्शुद्ध्यादिविशेषवद्धसुकृतस्कंधेग्रसर्गागिक-
स्फूर्जच्छुष्माणि विश्वकर्माणि निजव्यापारयोग्यं वपुः।
स्रष्टुमस्तभरास्त्रिबोधरुचिभागास्येन योकाब्दवद्
गर्भे मातुरिभाकृतिर्वसति वै सोत्रावतीर्णः प्रभुः॥ २९॥

इत्युक्त्वा प्रणतामहत्तरिकया निर्दिश्यमाना पृथक्
स्थानाख्यादिभिदा जिनेंद्रजननीमभ्यर्च्य नुत्वा स्फुटं।
नाथं पत्रमुदाभिनीय पितरं चापृच्छ्य जग्मुः पदं
स्वं शक्राः स जयत्ययं जिनपतेर्गर्भावतारोत्सवः॥ ३०॥

जिनमातृपूजनार्थं भद्रासनगर्भनिवेशितप्रतिमाग्रे पुष्पांजलिं क्षिपेत्।

अथेंद्रैः सिद्धचारित्रशांतिभक्तिभिरादरात्। गर्भावतारकल्याणक्रिया तत्यास सूरिभिः॥३१॥

जिनमाताके पूजनके लिये सिंहासन (भद्रासन) में स्थापित प्रतिमाके आगे पुष्पांजलि क्षेपण करे॥ २९।३०॥ उसके बाद वे इंद्र सिद्धभक्ति चारित्रभक्ति शांतिभक्ति—इन तीनोंको करके गर्भावतार कल्याणकी समाप्ति करें॥ ३१॥ इस तरह गर्भावतार कल्याणककी विधि

इति गर्भावतारकल्याणस्थापना । अथ जन्मकल्याणस्थापना ।

देवानां नमयन् शिरांसि समनास्याकंपयन्नासना-
न्यभ्रं निर्मलयन् सदिक्सुमनसो देवद्रुमैर्वर्षयन् ।
जन्यन् शीतसुगंधिमदमनिलं यः सिंधुमुद्वेल-
माधुन्वन् स धराधरां च निरगात् कुक्षेः शुभेऽह्नोषसः ॥ ३२ ॥

वस्त्रापनयनम् ।

किं तां सवित्रीमिह वर्णयामि किं चर्चये लग्नमथास्पदं तत् ।
यदेष देवो भुवनत्रयैकगुरुः स्वयं स्वप्रसवेधिचक्रे ॥ ३३ ॥
पुण्याहमद्याद्य मनोरथा नः पूर्णा जगंत्यद्य सनाथकानि ।
प्रमोदते कोद्य न चेतनोस्मिन्नृजेपि जन्मास्यमिद प्रपन्ने ॥ ३४ ॥

जिनजन्मस्थापनाय तस्या अन्यासा च प्रतिष्ठेयप्रतिमानामुपरि पुष्पाक्षत क्षिपेत् ।

पूर्ण हुई । अब जन्मकल्याणककी स्थापना कहते है । "देवानां" इत्यादि श्लोक पढकर वस्त्रको अलग कर देना ॥ ३२ ॥ "किं तां" इत्यादि दो श्लोक बोलकर जिन भगवानके जन्मकी स्थापना करनेके लिये मूलप्रतिमा तथा अन्य प्रतिष्ठेय प्रतिमाओंके ऊपर पुष्प अक्षतोंको क्षेपण करे ॥ ३३।३४ ॥ पसेवरहित शरीर १ मलरहित शरीर २ सम चतुरस्त्र

निःस्वेदत्वमनारतं विमलता संस्थानमाद्यं शुभं
तद्वत्संहननं भृशं सुरभिता सौरूप्यमुच्चैः परम् ।
सौलक्षण्यमनंतवीर्यमुदितिः पथ्याप्रियासृक्च यः
शुभ्रं चातिशया दशेह सहजाः संत्वर्हदंगानुगाः ॥ ३५ ॥

सनवव्यंजनशतैरष्टाग्रशतलक्षणैः । विचित्रं जगदानंदि यज्जिनांगं तदस्त्विदं ॥ ३६ ॥

महजदशातिशयस्थापनार्थं प्रतिमोपरि दशपुष्पीमावयेत् ।

भृंगाराब्दातपत्रोज्ज्वलचमररुहाण्युद्वहंत्योष्टशो या
द्वात्रिंशद्दिक्कुमार्यो जिनजनुषि भजंत्यंबिकायाश्चतस्रः ।

संस्थान ३ वज्रवृषभनाराच सहनन ४ सुगंधमय शरीर ५ अत्यंत सुंदर शरीर ६ शुभ एक हजार आठ लक्षणवाला शरीर ७ अतुल बल ८ हितमित वचन ९ दूधके समान सफेद लोहू १० ये दश अतिशय जन्मके साथ स्वभावसे ही उत्पन्न होते है ॥ ३५ ॥ जिनेंद्रका शरीर नौसौ व्यंजन और एकसौ आठ लक्षण सहित होता है वह यही है ॥ ३६ ॥ ऐसा कहकर स्वभावसे उत्पन्न दश अतिशयोंकी स्थापनाकेलिये प्रतिमाके ऊपर दस पुष्प रखे । "भृंगारा" इत्यादि तथा "ओं रुचक" इत्यादि कहकर भद्रासनपर विराजमान प्रतिमाके चारों तरफ कुंकुसे रंगे हुए पुष्प अक्षतोको वखेरै ॥३७॥ यह विजयादि देवताओंका सत्कार स्थापन

गेहं विद्युत्कुमार्यो रुचकवरनगाग्रास्पदा द्योतयंते
या चाष्टौ जातकर्मा दधाति तदनुगास्ताः स्फुरंत्वत्र धरन्याः ॥ ३७ ॥

ओं रुचकवरगिरींद्राशिखरानिवासिन्यो विजयादिदेव्यो यथास्वमर्हत्प्रभुमिहेदानीं परिचरंत्विति स्वाहा । पीठस्थप्रतिमा सर्वतः कुकुमराजितपुष्पाक्षत विकिरेत् । विजयादिदैवतोपास्तिस्थापनं ।

दिव्यद्रव्यविशुद्ध एव जवरे यो रत्नवृष्टिं क्षण—
प्रीतायाः पयसीव पव्यमवसन्मातुः स्वयं शुद्धिमान् ।
यन्नामापि विशुद्धयेस्ति जगतो ध्यायाति यं योगिन—
स्तस्याप्याकरशुद्धिमेष विधिरित्यातन्वतां देवताः ॥ ३८ ॥

आकरशुद्धिविधानख्यापनार्थं तीर्थोदकाप्लुतपुष्पाणि प्रतिमोपरि निदध्यात् ।

घंटासिंहासनकजलरुहां निःस्वनैरदेयोम्नै—
र्ज्ञात्वातुल्यजिनजनिमुपेत्योच्चकैः स्वस्वभूत्या ।

किया । " दिव्य " इत्यादि श्लोक पढकर आकरशुद्धिकी विधि दिखलनेकेलिए तीर्थ जलसे धोये हुए पुष्पोंको प्रतिमाके ऊपर क्षेपण करे ॥ ३८ ॥ " घंटा " इत्यादि श्लोक बोलकर इंद्र और यजमान आदिकोंके ऊपर उन अमुक नामवाले इंद्रादि भावोंको स्थापनके-लिए सौधर्म प्रतिष्ठाचार्य पुष्प और अक्षतोंको क्षेपण करे ॥ ३९ ॥ उसके बाद " अयं "

कल्पज्योतिर्वनभवनगीर्वाणनाथाः स्वयं यत्
तत्कल्याणं यधुगभिनयत्यत्रतं नाम तेमी ॥ ३९ ॥

इंद्रयजमानादिषु तत्तदिंद्रादिभावस्थापनाय सौधर्म पुष्पाक्षतं क्षिपेत् ।

अयं शच्या गुप्तं कृतवति नुतिं छद्मशयना--
न्निमील्यांबा मायातनयमुपहृत्यार्हति ते ।
समागत्यश्च्यादिव्रजमनुव्रजंत्याक्षिकरणीः
शिरो निधानाद्यैः सफलयति सद्रोभ्रगगजः ॥ ४० ॥

इंद्राण्या भद्रासनादुद्धृत्य समर्थमाणा प्रतिमा जय जयेति वदन् प्रणतिशिराः करकमलाभ्या गृहीत्वा सर्वसंघसमन्वित इमानि वृत्तानि पठन्नुत्तरवेदीं नीत्वा जन्माभिषेकोत्सवाय स्नपनपीठे निवेशयेत् ।

यः श्रीमदैरावणवाहनेन निवेशितोके विधृतातपत्रः ।
ईशानशक्रेण सनत्कुमारमाहेंद्रसच्चामरवीज्यमानः ॥ ४१ ॥

इत्यादि श्लोक बोलकर इंद्राणी भद्रासनसे प्रतिमाको उठाकर जय जय शब्द करती हुई मस्तक नवाकर हस्तकमलोंपर रखती हुई सब जनसंघके साथ आगे कहे जानेवाले श्लोकोंको पढती हुई उत्तर वेदीपर ले जाकर जन्माभिषेक उत्सव करनेके लिए स्नान करनेके आसनपर रखे ॥ ४० ॥ फिर " यः श्री " इत्यादि आठ श्लोकोको तथा " ओं ह्रीं " इत्यादिको

शच्यादिभिः श्र्यादिभिरप्युदारं देवीभिरात्तोज्ज्वलमंगलाभिः ।
पुरस्सरंतीभिरिवाप्सरोभिरग्रे नटंतीभिरुपास्यमानः ॥ ४२ ॥
शेषैस्तु शक्रैर्जय जीव नंद प्रसीद श्वश्वत्प्रतप क्षिपारीन् ।
इत्यादि वागुल्वणितप्रमोदैर्मुहुः प्रमृनैरुपहार्यमाणः ॥ ४३ ॥
सुरैः स्फुटास्फोटितगीतनृत्यवादित्रहास्योल्लुतवालितानि ।
समगलाशीर्धवलस्तुतीनि स्वैरं सृजद्भिः परिचार्यमाणा ॥ ४४ ॥
अहो प्रभावस्तपसां सुदूरमपि व्रजित्वा प्रतिमास्वपीक्ष्यः ।
यः सैष साक्षाद्ध्रुवमीक्षितोर्हन्नभेद्यनादिः स्वयमात्मबंधः ॥ ४५ ॥
सविस्मयानदामिति ब्रुवाणैरालोक्यमानोभिमुखागतैः खे ।
देवर्षिभिः स्पर्धितदेवयुग्मं नभोगयुग्मैरपि सेव्यमानः ॥ ४६ ॥
प्रदाक्षिणाध्ववव्रजनेन नीत्वा पूर्वोत्तरस्यां दिशि मेरुशृंगम् ।
निवेश्य तत्रस्यशिलोच्चपीठे क्षीरोदनीरैः स्नपितः सुरेन्द्रैः ॥ ४७ ॥
तं देवदेवं जिनमद्य जातं शय्यास्थितं लोकपितामहत्वम् ।
इम निवेश्योत्तरवेदिपीठे प्राग्वक्रमास्मिन् विधिनाभिषिंचे ॥ ४८ ॥

बोलकर पांडुकशिलाके ऊपर सिंहासनपर विराजमान करे ॥ ४१।४२।४३।४४।४५।४६।४७।४८ ॥ उसके बाद आकर शुद्धिके अभिषेक स्वरूप जन्माभिषेकको दिखलाते हैं । "रत्न"

ओं ह्रीं अर्हं श्रीधर्मतीर्थाधिनाथ भगवान्निह पाडुकाशिलापीठे तिष्ठ तिष्ठेति स्वाहा । उत्तरवेदिकास्नपनपीठे प्रतिमानिवेशनमंत्रः । अथातः आकरशुद्ध्यभिषेकरूपेण जन्माभिषेकमनुक्रमिष्यामः ।

रत्नस्वर्णमयोत्तरीयरसनासंव्यानमौलिप्रभै—
मेरुर्भाति वनैः सहस्ररहितं यो योजनान्युच्छ्रित ।
लक्षं सोयमियं च पांडुकशिला दीर्घा शतं स्फाटिकी
साष्टौ चार्धशतं तात्र सुरभिः श्रेष्टार्द्धचंद्राकृति ॥ ४९ ॥
सोत्रायं पृथुमंडपोद्युपकृतो देव्योर्धहस्ता इमा—
स्तास्तान्याप्सरसाममूनि नटितान्यास्येतता योजनम् ।
निम्नाश्चाष्ट सुरैः पयोर्णवजलैर्भृत्वार्णमाणा इमे
ते कुंभाः स जिनोऽयमस्मि स हरिस्तत्काप्यहो संभृतिः ॥ ५० ॥

अभिषेकप्रकरणसज्जीकरणाय समतात्पुष्पाक्षत विकिरेत् । प्रस्तावना । ओं ऋषभादीदिव्यदेहाय सद्योजाताय महाप्रज्ञाय अनतचतुष्टयाय परमसुखप्रातिष्ठिताय निर्मलाय स्वयभुवे अजरामरपदप्राप्ताय चतुर्मुखपरमेष्टिने अर्हते त्रैलोक्यनाथाय त्रैलोक्यपूज्याय अष्टदिव्यनागप्रपूजिताय देवाधिदे-

---

इत्यादि दो श्लोक कहकर अभिषेक आरंभकी तयारी करनेके लिये चारों तरफ पुष्प अक्षत वखेरे ॥ ४९।५० ॥ " ओं ऋषभा " इत्यादि " स्वाहा " तक मंत्र बोलकर प्रतिमाके अंग

वार्थ परमार्थसन्निहितोस्मि स्वाहा । अनेन प्रतिमाया अंगप्रत्यंगानि परमामृशन् सप्तवारानभिमंत्र्य सकलीं कुर्यात् । ततो दशापि लोकपालानावाहनादिविधिनोपचरेत् । तथाहि ।

इंद्रा मिश्राद्धदेवा शरपतिवरुणाधाररै देशनाग्रे षिण्णोशा दिक्षु वेद्या ? ॥५१॥

इंद्रादिदिक्पालानामावाहनादिपुरस्सराध्येषणाय समस्तहव्यद्रव्यं जुहोमीति स्वाहा ।

अथ पृथगिष्टिः ।

दिगीशाः शब्दये युष्मानायात सपरिच्छदाः । अत्रोपविशतैतान्वो यजे प्रत्येकमादरात् ॥५२॥

दिक्षु पुष्पाक्षत क्षिपेत् । अत्र रूप्याद्रिस्पर्द्धीत्यादि वृत्ताष्टक प्रागुक्तमेव वक्ष्यमाणमंत्रोपेत प्रयुंजीत । तथाहि ।

उपांगोको छूकर सातवार मंत्रितकर सकलीकरण क्रिया करे । उसके बाद दश लोकपालोंका आवाहन आदि विधिसे सत्कार करे । वह इस तरहसे है–“ इंद्रा ” इत्यादि तथा “ इंद्रादि ” बोलकर हवन करनेकी सामग्रीसे अवाहनादि पूर्वक इंद्रादिका सत्कार करे ॥ ५१ ॥ अब वेदीपूजा कहते हैं । “ दिगीशा ” इत्यादि श्लोक बोलकर दिशाओंमें पुष्प अक्षत क्षेपण करे ॥ ५२ ॥ यहांपर “ रूप्याद्रि ” इत्यादि पहले कहे हुए आठ श्लोकोंका मंत्र पूर्वक प्रयोग करे । वह इस प्रकार है । “ रूप्याद्रि ” इत्यादि तथा “ हे इंद्र ” इत्यादि

रूप्यादि .... ॥ ५३ ॥

हे इंद्र आगच्छागच्छ इंद्राय स्वाहा, इंद्रपरिजनाय स्वाहा, इंद्रानुचराय स्वाहा, अग्नये स्वाहा, अनिलाय स्वाहा, वरुणाय स्वाहा, सौमाय स्वाहा, प्रजापतये स्वाहा ओं स्वाहा भूः स्वाहा स्वः स्वाहा, ओं इंद्राय स्वगणपारिवृताय इदमर्घ्यं पाद्य गध पुष्प दीपं धूपं चरुं बलिं स्वस्तिकं यज्ञ-भाग च यजामहे प्रतिगृह्यता प्रतिगृह्यतामिति स्वाहा ।

रुक्मारु . . . ॥ ५४ ॥

हे अग्ने आगच्छागच्छ अग्नये स्वाहा.... .... ।

कल्पांताः . . ॥ ५५ ॥

हे यम आगच्छागच्छ यमाय स्वाहा .... ।

आरूढं . . . . ॥ ५६ ॥

हे नैऋत्य आगच्छागच्छ नैऋत्या स्वाहा .... ।

मंत्र बोलकर इंद्रको जल आदि अष्ट द्रव्य चढावे ॥ ५३ ॥ "रुक्मारु" इत्यादि तथा "हे अग्ने" इत्यादि बोलकर अग्निकुमारदेवोको जल आदि द्रव्य चढावे ॥ ५४ ॥ "कल्पांता" इत्यादि तथा "हे यम" इत्यादि बोलकर यमदेवको जल आदि चढावे ॥ ५५ ॥ "आरूढं" इत्यादि तथा "हे नैर्ऋत्य" इत्यादि बोलकर नैर्ऋत्य दिक्पालको अर्घ चढावे ॥ ५६ ॥

नित्यांभ ... . ॥ ५७ ॥

हे वरुण आगच्छागच्छ वरुणाय स्वाहा .. . . ।

वल्गच्छ.... .... ॥ ५८ ॥

हे पवन आगच्छागच्छा पवनाय स्वाहा.... .... ।

हंसौघे .... ॥ ५९ ॥

हे धनदागच्छागच्छ धनदाय स्वाहा . ... ।

साश्नावा. ... ... ॥ ६० ॥

हे ईशान आगच्छागच्छ ईशानाय स्वाहा . .... ।

वक्षौजस्तर्जिपृष्ठश्वसनसमतरः कूर्मराजाधिरूढं

क्षुद्रश्रीवेभकुंभाक्रमणचणसृणिस्फारणव्यग्रपाणिम् ।

"नित्यांभ" इत्यादि श्लोक तथा "हे वरुण" बोलकर वरुणको जल आदि द्रव्य चढावे ॥ ५७ ॥ "वल्गच्छं" इत्यादि तथा "हे पवन" इत्यादि बोलकर पवन कुमारको जल आदि द्रव्य चढावे ॥ ५८ ॥ "हंसौघे" इत्यादि तथा "हे धनद" इत्यादि बोलकर कुबेरको अर्घ चढावे ॥ ५९ ॥ "साश्नावा" इत्यादि तथा "हे ईशान" इत्यादि बोलकर ईशानको जलआदि आठ द्रव्य चढावे ॥ ६० ॥ "वक्षौज" इत्यादि तथा "हे धरणेंद्र"

सांश्लिष्टं दृक्सहस्राद्वितव्यघृणिफणारत्नरुक्प्रवाल-
भ्रमौघापीडमर्हंच्छ्रितपदि यमधीर्चामि पद्मासमेतम् ॥ ६१ ॥

हे धरणेंद्र आगच्छागच्छ धरणेंद्राय स्वाहा .. . ।

वैरिस्तंवेरमास्रोल्लसदरुणसटाटोपशुभ्रांगभीक्-—
द्वालेंदुस्पार्द्धिदंष्ट्रोत्क्रमखरनखरारक्तदृक् सिंहसंस्थम् ।
कुंताक्षं रोहिणीष्टं कुवलयसुमनः स्रक् श्रितां शंभयुक्तं
ज्योत्स्ना पीयूषवर्षं यज यजनपरं सोममर्घं महामि ॥ ६२ ॥

हे सोम आगच्छागच्छ सोमाय स्वाहा ... . ।

एवं सत्कृत्य दिक्पालानेभ्यो मंत्रैः पुनर्ददे । अप्कुंडे सप्तशः सप्तधान्यमुष्टिभिराहुतीः ॥६३॥

ओं आं क्रौं इंद्राय स्वाहा । अनेन जलपूर्णकुंडे सप्तमे सप्तधान्यमुष्टिभिरिंद्राहुतिं दद्यात् ।

इत्यादि बोलकर धरणेंद्रको अर्घ चढावे ॥ ६१ ॥ " वैरिस्तं " इत्यादि तथा " हे सोम " इत्यादि बोलकर सोम दिक्पालको जलआदि अष्ट द्रव्य चढावे ॥ ६२ ॥ " एवं " इत्यादि तथा " ओं आं " इत्यादि बोलकर जलसे भरे हुए कुंडमें सातवार सात धान्योंकी मुठी भरकर आहुतियां दे ॥ ६३ ॥ इसीतरह अग्नि आदिके कुंडमेंभी जानना। उसके बाद फिर

एवमन्याद्भ्योपि । अथ पुनस्तामेव प्रतिमां जिनमंत्रेण सप्तवारानभिमंत्र्याकरशुद्धिं विदध्यात् । जिन-मंत्रो यथा । ओं अर्हद्भ्यो नमः, पादानुसारिभ्यो नमः, कोष्ठबुद्धिभ्यो नमः, बीजबुद्धिभ्यो नमः । सावधानिभ्यो नमः, परमावधिभ्यो नमः, ओं ह्रौं वल्गु २ निवल्गु २ महाश्रवण । ओं ऋषभादिव-र्धमानेभ्यो वषट् वौषट् स्वाहा ॥ अथाभिषेकः ।

पूरं पूरमयस्तटावधिपय सिंधोपसृत्यामरै—
र्हस्ताहस्तिकयार्पितैर्गललुलन्मुक्ताफलस्रग्भरैः ।
श्रीखंडद्रवचर्चितैः परिदिनश्रीकर्मणा भर्मणात्
कृष्णैः साष्टसहस्रमानकलितैः कुंभैः सिताब्जाननैः ॥ ६४ ॥

आतोद्यध्वनिगीतमंगलरवैः सहर्षहर्षद्युतां
देवानां नटदप्सरोगणवपुः श्रीभिश्च कीर्णेंवरे ।
पार्श्वेन्द्रासनभासि पांडुकशिलासिंहासने प्राङ्मुखं
सौधर्मप्रमुखा निवेश्य जिनपं जन्मन्यसिंचत् किल ॥ ६५ ॥

उसी प्रतिमाको जिनमंत्रसे सातवार मंत्रित करके आकरशुद्धि करे । वह जिनमंत्र “ ओं अर्ह ” यहांसे लेकर “ स्वाहा ” तक है ॥ अब अभिषेक वर्णन करते हैं । “ पूरं ” इत्यादि तीन श्लोक पढकर कलशोंपर पुष्प अक्षत और जलको क्षेपण करे ॥६४।६५।६६ ॥ “गोवृषं”

धूलीपल्लवमंगलौषधिफलत्वग्मूलसर्वौषधी
संपृक्ताखिलतीर्थवारिसुभृतैर्मंत्रातिपूतैः कुटैः ।
अष्टाभिः स्वपदे स्थितं स्थिर मुदा वेद्यांचल चारु तद्
बिंबं चाकरशुद्धिसेचनमिदं तज्जातकर्मार्पये ॥ ६६ ॥

एतत्रयं पठित्वा कलशेषु पुष्पाक्षतोदकं क्षिपेत् ।

गोशृंदशृंगतो गजपतेर्दंतान्महातीर्थतः
शैलेंद्रा नृपतोरणादुरुसरित्तीराच्च पद्माकरात् ।
आनीताभिरुपस्कृतेन शुचिभिर्मृद्भिः सुतीर्थांभसा
पूर्णेन स्नपयामि हेमकलशेनार्च्यां जिनार्चां मुदा ॥ ६७ ॥

शिल्प्यादीन् संमान्य सूत्रधारेण धूलीकलशाभिषेकः । कुल्याभिषेकः ।

कुल्याभिः शुचिभिः सतोः स्वसुरपो पित्रोश्च पत्यात्मजैः
संयुक्ताभिरशल्पिकाभिरनिशं सक्ताभिरर्हन्मते ।

इत्यादि बोलकर कारीगर आदिका सत्कार करके शुद्धवालू आदिसे अभिषेक करे ॥ ६७ ॥ " कुल्याभिः " इत्यादि बोलकर उत्तम कुलकी स्त्रियोंसे प्रोक्षण (जलसे अभिषेक) करावे ॥ ६८ ॥ इन्हीं स्त्रियोंसे प्रतिष्ठा योग्य उवटना करावे । वेल, ऊमर, चंपा, आम, वकुल,

सिद्धार्थाक्षतसत्फलोद्गमनिशादूर्वादिमैत्रीधुघा
कांडमुखोद्धृतेन जिनपं संप्रोक्षयामि श्रियै ॥ ६८ ॥

प्रोक्षणकप्रणयनम् । एताभिरेव च स्त्रीभिः प्रतिष्ठायोग्यमूलादिवर्तनं कारयेत् ।

बिल्वोदुंबरचंपकाम्रबकुलन्यग्रोधनीपार्जुन—
प्लक्षाशोकपलाशपिप्पलदलप्रच्छादितश्रीमुखैः ।
पुण्याशोष्यसरित्तडागसरसीपूर्वोरुतीर्थांबुभिः
पूर्णैः पूर्णमनोरथैरिव कुटैः कुर्वे निषेकं विभोः ॥ ६९ ॥

ओं णमो अरहंताणं सव्वसरीरावच्छिदे महाभूप आय २ गिण्ह २ स्वाहा । एष मंत्र उत्तरत्रापि योज्यः । द्वादशपल्लवाभिषेकः ।

दूर्वापद्मकदनागुरुयवश्रीखंडबर्हिस्तिलै—
र्नंद्यावर्तकजातिकुंदकुसुमैः स्वर्णार्जुनव्रीहिभिः ।
भूम्यप्राप्तपवित्रगोमयनदीकूलोथमृद्रोचना—
सिद्धार्थैश्च समं भृतैः सुपयसा कुंभैः प्रभुं स्नापये ॥ ७० ॥

वड़, कदंब, अर्जुन, थाकर, अशोक, ढाक, पीपल इन बारह वृक्षोंके पत्तोंसे ढके हुए जलके कलशोंसे "ओं णमो" इत्यादि मंत्र बोलकर अभिषेक करे ॥ ६९ ॥ यह द्वादश पल्लवका

अष्टादशमंगलद्रव्याभिषेक. ।

श्यामाशमींदीवरभृंगविष्णुक्रांतागुडूची सह देविकाभिः ।
मिश्रैः पवित्रैः सलिलैः सुपूर्णैरौप्यैर्जिनार्चा स्नपयामि कुंभैः ॥ ७१ ॥

सप्तौषधस्नपनम् ।

लवंगभल्लातकबिल्वजातीफलाम्रकाम्रामलवारिपूर्णैः ।
शुभ्रैर्घटैरिष्टफलाभिहेतोः संस्नापये स्नातकनाथबिंबम् ॥ ७२ ॥

फलपंचकस्नपनम् ।

उदुम्बराश्वत्थशमीपलाशन्यग्रोधकल्कन्यतिकीर्णमर्णः ।
तैर्थं वहद्भिः कलशैर्वलक्षैर्भक्त्याभिषिंचामि जिनेंद्रमूर्तिम् ॥ ७३ ॥

अभिषेक हुआ । "दूर्वा" आदि बोलकर दूब आदि अठारह मंगलीक वस्तुओसे मिले हुए जलके घड़ोसे अभिषेक करे ॥ ७० ॥ यह मंगल द्रव्याभिषेक हुआ । "श्यामा" इत्यादि बोलकर उसमे कथित श्यामा आदि सात वनस्पतियोसे मिले हुए जलपूर्णकलशोंसे अभिषेक करे ॥ ७१ ॥ "लवंग" इत्यादि बोलकर उसमे कहे हुए लवंग, भल्लातक, वेल, जायफल, आम-इन पांच उत्तम फलोंसे मिश्रित निर्मल जलसे भरे हुए घड़ोंसे प्रतिमाका अभिषेक करे ॥ ७२ ॥ यह फलपंचक स्नपन हुआ ॥ "उदुंबरा" इत्यादि बोलकर उसमें कथित

छल्लिपंचकस्नपनम् ।

> व्याघ्री गुडूची सहदेवि सिंही वरी कुमारी शतमूलिकानाम् ।
> मूलैर्बलायाश्च युतेन सर्वैः कुंभांभसाहं स्नपये जिनार्चाम् ॥ ७४ ॥

दिव्यौषधिमूलाष्टकस्नपनम् ।

> कक्कूलैला जातिपत्रलवंगश्रीखंडोग्रा कुष्ठसिद्धार्थमध्या ।
> सर्वौषध्यावासितैस्तीर्थतोयैः कुंभोद्गीर्णैः स्नापयाम्यर्हदर्चाम् ॥ ७५ ॥

सर्वौषधिस्नपनम् । एव जन्माभिषेकस्थानीयमाकरशुद्ध्याभिषेक विधायानेन मन्त्रेण जिनार्चामधिवासयेत् । ओं णमो भयवदो वड्ढमाणस्स रिसहस्स जस्स चक्कुजलतं गच्छइ आयास पायालं लोयाण भूयाणं जूए वा विवादे वा रणागणे वा गयगणे वा थंभणे वा मोहणे वा सव्वजीवसत्ताणं अपराजिदो भवदु मे रक्ख रक्ख रक्ख स्वाहा । श्रीवर्धमानमंत्रः ।

ऊमर, पीपल, शमी, ढाक, वड़—इन पांचोंकी छालसे मिश्रित जलसे पूर्ण कलशोंसे स्नपन करे ॥ ७३ ॥ " व्याघ्री " इत्यादि बोलकर उसमें कथित व्याघ्री (एरंड) गिलोइ, आदि आठ उत्तम औषधियोंके मूलसे मिश्रित जलसे पूर्ण कलशोंसे अभिषेक करे ॥ ७४ ॥ " कक्कूलै " इत्यादि बोलकर उसमें कही गई औषधियोंसे मिश्रित जलसे पूर्ण कलशोंसे

यस्योन्मील्य निसर्गजे श्रवणयोर्वज्रेण रंध्रे हरिः
शश्वत्यासेचनकं वपुस्त्रिजगतां भक्त्याभिसंस्कारयेत् ।
त्रैवर्ण्योज्ज्वलसूत्रदृब्धयवमात्सिद्धार्थरत्नाश्रिय—
श्चर्चा चारुभुजेस्य भूषणमयं बध्नंतु ताः कंकणम् ॥ ७६ ॥

इद्रकरहीरककृतकर्णवेधादनंतर प्रोक्षणकाधिकृतनारीभिर्जात्यकुंकुमश्रीखंडागरुकर्पूरचर्चनपूर्वक दक्षिणभुजे षोडशाभरणात्मककंकणविधानम् ।

गृह्णंति यस्य समयामृतधौतचित्ता नामानि कोटिमृषयः कलुषक्षयाय ।
मेरौ महेंद्र इव संव्यवहारहेतोस्तं व्याहरहमिह यष्टमतेन नाम्ना ॥ ७७ ॥

अभिषेक करे । यह सर्वौषधिस्नपन विधि हुई ॥ ७५ ॥ इसीप्रकार जन्माभिषेकके स्थानरूप आकार शुद्धिका भी अभिषेक करके आगे कहे जानेवाले मंत्रसे जिन प्रतिमाका सस्कार करे ॥ " ओं णमो " इत्यादि " स्वाहा " तक श्रीवर्धमानमंत्र है । " यस्यो " इत्यादि बोलकर कर्णवेध करके स्त्रियोंसे केशर चंदन अगुरु कपूरकर लेप किये गये सोलह आभूषणोंके साथ दाहिनी भुजाकी तरफ कंकण बांधे ॥ ७६ ॥ " गृह्णंति " इत्यादि बोलकर प्रभुका नाम रखनेके लिये कुंकुमसे रंगे हुए पुष्प अक्षतोंको प्रतिमाके ऊपर क्षेपण करे ॥७७॥

नामकरणार्थं कुंकुमाक्तपुष्पाक्षतं प्रतिमोपरि क्षिपेत् । अथानदस्तवः ।

जय देव प्रसिद्धेन स्वनाम्ना गां पुनीहि मे । जय शुद्ध नय स्वांतं स्वभक्त्या मेऽनुरंजय ७८
जय दिव्यांगगात्राणि स्वनत्या मे कृतार्थय । जय तेजोनिधे स्वामिन् नेत्राब्जे मे विनिद्रय ७९
यद्दर्शनविशुद्ध्यादिभावना दैवतं विभो । तपस्तप्त्वा जगज्ज्योतिस्तज्ज्योतिस्ते तानिष्यति ८०
यात्वयह्ना हृतैः पुण्यैस्तद्रागद्वारसंगतैः । त्वयि प्रयुज्यते कोपाल्लक्ष्मीस्तान्येव हंति सा॥८१॥
सा चेयं च विभूतिस्ते कापीश जगतां दृशः। लब्धा विशुद्ध्या तद्वृद्ध्या स्वस्याहान्वयशुद्धताम्॥
भुंजानोऽभ्युदयं चार्हन् जनैर्भोगीव लक्ष्यते । बुधैर्योगीव तत्त्वं तु जानाति त्वादृगेव ते॥८३॥
नमस्तेऽचिंत्यचरित नमस्ते त्रिजगद्गुरो । नमस्ते त्रिजगन्नाथ नमस्तेत्यंतनिस्पृह ॥ ८४ ॥
नमस्ते केवलज्ञान नमस्ते केवलेक्षण । नमस्ते परमानंद नमस्तेऽनंतविक्रम ॥ ८५ ॥
एवमानंदतः स्तुत्वा शक्रः पूर्ववदादरात् । जन्माभिषेककल्याणक्रियां कृत्वा स्फुटं नटेत् ॥८६॥

उसके बाद आनंदस्तुतिका पाठ "जय देव" इत्यादिसे लेकर पचासीवें श्लोकतक पढे ॥७८॥ ७९।८०।८१।८२।८३।८४।८५॥ इसप्रकार वह इंद्र आनंदसे भक्तिपूर्वक स्तुतिकरके और जन्माभिषेक कल्याणकी क्रिया करके अच्छीतरह तांडवनृत्य करे ॥ ८६ ॥ यह जन्माभिषेककी

इति जन्माभिषेकविधानम् ।

अथोद्धृत्य निजस्कंधे तामर्हत्प्रतिमां मुदा । आरोप्य व्यंजयन्निंद्रस्तमैद्रं परमोत्सवम् ॥८७॥
संघेन महता युक्तः प्राप्य तां मूलवेदिकाम् । त्रिःपरीत्य पठन्मंत्रमिमं न्यस्येत्तदासने ॥८८॥

ओं " एतद्राजांगणं तत्सुरकृतसुषमं सिंहपीठं तदेतत्
देवोयं जातकर्मोद्यत इयममरीसेव्यमाना प्रबोध्य ।
देवी साचोपनीता प्रमदवरवशा सेवमानास्तथैते
देवाः सर्वेर्हतीमं परिक्रमयमेवेत्यमुं स्थापयेऽस्मिन् ॥ ८९ ॥

ओं नमोर्हते केवलिने परमयोगिने अनंतविशुद्धपरिणामपरिस्फुरच्छुक्लध्यानाग्निनिर्दग्धकर्मबीजाय प्राप्तानंतचतुष्टयाय सौम्याय शांताय मंगलाय वरदाय अष्टादशदोषरहिताय स्वाहा । मूलवेदीमध्यस्थापितभद्रासने प्रतिमानिवेशनमंत्रः । अथ जिनमातृस्नपनम् ।

विधि हुई । उसके बाद इंद्र उस अर्हत्प्रभुकी प्रतिमाको हर्षके साथ अपने कंधेपर रख परम उत्सवको दिखाता हुआ बहुत साधर्मियों सहित उस मूलवेदीमें लेजाकर तीन परिक्रमा देके इस आगे कहे जानेवाले मंत्रको पढता हुआ उस सिंहासन पर विराजमान करे ॥८७।८८॥ वह मंत्र " ओं एतद्रा " इत्यादि श्लोकसे लेकर स्वाहा तक है । इससे मूलवेदीके भद्रासनपर

अंब प्रसीद दृशमेषु चतुर्निकायगीर्वाणभर्तृषु निधेहि सनम्रवत्सु।
एतास्वपींद्रदयितासु ललाटघृष्टपादाग्रभूषु मुदमुल्बणयस्मितेन ॥ ९० ॥
नित्यश्रियेभ्युदयदुर्मदिनां त्वयीशे त्वज्ज्योतिरेतदपि नः परमक्तवत्याम्।
कर्मस्विहाभ्युदयिकेषु प्रतेति कोद्य प्राच्याशयोस्तमयपाक्युदयार्कसूतेः ॥९१॥
मग्नाः निमज्जंति जगंत्यमूनि मंक्ष्यंति वा मोहार्णवे कः।
इहोपगृह्णति भवादृशीदृक् सर्वज्ञबीजं यदि न प्रसूते ॥ ९२ ॥
त्वं कल्याणी त्रिभुवनजनन्येकसूरत्यासि त्वं
कीर्तिर्ज्योत्स्नां किरयति सदा क्षालयंती जगत्ते।
स्त्रीसर्गोग्रे गणयति शिवांगेष्वपि स्वं त्वमेव
त्वत्पूताः स्मो नियतमधुना विश्वमान्ये नमस्ते ॥ ९३ ॥
पीठिकाया कुंकुमाक्तकुसुमानि क्षिप्त्वा प्रणमेत्।

जिनदेवीं जिनाभ्यर्णां स्तुत्वा दिव्यांवरादिभिः। प्रसाद्यानंदनाट्येन स्वयं चाराध्य तं पुनः ९४

प्रतिमाको रखा जाता है ॥ ८९ ॥ अब जिनमाताके अभिषेककी विधि कहते हैं- "अंब प्रसीद" इत्यादिसे लेकर तिरानवै तक श्लोक बोलकर वेदीमें कुंकुमसे मिले हुए फूलोंको डालकर प्रणाम करे ॥९०।९१।९२।९३॥ उसके बाद जिनदेवीको उत्तम वस्त्रादिसे पूज तथा

रक्षायां तस्य दिग्नाथान् देवताः परिकर्मणि । भोगसंपादने श्रीदं क्रीडने शक्रपुत्रकान् ९५
अंगुष्ठे चामृतं स्तन्यलौल्यच्छेदाय वासवः । यद्वदस्थापयत्तद्वदर्चायां स्थापयाम्यहम् ॥९६॥

दिव्यवस्त्रगन्धभूषणस्वस्तिकशाल्यक्षीरान्नविचित्र-भक्ष्यपक्वान्नदुग्धदधिघृतशर्कराचारुपुष्पफलपत्र-दीपधूपादि भोज्यवस्तुजातं कांचनभाजने विरचय्य शिलाया निवेशयेत् ।

सिद्धयुद्वाह महोत्सुकोपि तदलंकर्माणकालाप्तये
निर्ग्रंथं परपर्वनृत्यविधिना धर्मेण शासद्धराम् ।
यः सम्राडिति लक्ष्यते त्रिजगतीनाथोसतीवेश्वरं
यो भक्तेति कुमार एव च भजन् भोगान्न्यसाम्यत्र तम् ॥ ९७ ॥

स्तुतिकर प्रभुकी रक्षाके लिये दिक्पालोंको, देवताओंको सेवाके लिये, भोगादि सामग्रीके लिये कुवेरको, खेलनेकेलिये इंद्रपुत्रोंको, दूध पीनेकी लालसाको दूर करनेकेलिये अंगूठेमें अमृतको जैसे पहले इंद्रने प्रभुके पास रखा था उसी तरह मैं भी इस प्रभुकी प्रतिमाके सामने स्थापित करता हूं ॥ ९४।९५।९६ ॥ ऐसा कहकर उत्तम वस्त्र सुगंधित पदार्थ आभूषण (गहने) सातिया खीर अनेक पक्वान्न दूध दही घी मिश्री उत्तम फूल फल पत्ते दीप धूप आदि भोगोंकी सामग्री सोंनेके पात्रमें रखकर शिलापर रखे । " सिद्धयु " इत्यादि बोलकर पुण्यके उदयसे प्राप्त राज्य संपदा आदि उपभोगोंकी स्थापना करनेके

पुण्यविपाकसंपादितसौराज्यसंपदुपभोगस्थापनाय कुंकुमारुणितपुष्पाणि प्रतिमोपरि विकिरेत् ।

एवं वैषयिकैः सुखैः सुरनराधीशामपि प्रार्थितैः
शश्वत्तीतमनाः सुराधिपनृपैः राज्ञार्थिभिः सेवितः ।
कालैकक्षपणीयमोहमहिमाव्याधृतिसंसूचक—
प्रेक्षातंकिततीर्थकृच्छिवरतोऽप्यास्ते द्वितीयाश्रमे ॥ ९८ ॥

देवोपनीतभोगोपभोगानुभवनाय प्रतिमोपरि पुष्पांजलिं क्षिपेत् । इति **जन्मकल्याणस्थापना** ॥ २ ॥ अथ निष्क्रमणकल्याणं ।

प्राप्ते सामज्वरवदणुता वृत्तमोहे विवेक—
ज्योतिष्युद्यत्यथ किमपि तत्कारणं वीक्ष्य मंक्षु ।
निर्विण्णोऽर्हन्समरससुधास्वादनौकः सहैत्य
प्रीत्यानत्य सततदुपधीनभ्यनंदत्सुरर्षीन् ॥ ९९ ॥

लिये केशरसे रंगे हुए पुष्पोंको प्रतिमाके ऊपर बखेरै ॥ ९७ ॥ " एवं " इत्यादि श्लोक बोलकर देवोंसे लाये गये भोग उपभोगोंका अनुभव दिखानेके लिये प्रतिमाके ऊपर पुष्पोंको क्षेपण करे ॥ ९८ ॥ इस प्रकार जन्मकल्याणकी स्थापना हुई ॥ (२) ॥ अब तपकल्याणकका वर्णन करते हैं । " प्राप्ते " इत्यादि श्लोक बोलकर शमसुखके एक स्वादी होनेकी स्थापनाके

प्रशमसुखैकरासिकत्वस्थापनार्थं जिनोपरि पुष्पाजलिं क्षिपेत् ।

विजयस्व जिनाधीश स्वयंभूरद्य खल्वसि । वक्ति स्वायंभुवं ज्योतिः शिवमस्थानमेव नः १००
दुग्धां कामामियं चित्तं सुद्रव्यादिचतुष्टयी । एनामेवेयमन्वेतु सुष्ठूस्साहोयमेधताम् ॥ १०१ ॥
कुंभतां तत्परं ज्योतिः प्रीयंतां प्राणिनोऽखिलाः । भव्यात्मानः प्रबुध्यंतां छिद्यंतां कर्मशृंखलाः
निर्मलोन्मुद्रितानंतशक्तिचेतयितृत्वतः । ज्ञानं निःसीमशर्मात्मन् विंदन् प्रतपत्पदे ॥ १०३ ॥
इमं विधिं नियोगेन साधर्मप्रणयेन वा । वाचालयेमहि कृत्ये तु त्वादृशो जाग्रयुः स्वयम् १०४
इति स्तुतो शिवोद्योगं लौकांतिकसुरैः सुरैः । कृतनिःक्रमकल्याणं स्थापयाम्यत्र तं प्रभुम् १०५

नि.क्रमणकल्याणोपक्रमस्थापनाय चदनालुलिनपुष्पाक्षतं प्रतिमोपरि क्षिपेत् ।

न्यग्रोधो मदगंधि सर्जमुशनश्यामे शिरीषोर्हता-
मेते ते किल नागसर्जजटिनः श्रीतिंदुकः पाटलः ।
जंब्वश्वत्थकपित्थनंदकविठाम्रावजुलश्चंपको
जीयासु बकुलोत्र वाशिकधवौ शालश्च दीक्षाद्रुमाः ॥ १०६ ॥

लिये भगवानके ऊपर पुष्पोंकी अंजालि क्षेपण करे । ९९ ॥ उसके वाद प्रभुके वैराग्य होनेके समय लौकांतिक देवोंकर " विजयस्व " इत्यादि छह श्लोकोंसे स्तुति करना । १००।१०१।१०२।१०३।१०४।१०५ ॥ फिर तपकल्याणका आरंभ स्थापन करनेके लिये चंदनसे मिश्रित

ओं णमो अरहताण जिनदीक्षावनवृक्षा अत्रावतरंत्विति स्वाहा । जिनदीक्षावनवृक्षस्थापनाय मूलवेद्या प्रत्याग्निवेशितायाः प्रतिष्ठेयमहाप्रतिमायाः पुरस्तात्पुष्पाणि प्रकिरेत् ।

कल्पांतार्णववीचिविभ्रमनिपानाक्रांतदिक प्रभुः
शक्रैरेत्य कृता स्तवादिकाविधिः स्वं वर्गमापृच्छ्यमा ।
त्यक्त्वा भूपखगामरोढशिविकामारुह्य गत्वा वनं
पर्यंकस्य उदग्मुखो नतशिवो वा प्राङ्मुखः प्रव्रजेत् ॥ १०७ ॥
सोयं मुक्तिपुरीं प्रयान् विजयतां स्तादस्य पंथाःशिवो
नंद्यादस्य मनो विशुद्धिरनिशं सैद्धा गुणाः पांत्वमुम् ।
क्रोधादिप्रतिरोधिनोस्य सुतपःशस्त्रैः पतंतु क्षताः
संतश्चैनमनारतं परिचरंत्वेतत्पदं प्रेप्सवः ॥ १०८ ॥

पुष्प अक्षतोको प्रतिमाके ऊपर क्षेपण करे । " न्यग्रोधो " इत्यादि तथा " ओं णमो " इत्यादि बोलकर भगवानके वड़ सप्तपर्ण आदि दीक्षावनवृक्ष स्थापन करनेकेलिये मूलवेदीके पश्चिमकी तरफ स्थापित प्रतिष्ठेय महाप्रतिमाके आगे पुष्पोंको क्षेपण करे ॥ १०६ ॥ " कल्पांता " इत्यादि श्लोक बोलकर मूलवेदीके सिंहासनसे प्रतिमाको उठाकर उत्तम पालकीमें वैठाकर महान उच्छवके साथ लेजाकर पहले स्थापनकिये गये दीक्षावन वृक्षके

एतत्पठन् मूलवेदीपीठात् प्रतिमामुत्क्षिप्य दिव्यशिविकामारोप्य महोत्सवेन नीत्वा पूर्वस्थापितदीक्षावनवृक्षतले निवेशयान्निमं मत्रं पठेत् । ओं नमो सिद्धाणं भगवान् स्वयमू रत्न सुनिविष्टो भवत्विति स्वाहा । अनेनैव मंत्रेण शेषप्रतिमास्वपि निष्क्रमणकल्याणस्थापनाय पुष्पाणि क्षिपेत् ।

स्वस्त्यस्मै वनशाखिने दृषदियं स्ताच्चांद्रकाती मुदे ।
ये दीक्षागमिनो व्यधान्नम इमान् राज्ञः समं दीक्षितान् ।
शक्रः सतुस्वधियोधिरत्नपटलौ प्रत्यग्रहीत्तत्कचा-
स्तीर्थेषु प्रतपत्वलं तदुपदा दुग्धोर्णवः पंचमः ॥ १०९ ॥
ममेदमहमस्येति मतिं भित्वार्हतोज्झिताः ।
पुनंतु विश्वस्रग्वस्त्रभूषाः संपूजिताः सुरैः ॥ ११० ॥

ओं नमो भगवतेर्हते सद्यः सामायिकप्रपन्नाय कंकणमपनयामीति स्वाहा । कंकणमपनीय दीक्षादिस्थापनाय प्रतिमादिषु पुष्पाणि क्षिपेत् । वनप्रस्थानप्रव्रज्याग्रहणादिस्थापनं ।

नीचे स्थापन करे और उस समय " ओं णमो " इत्यादि स्थापनमंत्र बोले ॥ १०७।१०८ ॥ इसी मंत्रसे अन्य प्रतिमाओंमें भी तपकल्याण स्थापन करनेकेलिये पुष्पोंको क्षेपण करे " स्वस्त्यस्मै " इत्यादि दो श्लोक तथा " ओ नमो " इत्यादि बोलकर कंकणादिको उतार कर दीक्षास्थापनकेलिये प्रतिमाके ऊपर पुष्पोंको क्षेपण करे । इस तरह वनमें जाना,

स्वामीसिद्धप्रभुगुणरतः सर्वसावद्ययोग-
व्यावृत्तात्मा स्खलितविभ्रुवस्तत्क्षणादुद्गतेन ।
तप्तं बोधत्रय इव मनःपर्ययेणोपगूढो
व्युत्कृष्टांगः स्वरसविलसद्भावनो देदिवीति ॥ १११ ॥

मतिश्रुतावधिमनःपर्ययाख्यसम्यग्ज्ञानचतुष्टयख्यापनाय चतुर्वर्तिदीपावतारणं विदध्यात् ।

अथेंद्राः सिद्धचारित्रयोगशांतीशभक्तिभिः। जिननिष्क्रमणकल्याणक्रियां कुर्युः ससूरयः११२

स्वं विंदन् स्वतया परंपरतया तीव्रैस्तपोभिर्भवान्
कृष्ट्वा पाकमवाप कृष्टव्यनिशं कर्मांशतः शातयन् ।
आकैवल्यपदाद्यथोत्तरविशुद्धयुद्ध्रियमानात्मवित्
सांद्रानंदरसं स्वयं पिवति यः सोयं जगत्त्रायताम् ॥ ११३ ॥

दीक्षा ग्रहण करना, केशलोच करना आर्यिका स्थापन हुआ ॥ १०९।११० ॥ "स्वामी" इत्यादि बोलकर मतिश्रुत अवधि मन:पर्यय—इन चार ज्ञानोंको वतलानेके लिये चार वत्तियोंवाला दीपक जलावे ॥ १११ ॥ उसके बाद वे इंद्र सिद्ध चारित्र शांति आदि भक्तिको करके भगवानके तपकल्याणकी क्रियाको करें ॥ ११२ ॥ "स्वं विंदन्" इत्यादि बोलकर

विशिष्टतपोनुष्ठानप्रतिष्ठार्थं प्रतिमोपरि पुष्पांजलिं क्षिपेत् ।

ततोर्चां तां पुनर्वेदीं नीत्वा ताभिः सहांजसा। ध्यानावतारितजिनां योजयेत् तिलकादिना ११४

एष क्रमश्चलार्चानां विस्तरेण प्ररूपितः। स्थिराणांतु यथास्थाने सर्वमेनं प्रकल्पयेत्॥११५॥

किंच—गर्भावतारादिविधिः समस्तं स्थानस्थिता चाल्याजिनेन्द्रबिंबे ।

संकल्प्य सिंहासनपादपीठमध्येस्य हैमीं निदधे शलाकाम् ॥ ११६ ॥

श्रीपादपीठसिंहपीठयोर्मध्ये सुवर्णशलाकानिवेशनम् । इति निःक्रमणकल्याणस्थापना ।

अथातस्तिलकदानविधान । तत्रादौ तावकल्याणपंचकरोपणमनुवर्णयिष्यामः ।

यद्गर्भावतरे गृहे जनयितुः प्रागेव शक्राज्ञया

षण्मासान्नव चानु रत्नकनकं वित्तेश्वरो वर्षति ।

विशेषतपस्या स्थापन करनेकेलिये प्रतिमाके ऊपर पुष्पांजलि क्षेपण करे ॥ ११३ ॥ उसके बाद उस प्रतिमाको वेदीपर लेजाकर तिलकादि क्रियासे युक्त करे ॥ ११४ ॥ यह क्रम चल प्रतिमाओंका विस्तारसे कहा गया है परंतु स्थिर प्रतिमाओंका उसी स्थान पर कल्पना करे ॥ ११५ ॥ “ गर्भाव ” इत्यादि बोलकर भद्रासनोंके मध्यमे सोंनेकी सलाई रक्खे। यह निष्क्रमण कल्याणकी स्थापना हुई ॥ ११६ ॥ अब तिलकदानविधि कहते हैं । उसमें सबसे पहले पांच कल्याणोंका स्थापन कहते हैं। जिस प्रभुके गर्भमें आनेके पहलेही छह

भत्युर्वी मणिगार्भिणी सुरसरिन्नीरोक्षिता षोडश-
स्वप्नेक्षामुदितां भजंति जननीं श्रीदिक्कुमार्योसि सः ॥ ११७ ॥
प्रच्छन्नं जननीमुपास्य शयनादानीय शच्यार्पितं
यं तत्वास चतुर्णिकायविबुधः श्रीमत्करींद्राश्रितः ।
सौधर्मांकनिवेशितं सुरगिरिं नीत्वाभिषिच्यावया
संयोज्योपचरत्यजस्रमसमैर्भोगैः स भास्येष नः ॥ ११८ ॥
किं कुर्वाण सुरेंद्ररुद्रविषयानंदाद्विरक्तस्तुतो
यो लौकांतिकनाकिभिः शिविकया निःक्रम्य गेहान्महैः ।
दिव्यैः सिद्धनतीद्वयावनतरुं पूत्वा परादीक्षया
भुंक्ते शुद्धनिजात्मसंविदमृतं स त्वं स्फुरस्येष नः ॥ ११९ ॥

महिने तथा आनेके वाद नौ महीने इस तरह पंद्रह महीने इंद्रकी आज्ञासे कुवेरने पिताके घर रत्न आदिकी वर्षा की तथा सोलह उत्तम स्वप्नोके देखनेसे हर्षित जिनमाताकी दिकुमारियां सेवा करती हुई ॥ ११७ ॥ जिसके जन्म कल्याणकमें इंद्राणीने माताको निद्रामें मग्न करके प्रभु वालकको लाकर इंद्रको सौंप दिया, फिर उसे ऐरावत हाथी-पर विठाके सुमेरु पर ले जाकर इन्द्रादिने अभिषेक किया, उसके वाद राज्यसंपदा आदि भोगोपभोगकी दिव्य सामग्रीसे शोभायमान हुए ॥ ११८ ॥ उसके वाद किसी

सम्यग्दृष्टिकुशाकुशव्रतशुभोत्साहेषु तिष्ठन् क्वचित्
धर्मध्यानबलादयत्नगलिताभायुस्त्रयः सप्त यः।
दृष्टि भप्रकृती समातपचतुर्जातित्रिनिद्रा द्विधा
श्वभ्रस्थावरसूक्ष्मतिर्यगुभयोद्योतान् कषायाष्टकम् ॥ १२० ॥

क्लैब्यं स्त्रैणमथादिमेन नवमे हास्यादिषट्कं नृतां
क्षित्वोर्दाचि पृथक्क्रुधादिदशमे लोभं कषायाष्टकं।
निद्रा सप्रचलामुपांत्यसमये दृग्धीप्रविघ्नाश्चतु-
र्द्विः पंच क्षिपते परेण चरमे शुक्लेन सोऽर्हन्नसि ॥ १२१ ॥

निमित्तको पाकर भोगोंसे वैराग्यरूप हुए, उससमय लौकांतिक देवोंने आकर स्तुति की फिर दिव्य पालकीमें वैठाकर वनमें लेगये वहां पर दीक्षावृक्षके नीचे वैठके प्रभुने सिद्धोंको नमस्कार कर आप ही दीक्षा धारण की, केशलौंच करके ध्यानमें मग्न शुद्ध निजस्वभावामृतका स्वाद लेते हुए। ऐसे प्रभु हमारे कल्याण कर्त्ता हो ॥ ११९ ॥ जिस प्रभुने धर्मध्यान और शुल्कध्यानके बलसे अनायासमें ही गुणस्थान क्रमसे कर्म प्रकृतियोंका क्षय किया। वह क्रम कर्मकांडमें विस्तारसे लिखाहुआ है। विस्तारके भयसे यहां नहीं लिखा। क्षयके क्रमसे चार घातिया कर्मोंका नाशकर केवलज्ञान आदि अनंतच-

द्रव्यं भावमथातिसूक्ष्ममधियन्युक्त्वा वितर्के स्फुर-
दर्थव्यंजनमंगगीरपि पृथक्त्वेनापि संक्रामता।
कर्मांशानव स्थितेन मनसा मोढार्भकोत्साहवत्
कुठेन द्रुमिवाणुशः परशुना छिंदन् यतिर्ध्यासि ॥ १२२ ॥
क्षुण्णे मोहरिपौ भजन्नुरुयथाख्यातादिराज्यश्रियं
शुद्धस्वात्मनि निर्विचारविकसत्पूर्वोदितार्थश्रुतः।
स्वच्छंदो छलदुत्कलोज्ज्वलचिदानंदैकभावो लस-
च्छेषारिव्रजवैभवः स्फुटमसि त्वं नाथ निर्ग्रंथराट् ॥ १२३ ॥
विश्वैश्वर्यविघातिघातिदितिजो छेदो गतानंतदृक्
संविद्वीर्यसुखात्मिका त्रिजगदाकीर्णे सदस्या स्थितः।
जीवन्मुक्तिमृषींद्रचक्रमहितस्तीर्थं चतुस्त्रिंशता
कुर्वाणोतिशयैः पुनात्यपि पशून् संमातिहार्याष्टकैः ॥ १२४ ॥

शुद्ध्य पाकर सयोगकेवली हुए। उससमय इंद्रने समवसरणकी रचना की। उसी समय चौंतीस अतिशय आठ प्रतिहार्य तथा पूर्वोक्त अनंतज्ञानादि चार—इसतरह छयालीस गुण मंडित हुए दिव्यध्वनिद्वारा तिर्यंचों आदि जीवोंका कल्याण करते हुए ॥ १२०। १२१।१२२ १२३। १२४ ॥ उसके बाद प्रभुने योगोंको रोककर शुक्लध्यानके बलसे मोक्षअवस्थाके

देवव्यक्तिविशेषसंव्यवहृतिव्यक्तपुल्लसल्लांछन-
श्रीमत्त्वत्क्रमपद्मयुग्मसततोपास्तौ नियुक्तं शुभैः ।
यक्षद्वंद्वमवश्यमेतदुचितैः प्राच्यैरिदानींतनै-
र्देवेंद्रैरपि मान्यते शिवमुदोऽप्येष्यद्भिरीशिष्यते ॥ १२५ ॥

द्वौ गंधौ रसवर्णबंधनवपुः घातकान पंचशः
षट् षट् संहननाकृतीः शुभगतिः स्वस्वानुपूर्व्याशुभे ।
खव्रज्ये परघातकागुरुलघूच्छ्वासोपघाता यशो
नादेयं शुभसुस्वरस्थिरयुगैः स्पर्शाष्टकं निर्मितम् ॥ १२६ ॥

ऽप्यांगोपांगमपूर्णदुर्भगयुगं प्रत्येक नीचैः कुले
वेद्यं चान्यतरद्विसप्ततिमुपांत्ये भूरयोगं क्षणे ।
आदेयं सनिजानुपूर्व्यनृगतिं पंचाक्षयोतिंशयः
पर्याप्तत्रसबादराणि सुभगं मर्त्यायुरुच्चैः कुलम् ॥ १२७ ॥

अंतके दो समयोंमेंसे पहले समयमें पचासी कर्म प्रकृतियोंमेंसे बहत्तर प्रकृतियोंका क्षय किया और अंतसमयमें अवशेष तेरह प्रकृतियोंका नाशकर कर्मोंसे मुक्त हुए तीनलोकके शिखरपर जा बिराजे ॥ १२५ । १२६ । १२७ । १२८ । १२९ ॥ इसप्रकार पूर्वोक्त श्लोकोंको

वेधेनान्यतरेण तीर्थकुमार अष्टादशाब्यंतिमे

निष्कृत्यमकृतरिनुत्तरसमुच्छिन्नक्रियध्यानतः ।

यः प्राप्तो जगदग्रमेकसमयेनोर्ध्वंगमात्माष्टभिः

सम्यक्त्वादिगुणैर्विभाति स भवानत्रार्थितोचर्याज्जगत् ॥ १२८ ॥

मुक्तिश्रीपरिरंभनिर्भरचिदानन्देन येनोज्झितं

देहं द्राक स्वयमस्तसंहतितडिद्दामेव मायामयम् ।

कृत्वाग्नींद्रकिरीटपावकयुतैः श्रीचन्दनाद्यैर्मुदा

संस्कृत्याभ्युपयंति भस्म भुवनाधीशाः स जीयात् प्रभुः ॥ १२९ ॥

एतत्पठित्वा प्रतिमोपरि पुष्पांजलिमार्पयेत् । इति कल्याणपंचकारोपणविधानं । अथ संस्कार-मालाविरोपणम्।

न्यस्यामथेह विंबेष्ट चत्वारिंशतमर्हतः । संस्कारान् दृष्टिलाभादिशिवांतपदगोचरान्॥१३०॥

पढ़कर प्रतिमाके ऊपर पुष्पोंकी अंजलि क्षेपण करे। यह कल्याणपंचककी आरोपणाविधि हुई । अब संस्कारमालाकी आरोपण विधि कहते हैं। "न्यस्या" इत्यादि श्लोक बोलकर सम्यग्दर्शनप्राप्तिके संस्कारसे लेकर मोक्षप्राप्तितक संस्कार स्थापनेकी प्रतिज्ञा करे ॥ १३० ॥

सद्दर्शनस्य संस्कारः स्फुरत्वयमिहार्हति । संज्ञानस्यैव सद्वृत्तस्यैष सत्तपसोप्ययम्॥१३१॥
एष वीर्यचतुष्कस्य मात्रष्टतयमंडले । प्रवेशस्यायमेषोष्टशुद्ध्यवष्टंभनिष्ठिते ॥ १३२ ॥
परीषहजयस्यायं त्रियोगासंयमच्युतेः । शीलमस्यायमेष त्रिकरणासंयमारतेः ॥ १३३ ॥
अयं दशा संयमोपरमस्यैषोक्षनिर्जितेः । अयं संज्ञानिग्रहस्य दशधर्मधृतेरयम् ॥ १३४ ॥
अष्टादशसहस्राणां शीलानामयमेषकः । चतुरभ्यधिकाशीतिगुणलक्षसमाश्रयः ॥ १३५ ॥
विशिष्टधर्मध्यानस्य अयमेषोतिशायिनः । अप्रमत्तयमस्यायं सुदृढश्रुततेजसः ॥ १३६ ॥
अकंपप्रकरणश्रेण्यारोहणस्यामुकोसकौ । अनंतगुणशुद्धेश्चाप्याप्रवृत्तकृतेरयम् ॥ १३७ ॥
अयं पृथक्त्ववीतर्कवीचारप्रणिधेरयम् । अपूर्वकरणस्यैषो निवृत्तिकरणस्य च ॥ १३८ ॥
बादराणां कषायाणामय किट्टिकृतेरयम् । सूक्ष्माणामेष पूर्वेषां किट्टिनिर्लेपनस्य च॥१३९॥
एषोन्येषामयं सूक्ष्मकषायचरणस्य च । प्रक्षीणमोहनस्यायं यथाख्यातविधेरयम् ॥ १४० ॥
अयमेकत्ववीतर्कवीचारध्यानभूरयम् । घातिघातस्य कैवल्यज्ञानदृष्ट्युद्यतेरयम् ॥ १४१ ॥
तीर्थप्रवर्तनस्यायमेष सूक्ष्मक्रियस्य च । शैलेशीकरणस्यायं परसंवरवर्त्यसौ ॥ १४२ ॥
योगकिट्टिकृतेरेष तन्निर्लेपनगाम्यसौ समुच्छिन्नक्रियस्यायं श्रितोयं निर्जरां पराम् ॥१४३॥

"सद्दर्शन" इत्यादि एकसौ पैंतालीस तक श्लोक बोलकर अभिप्राय मनमें धारण करके प्रतिमाके ऊपर पुष्पांजली क्षेपण करे ॥ १३१ से १४५ ॥ इसप्रकार अडतालीस संस्कारोंकी

सर्वकर्मक्षयस्यायमनादिभवपर्ययः । विनाशस्याशुकोनंतसिद्धत्वादिगतेरयम् ॥ १४४ ॥
आदेयसहजज्ञानोपयोगैश्वर्यचार्यसौ । एष देहसाहात्येक्षोपयोगैश्वर्यगोचरः ॥ १४५ ॥

एतदर्घारोपणपरायणांतःकरणः पठित्वा प्रतिमोपरि पुष्पांजलिं क्षिपेत् । इत्यष्टचत्वारिंशत्संस्कारमालारोपणविधानम् । अथ मंत्रन्यासविधानम् ।

विश्वोद्भासि परब्रह्मव्यंजकं स्यात्पदांकितम्। शब्दब्रह्मेति मंत्रालीं न्यस्यामीह जिनेशिनः१४६

मंत्रन्यासप्रतिज्ञानाय प्रतिमोपरि पुष्पांजलिं क्षिपेत् ।

भालनेत्रश्रवोनासाकपोलरदपंक्तिषु । स्कंधयोर्मूर्ध्नि जिह्वाग्रे ओंमायार्ह रमोक्षरान् ॥ १४७॥

स्थापनाका विधान हुआ । अब मंत्रन्यास विधि कहते हैं—मैं स्यात्पदसे चिन्हित, जगतका प्रकाशक और परब्रह्मको कहनेवाले ऐसे शब्दब्रह्म इस मंत्रको अर्थात् ब्रह्म नामको जिनेश्वरमे स्थापित करता हूं ऐसा कहकर मंत्रन्यासकी प्रतिज्ञा प्रगट करनेकेलिये प्रतिमाके ऊपर पुष्पोंकी अंजलि चढावे ॥ १४६ ॥

उसके बाद "भाल" इत्यादि चार श्लोक बोलकर ओं ह्रीं अर्हं श्रींपूर्वक अकारादि वर्णोंको शरदऋतुके निर्मल चंद्रमाके समान चिंतवन करे तथा प्रतिष्ठेय प्रतिमामें हाथसे स्थापन करे। वह इसतरह हैं—"ओं" इत्यादिको ललाटमें दाहिनी बांई तरफ स्थापन करे, इसीप्रकार 'इई' को नेत्रोंमें, उऊको कानोमें, ऋॠ को नाकमें, ऌॡको गालोंपर, एऐ को दांतोंमें, ओ औ को कंधेके दोनों भागोंमें, अं को मस्तकमें, अःको जीभके अगाड़ीके भागपर, कवर्गको दाहिनी

स्वरान् द्विशः पृथक्कद्वद्वाक्षोर्दक्षिणवामयोः। कचवर्गौ तथा कुक्ष्येष्टतवर्गौ पृथक् पफौ ॥ १४८ ॥
ऊर्वोर्बं गुह्यके नाभ्यां भं मं मांसलतापदे । देहे य मूर्ध्नि रं लं पृष्टेथिसंधि वं ॥ १४९ ॥
शं जानुनोर्गुल्फयोः षं पादयोः सनिवेश्य हं। सर्वप्राणपदे साक्षाज्जिनमेषोवतारये॥ १५० ॥

ओं ह्रीं अर्हं श्रीं एतत्पूर्वकानकारादिवर्णान शरच्चंद्रगौरान् यथोक्तस्थानेषु मनसा ध्यात्वा प्रतिष्ठेयप्रतिमासु करेण विन्यसेत् । तथाहि । ओं ह्रीं अर्हं श्रीं अ आ ललाटे दक्षिणतः प्रभृति न्यसेत्, ओं ह्रीं अर्हं श्रीं इई दक्षिणेतरनेत्रयोः । एवं सर्वत्र । उऊ कर्णयोः ऋ ॠ नासापुटयोः, ऌ ॡ गंडयोः, ए ऐ ऊर्ध्वाधो दंतपंक्त्योः, ओ औ स्कंधयोः, अं मस्तके, अः जिह्वाग्रे, क ख ग घ ङ दक्षिणभुजे, च छ ज झ ञ वामभुजे, ट ठ ड ढ ण दक्षिणकुक्षौ, त थ द ध न वामकुक्षौ, प दक्षिणोरौ, फ वामोरौ, ब गुह्ये, भ नाभिमंडले, म स्फिजोः, य शरीरस्थाने उदरे, र ऊर्ध्वरोमाचे मस्तकादिकेशेष्वित्यर्थः, ल पृष्टे, व ग्रीवाकक्षादिसंधिषु, श जानुयुग्मे, ष गुल्फमूलयोः, स पदयोः, ह सर्वप्राणस्थाने हृदये । इति मंत्रन्यासविधानं । अथ प्रतिष्ठातिलकदानं ।

भुजामें, चवर्गको बांई बांहमें, टवर्गको दाहिनी कूखमें, तवर्गको बांई कूखमें, प दाहिनी जांघमें, फ बांई जांघमें, ब गुह्यस्थानमें भ नाभिस्थानमें, म चूतड़ोंमें, य उदरमें, र शिरके केशोंमें, ल पीठमें, व गले कांख आदिकी संधिओंमे, श घुटनोंमें, ष पैरोंमें, हकारको हृदयस्थानमें, स्थापन करे ॥ १४७ । १४८ । १४९ । १५०॥ यह मंत्रन्यास विधि हुई । अब प्रति-

प्रीत्यै पिंगा प्रियंगूफलमचिरफलं मंगलार्थं दधि स्यात्
सिद्धार्था वांछितार्थान् ददति सुमनस सौमनस्यं महायुः ।
दूर्वा श्रीखंडलोहप्रभृतिसुरभितामृद्धिमृद्धिश्च वृद्धि
वृद्धिः शैत्यं तुषारो क्षतविशदयशांस्यक्षताश्चेत्यमीभिः ॥ १५१ ॥
शुच्या कौसुंभवस्त्राभरणघुसृणसन्माल्यभाजा चतुष्के
तिष्ठत्या भर्तृवस्त्रांचलयुतवसनप्रांतया यब्दपत्न्या ।
कोणोद्भासि प्रदीपामलजलपविताभ्यर्चितायां शिलायां
पिष्टैर्दत्वा गुडादीस्तिलकयतु कृताव्राहनादिर्जिनार्चाम् ॥ १५२ ॥

चत्वारि मंगलं स्वाहेत्यंतेन प्रणवादिना । प्रियंगुः स्थापकैर्जप्त्वा धार्या हैमादिपात्रगा ॥१५३

तिलकद्रव्यमङ्गीकरणं । अत्र स्थापनानिक्षेपेण यमाश्रित्यावाहनादिमत्रा कथ्यते तद्यथा । ओं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असिआउसा एहि २ संवौषट् आवाहनं, ओं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असि आउसा तिष्ठ २ ठ ठ स्थापनं, ओं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असिआउसा अत्र सन्निहितो भव २ वषट् सन्निधीकरणं

श्चातिलकदानकी विधि कहते हैं ॥ हरताल आदि तिलक द्रव्य सोनेके पात्रमें रखकर "सि-द्धार्था" इत्यादि तीन श्लोक तथा "ओं" इत्यादिसे आवाहनादि करके जिन प्रतिमामें तिलक लगावे अथवा उसके आगे तिलक द्रव्य चढावे ॥ १५१ ।१५२। १५३ ॥ इसप्रकार वह इंद्र

कृत्वैवं कर्म शक्रोर्चां पूरं ण जिनं स्मरन् । सुलग्ने रेचकेनांतः प्रियां वा तत्पदं न्यसेत् ॥ १५४ ॥

तिलकमंत्रः । इति तिलकदानविधान । अथाधिवासनाविधान ।

गंधाक्षतस्रग्वस्त्रान्नयवाल्ंकगेषुभिः । चरुधूपारार्तिकफलैर्विरूढकयवारकैः ॥ १५५ ॥

सवर्णपूरेक्षुवलिवार्तिभृगारकैरिमैः । मंत्राभिमंत्रितैश्चित्तैः सार्धस्वस्त्ययनैः क्रमात् ॥ १५६ ॥

एष निष्पतिघो देव्यत्केवलज्ञानोनर्वृतिम् । प्रतिष्ठितमहार्चायां जिनेंद्रमधिवासये ॥ १५७ ॥

स्वासन्नीकृतचदनाद्यधिवासनद्रव्येषु पुष्पाक्षत प्रक्षिप्य तत्कालप्रतिष्ठिताहत्प्रतिमा नमस्कुर्यात् ।

कर्पूरगकलवंग एला कररंवितं चंदनौघैः ।

दूरं स्फुरत्परिमलैर्जिनभर्तुराराात् विद्राणसौरभमदैरपि चर्चयेंघ्रीन् ॥ १५८ ॥

ॐ नमोर्हते सर्वशरीरावस्थिताय पृथु २ गध २ गृहाण स्वाहा ।

पूरक प्राणायामसे जिनेन्द्र देवका स्मरण करता हुआ रेचक प्राणायामसे चरणकमलोंमें तिलकद्रव्य चढावे ॥ १५४ ॥ यह तिलकदान विधि हुई । अब अधिवासनाविधि कहते हैं— केवलज्ञान कल्याणसे प्रतिष्ठित हुई महान् अर्हत प्रतिमामें अर्हत्प्रभुको स्थापित करके चंदन अक्षत आदिसे पूजा करे ॥ १५५ । १५६ । १५७ ॥ वह पूजा इसप्रकारसे है–पहले आवाहन- नादि करके पुष्प अक्षत क्षेपण करे । फिर "कर्पूर" इत्यादि श्लोक तथा "ओं नमो" इत्यादि बोलकर चंदन चढावे ॥ १५८ ॥ " शुंभत " इत्यादि तथा " ओ " इत्यादि बोलकर अक्षत

शुंभच्छारदपार्विकेंदुसुहृदामामोदनर्मोल्वण-
घ्राणप्राणितचेतसां द्युतटिनीतोयाभिषिक्तात्मनाम् ।
अच्छेदार्जितसाधुशीलयशसां शाल्यक्षतानां चयै-
राचारैरिव पंचभिः सुरचनैरर्हत्पदाब्जे यजे ॥ १५९ ॥

ओं नमोर्हते सर्वशरीरावस्थिताय पृथु २ अक्षतानि गृहाण २ स्वाहा ।

सौरभ्यसांद्रमकरंदपरागजाती मंदारमल्लिकमलादिमयेन दाम्ना ।
कल्याणपंचकरुचिं शरपंचकेन प्रव्यजता जिनपते रचयामि पूजाम् ॥ १६० ॥

ओं नमोर्हते जय सर्वतो मेदिनीपुष्प वरपुष्पाणि गृहाण २ स्वाहा । पचशरमालारोपणम् ।

जल्पच्छुक्तया परां विमलतां तात्कालिकीं लभ्यतां
नव्यत्वेन लसद्दशापरिचयेनोत्कर्षपर्याप्तता ।
माहार्घेण महर्घतां च परमध्यानस्य दुर्लक्ष्यतां
सूक्ष्मत्वेन ददे जिनस्य वदने वस्त्रं प्रनष्टावृते ॥ १६१ ॥

चढावे ॥ १५९ ॥ "सौरभ्य" इत्यादि तथा "ओं" इत्यादि बोलकर पुष्प चढावे ॥ १६० ॥
"जल्प" इत्यादि दो श्लोक तथा "ओं नमो" इत्यादि बोलकर वस्त्र और जौमाला सहित सात

भक्तर्द्धिवृद्धिकृदनुक्षणभाविशर्म सम्यक् फलामितगुणावलिमुद्गिरंत्या ।
रावर्द्धिवृद्धियवमालिकयार्चितोर्हन् गां सप्तधान्यकमदोर्हतु सप्तभंगी ॥ १६२ ॥

ओं नमोर्हते सर्वशरीरावस्थिताय समदनफलं सर्वधान्ययुतं मुखवस्त्रं ददामि स्वाहा । मुखवस्त्र-दानपूर्वकं यवमालामारोप्य जिनस्य पादाग्रतः सप्तधान्यान्युपहरेत् ।

सूत्रे रूप्यमयेथ पट्टरचिते प्रोतं विविक्तात्मचि-
द्दीव्यद्दर्शनबोधवृत्तककुदं रत्नत्रयं स्वात्म यत् ।
रागात् क्षिप्तवरस्रजः शिवरमासंगोत्सुकस्य प्रभोः
जीवनमुक्तिरमाविवाहविधये बध्नाम्यदः कंकणम् ॥ १६३ ॥

ओं " अट्ठविहकम्ममुत्तो तिलोयपुज्जो य संथुओ भयवं । अमरणरणाहमहिओ अणाइणि हणो सिव दिसओ " स्वाहा । कंकणबंधनम् ।

पंचोन्मादनमोहने स्मृतिभुवः संतापनं शोषणं
बाणान् मारणमप्यपार्थितवत चत्वारि विघ्नच्छिदे ।

अनाजोंको भगवानके चरणकमलोके आगे चढावे ॥ १६१ । १६२ ॥ "सूत्रे" इत्यादि तथा "ओं" इत्यादि बोलकर कंकणबंधन करे ॥ १६३ ॥ 'पंचो' इत्यादि बोलकर धनुषका स्था-

शुक्लध्यानविकल्पना निवसनप्रांतेषु कांडान्यमू-
न्युद्यत्पंचमभूस्वते जिन फलान्यारोपयाम्यर्हतः ॥ १६४ ॥

काण्डस्थापनमंत्रः ।

प्राज्याज्यं परमान्नमुत्कटसितं पक्वान्नवर्गं वर-
भक्षानक्षसुखान् शशांककिरणप्रष्ठान समं शालनैः ।
शाल्यन्नं सुरसैः सुगंधिविशदं पेयं पयःपूर्वकं
साम्नाय्यं कनकादिपात्रविततं श्रीरोचिभर्त्रे ददे ॥ १६५ ॥

ओं नमोऽर्हते सहभूतायानतसुखतृप्तायाग्रे चरु विस्तारयामि स्वाहा ।

धूपैर्यौगिकगंधसारविधिद्रव्याव्यायविर्भवत्
सौरभ्यातिशयैः शिखिव्यतिकराद्धूमायमानैर्मुहुः ।
सद्ध्यानानलदह्यमानतनुकैरिवाधिष्ठित-
क्रोडान् साधुजनाशयान् प्रतिदिशं न्यस्यामि कुंभान् प्रभोः ॥ १६६ ॥

पन करे ॥ १६४ ॥ "प्राज्य" इत्यादि तथा "ओं" इत्यादि बोलकर नैवेद्य (पक्वान्न) चढावे ॥ १६५ ॥ "धूपै" इत्यादि तथा "ओं" इत्यादि बोलकर आठों दिशाओंमें आठ धूपदान रक्खे

ओं नमो अर्हे सर्वतो दह २ तेजोधिपतये महभूताय धूप गृहाण गृहाण स्वाहा

दिक्षु धूपघटाष्टकनिवेशनम् ।

स्फूर्जज्ज्योतिः सज्जितैः कज्जलांहो दाहं दाहं स्नेहमेभिर्वहद्भिः ।
दीपैः शुद्धज्ञानरोचिः कलापप्रख्यैरर्हं देवमाराधयामः ॥ १६७ ॥

ओं नमोर्हते सर्वतः प्रज्वल २ अमिततेजसे दीप गृहाण स्वाहा ।

श्रीमद्दाडिममोचचोचरुचका क्षौटा प्रघोटा शिवा
जंबूजंभलनागरंगपनसद्राक्षाकपित्थादिजैः ।
छायागंधरसप्रभाकृतिदशाभेदैर्मनोहारिभिः
साक्षात्पुण्यफलैर्जिनेंद्रचरणावभ्यर्चयामः फलैः ॥ १६८ ॥

ओं नमोर्हते सहभूताय फलानि गृहाण गृहाण स्वाहा ।

मुद्गाद्यक्षेपाद्विदलप्रसूतैर्वालांकुराक्षिप्तगुणप्ररोहैः ।
विरूढकैः प्रौढविशुद्धभावं यजे जिनं भव्यशुभोद्भवाय ॥ १६९ ॥

॥ १६६ ॥ "स्फूर्ज" इत्यादि तथा "ओं" इत्यादि बोलकर दीपक चढावे ॥ १६७ ॥ "श्रीमद्दा" इत्यादि तथा "ओं" इत्यादि बोलकर फल चढावे ॥ १६८ ॥ "मुद्गा" इत्यादि बोलकर दो द-लवाले धान्यके अंकूरे शुभउदय होनेके लिये चढावे ॥ १६९ ॥ "यवादि" बोलकर जौका

विरूढकस्थापनम् ।

यवादिजैर्मंगलदानदक्षैर्यावारकैः कांतिजिताश्मगर्भैः ।
जगत्पतेः सिद्धवधूविवाहवेदीमिमां भूमिमलंकरोमि ॥ १७० ॥

यवारकस्थापनम् ।

सहानवस्थानहतान् स्वपंचवर्णोच्चयेन द्युविमानवर्णान् ।
आक्षिप्यतोभि प्रभु वर्णपूरान् स्वर्वासिपुण्याय निवेशयामि ॥ १७१ ॥

वर्णपूरकस्थापनम् ।

व्याहारान् जिनवाक्यवन्मधुरताशैत्यप्रसादोत्कुरै-
रिक्षन् स्वादुविपाकवद्भिरितरान् प्रत्यादिशद्भी रसैः ।
स्थूलैरायतिशालिभिः कलयुतं कोदंडक्लृप्त्यै ।
प्रभारिष्टरसोन्मुखं जिनपतिः पुंड्रेक्षुभिः प्रार्चये ॥ १७२ ॥

इक्षुस्थापनम् ।

वस्तुं सभाभुवि मनोज्ञफलप्रवालपुष्पावलीरुपहृता द्युवनश्रिये वा ।
चित्रामपिष्टमयपुष्पफलप्रवालरूपास्तनोमि वलिवर्तिततीर्जिनाग्रे ॥ १७३ ॥

आदा स्थापन करे ॥ १७० ॥ "सहान" इत्यादि बोलकर पांच रंगोंको चढावे ॥ १७१ ॥ "व्याहारान्" इत्यादि बोलकर पौंडा चढावे ॥ १७२ ॥ "वस्तु" इत्यादि बोलकर घीकी बत्ती

वह्निवर्तिकास्थापनम् ।

सूत्रार्थैरिव निर्मलैर्मतिफलैराह्लादिभिः शीतलैः
पीयूषैरिव जीवनादिकगुणग्रामस्फुरद्गौरवैः ।
पूर्ण तीर्थजलैः सुपल्लवमुखं हैमं सदूर्वाक्षतं
दिव्यांगं दधतं न्यसामि धृतये भृंगारमग्रेऽर्हतः ॥ १७४ ॥

भृंगारस्थापनम् ।

एवं देवे विश्वदेवाग्रसेवे न्यस्तेऽर्चायां चारुवस्तूपचारैः ।
व्यक्तात्यंतोदात्तशस्तानुभावे प्रातुंकामानर्घमभ्युद्धरामः ॥ १७५ ॥

पूर्णार्घम् ।

आदिनाथोस्तु नः स्वस्ति स्वस्ति स्तादजितेश्वरः ।
शंभवो भवतु स्वस्ति भूयात्स्वस्त्यभिनंदनः ॥ १७६ ॥
अस्तु वः सुमतिः स्वस्ति पद्माभ. स्वस्ति जायताम् ।
सुपार्श्वः स्वस्ति भवतात् स्वस्ति स्ताच्चंद्रलांछनः ॥ १७७ ॥

प्रकाशित करके चढावे ॥ १७३ ॥ "सूत्रार्थै" इत्यादि बोलकर जलसे भराहुआ सोनेका छो-टा कलश चढावे ॥ १७४ ॥ "एवं देवे " इत्यादि बोलकर पूर्णार्घ चढावे ॥ १७५ ॥ "आदि-

सतां स्वस्त्यस्तु सुविधिर्भवतु स्वस्ति शीतलः ।
श्रेयान् संपन्नतां स्वस्ति स्वस्त्यस्तु वसुपूज्यजः ॥ १७८ ॥
राज्ञोस्तु विमलः स्वस्ति स्वास्ति भूयादनंतचित् ।
भूयाद्धर्मचितः स्वस्ति शांतीशः स्वस्ति जायताम् ॥ १७९ ॥
संघस्य कुंथुः स्वस्त्यस्तु भवतु स्वस्त्यरप्रभुः ।
स्वस्ति मल्लिजिनेंद्रोस्तु स्वस्त्यस्तु मुनिसुव्रतः ॥ १८० ॥
जगतांस्तु नमिः स्वस्ति स्वस्ति स्तान्नेमिनायकः ।
स्वस्ति पार्श्वजिनो भूयात् स्वस्ति सन्मतिरस्त्विति ॥ १८१ ॥
अस्मिन्निमे स्वस्त्ययने भक्तिरागादघातिनाम् ।
स्वस्तिमंतः स्वयं शश्वत्संतु स्वस्त्ययनं जिनाः ॥ १८२ ॥

एतत्सप्तकं पठित्वा पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् । स्वस्त्ययनविधान ।

अथ केवलज्ञानकल्याणस्थापनम् ।

इत्यक्षुण्णकृताधिवासनविधेः शक्त्या निधायार्हतः
कोशे नित्यमहार्थमर्थसूचितं षष्ठा निधायार्पितं ।

नाथो" इत्यादि सात श्लोक बोलकर पुष्पोंकी अंजलि चढावे ॥ १७६ से १८२॥ यह स्वस्ति-

स्वीकार्यापि शिवाय सद्वृतमिमे कुर्मोवतार्यार्तिकं
तस्योत्क्षिप्य च धूपमध्वमघहृत्तच्छ्रीमुखोद्घाटनम् ॥ १८३ ॥

ॐ उसहादिवड्ढमाणाणं पंचमहाकल्लाणसंपण्णाणं महइ महावीरवड्ढमाणसामीणं सिज्झउ मे महइ महाविज्जा अट्ठमहापाडिहेरसहियाणं सयलकलाधराण सज्जोजादरूवाण चउतीसातिसयविसेससंजुत्ताणं वत्तीसदेविंदमणिमउडमत्थयमहियाणं सयलछोयस्स सतिपुट्ठिकल्लाणाओ आरोगाकराणं बलदेववासुदेवचक्कहररिसिमुणिजदिअणागारोवगूढाण उहयलोयसुहयफलयराणं थुइसयसहस्सणिलयाण परापरपरमप्पाणं अणाइणिहणाणं वलिवाहुवलिसाहिदाणं वीरवीरे ओं हां क्षा सेणवीरे वड्ढमाणवीरे हंसं जयंतं पराइएवज्जसिथुलभमयाणं सस्सदवंभपइट्ठियाणं उसहाइवीरमंगलमहापुरिसाण णिच्चकालपइट्ठियाणं इत्थ सण्णिहिदा मे भवतु मे भवतु ठ ठ क्ष क्ष स्वाहा । श्रीमुखोद्घाटनमत्रः ।

येनोन्मील्य समस्तवस्तुविशदोद्भासोद्भटं केवल-
ज्ञानं नेत्रमदर्शिमुक्तिपदवी भव्यात्मनामूर्ध्वथा ।
तस्यात्रार्जुनभाजनार्पितसिता क्षीराज्यकर्पूरयुक्
वक्रस्वर्णशलाकया प्रतिकृतौ कुर्वे दृगुन्मीलनम् ॥ १८४ ॥

वाचन विधि हुई । अब केवलज्ञान कल्याणका स्थापन करते हैं–" इत्यक्षु " इत्यादि श्लोक तथा ओं उसहा " इत्यादि श्रीमुखोद्घाटन मंत्र बोलकर भगवानके मुखको उघाड़े ॥ १८३ ॥ "येनो" इत्यादि तथा "ओं नमो" इत्यादि नेत्रोन्मीलनमंत्र बोलकर नेत्रोंको उघाड़े ॥१८४॥

ओं नमो अरहंताणं अमियरसायणं विमलतेयाणं सति तुट्ठि पुट्ठि वरद सम्मादिट्ठीणं वृषभं अमयवरसण स्वाहा । नेत्रोन्मीलनमंत्रः । अथ गुणाध्यारोपण ।

यत्सामान्यविशेषयोः सह पृथक् स्वान्यत्वयोर्दीपव—
च्चित्तं द्योतकमर्हतः समुदभूत्ते दृक् चिदो ये च यत् ।
तद्व्यापारनिबंधि वीर्यमपि यत्सौख्यं तदव्याकुली—
भावोऽनंतचतुष्टयं तदिह तद्विंबे न्यसाम्यांतरम् ॥ १८५ ॥

अनतज्ञानादिचतुष्टयप्रतिष्ठार्थं प्रतिमोत्तमांगे चतुःपुष्पीमारोपयेत् ।

सौभिक्ष भवतिस्म योजनशतं यत्संसदं सर्वतः
सार्धक्रोशयुगोज्झितक्षितितलं यश्वे स्पृहं सद्गतम् ।
यश्चेष्टास्वसितांगसंगवशतोप्यप्राणघातोंगिनां
या तावत्यपि विग्रहस्य कवलाहारं विनैव स्थितिः ॥ १८६ ॥
हुंडामप्यवसर्पिणीं प्रतिवदन् यो नोपसर्गोद्भव—
स्तैजोवैभवतश्चतुर्मुखतया वीक्ष्यैकमुख्योपि या ।

अब गुणोंकी आरोपणविधि कहते हैं—"यत्सामान्य" इत्यादि बोलकर अनंतज्ञान आदि अनंत चतुष्टयकी स्थापनाकेलिये प्रतिमाके मस्तकके ऊपर चार पुष्प चढावे ॥ १८५ ॥ "सौ-

विद्यास्वप्यखिलासु यः परिवृढीभावो दृढः सर्वदा
यच्छायाविरहस्तिरश्चरदिनेऽप्यंगे क्षिपेयेपि च ॥ १८७ ॥
पक्षस्पंदविपर्ययोऽनिशमृत व्याधेः प्रयत्नाच्च यो
यो मूर्तेर्नखकेशवृद्ध्युपरमो मर्त्यप्रकृत्यत्ययात् ।
ते घातिक्षयजा दशाप्यतिशया बाह्याश्च चेतश्चमत्-
कारोद्रेककृतो जिनस्य निहिता विंबे मयात्राधुना ॥ १८८ ॥

घातिक्षयजदशातिशयस्थापनार्थं पीठिकाया दश पुष्पाणि क्षिपेत् ।

धूलीशालोंऽतः क्षितौ चैत्यगेहप्रासादाल्यो नाट्यशाला सरांसि ।
मानस्तंभाश्चाधिदिग्वीथ्यतोर्णः पूर्णं खेयं वेदिरम्यं विदिक्षु ॥ १८९ ॥
वेदीभूषा पुष्पवाट्यस्ततोंतो नाट्याशोकाद्याद्यभूर्हेमशाला ।
वेदीरुद्धावेध्वजोर्वीशतारप्राकारांतो नाट्यकल्पद्रुमोर्वी ॥ १९० ॥

वेदीद्धात. स्तूपदिव्यालयोर्वीयत्पाद्युर्वीतः सनाद्यार्कशाला ।
तन्मध्येऽर्हन्गंधकुट्यासने भाद्यत्रास्थानीं तामिह स्थापयामि ॥ १९१ ॥

भिक्षं” इत्यादि तीन श्लोक बोलकर केवलज्ञानके समय होने वाले दस अतिशयोंके स्थापन करनेके दस फूलोंको वेदीपर चढावे १८६ । १८७ । १८८ ॥ “धूली” इत्यादि तीन

समवसरणस्थापनार्थं प्रतिमायाः समतात् पुष्पाक्षत क्षिपेत् । इति समवसरणस्थापनम् ।

उपानीयं यतोदैवैर्देवदेवातिशायिनः । चतुर्दशाद्भुता भावाः स्थापयामीह तानपि ॥ १९२॥
ब्रुवतोर्द्धार्द्धसर्वांगि मागधोक्तिमयी प्रभोः । सभायामन्वकार्यंत मागधैर्वागिहास्तु सा॥१९३
जातिकारणवैरेकघस्मरेप्याश्रमे पुष्यन् । यया प्रीतिकरा भर्तृभक्तान् मैत्रीह भातु सा॥१९४
सर्वर्तुसंपद्भ्राजिष्णु द्रुमा रत्नमयी ध्रुवत् । या जि नाब्दतलासर्जि प्रभुभक्त्यास्तु मा प्रभुः १९५॥
यो विस्त्रसा विहरति प्रभौ मृद्धतिलोन्ववात् । यश्चाभूत्परमानंदः सर्वेषां तामिहापि तौ॥१९६॥
संमार्जनं योजनं यद्वोर्जिनाग्रेनिलैः कृतम् । या गंधोदकवृष्टिश्च मेघैस्ते भवतामिह ॥१९७॥
यानं तं सर्वतः पद्माः पंक्तिद्वात्रिंशता ततः । सप्तस्तधपदोश्चैको यत्तत्पद्मायनं त्विदम् १९८
विभुवैभवनिध्यानहर्षिता पुलकानि च । फलभारानतव्रीहिव्याजाद्भूया सा त्विह ॥१९९ ॥
प्रभोर्दिक्षावसंहर्षाद्यन्नैर्मल्य दधुर्दिशः । तद्योगादिव यत्खं च प्रसन्नं तद्भवत्विह ॥ २०० ॥
वरमदं विभुभक्तुमेतैतेत्यभितो व्यधुः । यद्भावनाः समस्तान्यदेवाश्वनं तदस्त्विह ॥ २०१ ॥
रत्नरुक् चक्रदीपारसहस्रेण रविं क्षिपन् । धर्मचक्रं चचाराग्रे यत्प्रभोस्तत्स्फुरत्विदम्॥२०२॥
छत्रचामरभृंगारकुंभाब्दव्यजनध्वजान् । स्वसुप्रतिष्ठान् यानिंद्रो भर्तुस्तेनेत्र संतु तो ॥२०३॥

श्लोक बोलकर समवसरण स्थापन करनेके लिये प्रतिमाके चारोतरफ पुष्प और अक्षत फेंके ॥ १८९ । १९० । १९१ ॥ "उपानीयं" इत्यादि बारह श्लोक बोलकर देवकृत अतिशयोंके स्थापन करनेकेलिये वेदीपर चौदह पुष्प चढावे ॥ १९२ से २०३ ॥

चतुर्दशदेवोपनीतातिशयस्थापनार्थं पीठिकाया चतुर्दश पुष्पाणि क्षिपेत् । इति दिव्यातिशय-स्थापनम् ।

स्पृश्याः स्पृशंतो नापश्चिर्यन्नामापि तथापि तम् । येनेंद्रो यष्टभक्त्या तत् प्रातिहार्याष्टक त्विदम्॥

अष्टमहाप्रातिहार्यस्थापनाय पीठिकायामष्टपुष्पीं क्षिपेत् ।

रत्नांशुवर्षेन्द्रधनुर्व्याप्तास्या हरिवाहनम् । यच्चक्रे धर्मैकात्मा सिंहपीठं तदस्त्वदः ॥२०५॥

ओं सिंहासनश्रियै स्वाहा । सिंहासने पुष्पाजलि क्षिपेत् ।

प्रवाद्यभेद्यो मेघौघध्वनिर्जिग्योजनं सद । व्याप्नुवन यो न केनापि व्यथाय्येष सतद्ध्वनिः ॥

ओं ध्वनिश्रियै स्वाहा । सरस्वत्या पुष्पाजलिं क्षिपेत् ।

यक्षैर्दोधूयमानार्हद्देहं छायाछलाश्रिता । या चामरचतुःषष्टिर्नानटीतिस्म सास्त्वियम्॥२०७॥

ओं चतुःषष्टिचामरश्रियै स्वाहा । चामरधारियक्षयोः पुष्पाजलिं क्षिपेत् ।

चक्षुष्ये पश्यतां सप्त भासयत्यनिशं भवान् । भामंडले स्फुरन् यत्र विश्वतेजांस्यदोस्तु तत् ॥

" स्पृश्या " इत्यादि बोलकर आठ प्रातिहार्य स्थापन करनेकेलिये वेदीमे आठ पुष्प चढावे ॥ २०४ ॥ " रत्ना " इत्यादि तथा " ओं " इत्यादि बोलकर सिंहासनके आगे पुष्प चढावे ॥ २०५ ॥ " प्रवाद्य " इत्यादि तथा ' ओं " इत्यादि बोलकर सरस्वतीके आगे पुष्प चढावे ॥ २०६ ॥ " यक्षै " इत्यादि तथा " ओं " इत्यादि बोलकर चमर धारण करनेवाले यक्षोंके आगे पुष्पांजलि चढावे ॥ २०७ ॥ " चक्षुष्ये " इत्यादि तथा " ओं " बोलकर भा-

ओं भामण्डलश्रियै स्वाहा । भामण्डले पुष्पाजलिं क्षिपेत् ।

रत्नरोचि नदद्भृंगखगोवातचलल्लतः । विश्वाशोकीकृते व्यक्तं योऽशोको नटदेष सः २०९

ओं रक्ताशोकाश्रियै स्वाहा । रक्ताशोके पुष्पांजलिं क्षिपेत् ।

मुक्तप्रारोहमालंबि मुक्त्वा लंबूष लक्षणं । छत्रत्रयं स्मावत् श्रीनिधिं यन व्यात्यदोस्तु तत् ॥

ओं छत्रत्रयश्रियै स्वाहा । छत्रत्रये पुष्पाजलिं क्षिपेत् ।

सभ्याः शृण्वंत्वसभ्योक्तीर्मितीवातीव योध्वनत् । सार्धद्वादशकोट्युद्यद्वादित्रोयं स दुंदुभिः ॥

ओं दुदुभिश्रियै स्वाहा । दुंदुभौ पुष्पाजलिं क्षिपेत् ।

गंगांभः सुभगे गुंजद्भृंगौघा सुमनस्तमे । सुमनोभिः सुमनसां वृष्टिर्या सर्जे सास्त्वसौ २१२

ओं पुष्पवृष्टिश्रियै स्वाहा । मालाविद्याधरयो पुष्पाजलिं क्षिपेत् ।

इत्यष्टौ प्रातिहार्याणि प्रतिमायां जिनेशिनः । स्थापितानि च निघ्नंतु भाक्तिकानां सदापदः ॥

मण्डलके आगे पुष्पांजलि चढावे ॥ २०८ " रत्न " इत्यादि तथा " ओं " इत्यादि बोलकर लाल अशोकके आगे पुष्पांजलि क्षेपण करे ॥ २०९ ॥ " मुक्त " इत्यादि तथा " ओं " इत्यादि बोलकर तीन छत्रोंकेलिये पुष्पांजलि क्षेपण करे ॥ २१० ॥ " सभ्या " इत्यादि तथा " ओं " इत्यादि बोलकर दुंदुभिवाजेकेलिये पुष्पोंको क्षेपण करे ॥ २११ ॥ " गंगांभ " इत्यादि तथा " ओं " इत्यादि बोलकर पुष्पमाला धारण करनेवालोंके आगे पुष्पोंको क्षेपण करे ॥ २१२ ॥ " इत्यष्टौ " इत्यादि बोलकर प्रतिमाके आगे आठ पुष्पोंको चढावे ॥

प्रतिमाग्रेष्टपुष्पीं क्षिपेत् । इत्यष्टमहाप्रातिहार्यस्थापनम् ।

वंशे जगत्पूज्यतमे प्रतीतं पृथग्विधं तीर्थकृतां यदत्र ।
तल्लांछनं संव्यवहारसिद्ध्यै बिंबे जिनस्येदमिहोल्लिखामि ॥ २१४ ॥

लांछने पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् ।

शक्रेण सत्कृत्य सुभाक्तिकत्वात् त्रातुं नियुक्तो जिनशासनं यः ।
कामान् दुहन्नीश जुषां यथास्वं प्रतिष्ठितस्तिष्ठतु सैष यक्षः ॥ २१५ ॥

यक्षोपरि पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् ।

तद्वत्स्वयूथेष्वतिवत्सलत्वान्निवारयंती दुरितानि नित्यम् ।
यथोचित शासनदेवतेति न्यस्तात्र यक्षी प्रतपत्वमत्र्यम् ॥ २१६ ॥

शासनदेवतोपरि पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् ।

येनेह दर्शनविशुद्ध्यधिदेवतेन विश्वोपकाररसिकेन दिवीव गर्भम् ।
न्यूषे प्रमोदरसवर्षणपर्वणैव सर्वाणि सैष निहताद् दुरितानि नोऽर्हन् ॥ २१७ ॥

॥ २१३ ॥ " वंशे " इत्यादि बोलकर चिन्हके आगे पुष्पांजलि क्षेपण करे ॥ २१४ ॥ " श-क्रेण " इत्यादि बोलकर यक्षके ऊपर पुष्पांजलि क्षेपण करे ॥ २१५ ॥ " तद्वत " इत्यादि बोलकर शासनदेवताके ऊपर पुष्पांजलि चढावे ॥ २१६ ॥ " येने " इत्यादि पांच श्लोक

आधीभिराधिभिरवाविषयीकृताया निर्गत्य मातुरुदराज्जनयन् मुदं यः ।
लोकोत्तराणि बुभुजेत्र सुखान्यजस्रं श्रेयांसि स जयतु न सदायम् ॥ २१८ ॥

समयाधिगमास्तमोहतंद्रे स्वयमुद्बुध्य झटित्यपास्तसंगम् ।
प्रशमैकरसो चरत्तपो यः स जिनोयं हरतां भवज्वरं नः॥ २१९ ॥

यः सम्यक्त्वरमावगाढदृगुपष्टंभात्सम वेदिता
द्रष्टा विश्वमुपेक्षितात्मपरमानंदोध्यतिष्ठद्विरम् ।
स्फूर्जत्तीर्थकरत्वनामसुकृतोद्रेकादनुमाणतीं
दिव्यां सभ्यसमीहितार्थकथनीं नस्तत् स्फुरत्वेष नः ॥ २२० ॥

योष्टादशशीलसहस्रसंयुक्तैश्चतुरशीतिगुणलक्षैः ।
परिणम्य कृत्स्नकर्मच्युतोष्ट भजते गुणान् सचेहास्ताम् ॥ २२१ ॥

एतत्पचक पठित्वा कल्याणपंचकस्थापनाभिव्यक्तये प्रतिमाया पुष्पाजलिं क्षिपेत् ।

इति मिद्धामरसाक्षाज्जीवन् मुक्तिश्रियं स्वसात्कृत्य ।
भजतो जगतो पत्युः कृकणमिह मोक्षयाम्येषः ॥ २२२ ॥

बोलकर पांचकल्याणोंके प्रगट करनेकेलिये प्रतिमाके आगे पुष्पांजलि चढावे ॥ २१७ से २२१ ॥ " इति " इत्यादि श्लोक तथा " ओं " इत्यादि बोलकर प्रतिमाके आगे पुष्प क्षेपण

ओं " सत्तक्खरमक्कार अरहताण णमोत्थि भावेण । जो कुणइ अणण्णमणो सो गच्छइ उत्तमं ठाण " ॥ कंकणमोक्षणं । ॐ " केवलणाणदिवायरकिरणकलावप्पणासियण्णाणो । णव केवललद्धुग्गमसुजणियपरमप्पववएसो" असहायणाणदसणसहिओ इदि केवली हु जोएण। जुत्तोत्ति सजोगिजिणो अणाइणिहणारिसे उत्तो" । इत्येषोऽर्हत्साक्षादत्रावतीर्णो विश्व पात्विति स्वाहा। प्रतिमोपरि पुष्पांजलि क्षिपेत् । अर्हद्देवसाक्षात्करणविधानम् । ओं " खवियघणघाइकम्मा चउतीसातिसयपचकल्लाणा । अट्ठवरपाडिहेरा अरहता मगलं मज्झ " भूयासुरिति स्वाहा ॥ परमोत्सवेन महार्घमवतारयेत् ।

सिद्धश्रुतचरित्रर्षिशांतिभक्तिभिरन्विताः । केवलज्ञानकल्याणक्रियां कुर्वंतु याजकाः ॥२२३॥

इति केवलज्ञानकल्याणकस्थापनविधानम् ।

न्यस्यनिर्वाणकल्याणं सूत्रोक्तविधिना ततः। सिद्धश्रुतचरित्रर्षिशिवशांतीन् स्तुवंतु ते॥२२४॥

इति निर्वाणकल्याणस्थापनम् ।

करे ॥ २२२ ॥ यह अर्हत प्रभुका साक्षात्करण हुआ । " ओं " इत्यादि स्वाहातक बोलकर बहुत उच्छवके साथ महार्घ चढावे॥ इसप्रकार प्रतिष्ठा करनेवाले सिद्ध श्रुत चारित्र ऋषि शांति भक्तियों सहित केवलज्ञानकल्याणकी क्रिया करे । । २२३ ॥ इसतरह केवलज्ञानकल्याणकी स्थापना विधि हुई ॥ उसके वाद वे इंद्र शास्त्रकथित विधिसे निर्वाण कल्याणका स्थापन करके सिद्ध श्रुत चारित्र ऋषि शिव शांति स्तुतिका पाठ करें ॥२२४॥ जिसतरह

तथा सामान्यतोर्विंबे गुणाद्यारोप्यमर्हताम् । यथास्व च पृथक्कूल्यं स्वर्गावतरणादिकम् २२५

अप्यंगुष्टमितामनेन विधिना जैनी प्रतिष्ठाप्य ये
शास्त्रोक्तां प्रतिमां भजंति विधिवन्नित्याभिषेकादिभिः ।
तेऽर्हद्भक्तिदृढानुरंजितधियो भुक्त्वा शिवाधर-
श्रामण्योम्युदयावलीरनुभवंत्यात्यंतिकीं निर्वृतिम् ॥ २२६ ॥

इत्याशाधरविरचिते प्रतिष्ठासारोद्धारे जिनयज्ञकल्पापरनाम्नि जिनप्रतिष्ठाविधानीयो नाम चतुर्थोऽध्याय ॥ ४ ॥

स्वर्गसे अवतार लेना आदि क्रियायें हुई हैं उसीतरह अर्हतके प्रतिबिंबमें गुणादिकी स्थापना करनी चाहिये ॥ २२५ ॥ इसतरह निर्वाण कल्याणकी स्थापनाका विधान हुआ । जो अंगुष्ठप्रमाण शास्त्रोक्त जिन प्रतिमाको भी इसी पूर्वकथित विधिसे प्रतिष्ठित करके हमेशा अभिषेकादि विधिसे पूजते हैं वे मुमुक्षु इस लोकमें उत्कृष्ट भोगोंको भोगकर बादमें अनंतसुखरूप मोक्षको पाते हैं ॥ २२६ ॥

इसप्रकार प० आशाधर विरचित जिनयज्ञकल्प द्वितीय नामवाले प्रतिष्ठासारोद्धारमें अर्हतप्रतिष्ठाकी विधिको कहनेवाला चौथा अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ४ ॥

पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥
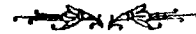
अथातो अभिषेकादिविधानान्यनुसूत्रयिष्याम. । तद्यथा-

आश्रुत्य स्नपनं विशोध्य तदिलां लब्धां चतुःकुंभयुक्
कोणायां सकुशश्रियां जिनपतिं न्यस्तां तमाप्येष्टदिक् ।
नीराज्यांबुरसाज्यदुग्धदधिभिः सिक्त्वा कृतोद्वर्तनं
सिक्तं कुंभजलैश्च गंधसलिलैः संपूज्य नुत्वा स्मरेत् ॥ १ ॥

इत्यभिषेकविधानं । अथ चलजिनेंद्रप्रतिबिंबप्रतिष्ठाचतुर्थदिनस्नपनक्रिया । तत्रेय कृत्यप्रतिज्ञा । भगवन्नमोस्तु ते एषोऽहं चलजिनेन्द्रप्रतिबिंबप्रतिष्ठाचतुर्थदिनस्नपनक्रियां कुर्यामिति । शेषं समानम् । अथ चलजिनेंद्रप्रतिबिंबप्रतिष्ठाचतुर्थदिनस्नपनक्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावंदनास्तवसमेतं सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं इत्युच्चार्य सामायिकदंडचतुर्विंशतिस्तवौ पठित्वा

अब अभिषेक आदिकी विधि कहते हैं । वह इसतरह है-वेदीके चारों कोनोंमें जलसे भरे हुए घड़े रखकर भूमिको पवित्रकर बीचमें सिंहासनपर जिन प्रतिमाको विराजमान कर पंचामृताभिषेक करे । उसके बाद उन जलपूर्ण घड़ोंसे अभिषेक करके पूजा करे ॥ यह अ-

सिद्धभक्तिं प्रयुंजीत। एवं चैत्यपंचगुरुशांतिसमाधिभक्तिरपि विदध्यात्। अथ स्थिरे तं सिद्धभक्तिं कायोत्सर्गं करोम्यहमित्युच्चार्य सामायिकादिविधिं विधाय सिद्धचारित्रशांतिसमाधिभक्तीः प्रयुंजीत । अत्र केचिच्चारित्रभक्त्यनंतरं चैत्यपंचगुरुभक्ती अपि प्रयुंजते। इति क्रियाप्रयोगविधानं । " ओं जिनपूजामाहूता देवाः सर्वे विहितमहामहाः स्वस्थानं गच्छत २ जः जः " इति विसर्जनमंत्रोच्चारणेन यागमंडले पुष्पांजलिं वितीर्य देवान् विसर्जयेत् ।

इह बहिरवतारप्रत्ययेन बुधानां मखविधिपरिपाट्या भावशुद्धिं विधाय ।
बहिरिव रविबिम्बं ध्वांतमध्यान्मस्थत्सु स्फुरत पुनरखंडं तत्परं ब्रह्म नोद्य ॥ २ ॥
अनेन परब्रह्माध्यात्ममभ्यासयेत् । इति देवताविसर्जनाविधानम् ।

भिषेकविधि हुई ॥ १ ॥ जिनेंद्रकी चल प्रतिमाकी प्रतिष्ठाके चौथे दिन स्नान क्रिया होती है। वहां ऐसी करनेकी प्रतिज्ञा होती है। हे भगवन् आपको नमस्कार है यह मैं चल जिन प्रतिमाकी प्रतिष्ठाके चौथे दिन स्नपन क्रिया करता हूं। अन्य सर्वविधि समान है। "चल" इत्यादि " करोम्यहं " तक बोलकर सामायिक, चौवीसजिनस्तुति पढकर सिद्धभक्ति करे। इसीतरह चैत्यभक्ति, पंचगुरुभक्ति, शांति समाधिभक्ति भी करे। और स्थिर प्रतिमामें "तं" इत्यादि "करोम्यहं" तक बोलकर सामायकआदि विधि करके सिद्ध चारित्र शांति समाधिभक्तियोंको करे । यह क्रियाओंका प्रयोग कहा। " ओं " इत्यादि विसर्जनमंत्र बोलकर पूजाके मांडलेपर पुष्पांजलि चढाकर देवोंका विसर्जन करे। " इह " इत्यादि श्लोक बोल-

शश्वच्चेतयते यदुत्सवमिमं ध्यायंति यद्योगिनो
येन प्राणिति विश्वमिंद्रनिकरा यस्मै नमस्कुर्वते ।
वैचित्री जगतो यतोस्ति पद्वी यस्यांतरप्रत्ययो
मुक्तिर्यत्र लयस्तनोतु जगतां शांति परं ब्रह्म तत् ॥ ३ ॥

अनेन जिनाग्रे शांतिधारां प्रकल्प्येत्थं बलिं दद्यात् । ओं अर्हद्भ्यो नमः सिद्धेभ्यो नमः सूरिभ्यो नमः पाठकेभ्यो नमः सर्वसाधुभ्यो नमः । अतीतानागतवर्तमानत्रिकालगोचरानंतद्रव्यगुणपर्यायात्मकवस्तुपरिच्छेदकसम्यग्दर्शनसम्यग्ज्ञानचारित्राद्यनेकगुणगणाधारपंचपरमेष्ठिभ्यो नमः । ओं पुण्याहं २ प्रीयतां २ ऋषभादि महति महावीर वर्धमानपर्यंतपरमतीर्थंकरदेवान् तत्समयपालिन्यो-ऽप्रतिहतचक्रचक्रेश्वरीप्रभृतिचतुर्विंशतिशासनदेवता. गोमुखयक्षप्रभृतिचतुर्विंशतियक्षा आदित्यचंद्र-मंगलबुधबृहस्पतिशुक्रशनिराहुकेतुप्रभृत्यष्टाशीतिग्रहा वासुकिशंखपालककोंटपद्मकुलिकानंततक्षकमहापद्मजयविजयनागाः देवनागयक्षगंधर्वब्रह्मराक्षसभूतव्यंतरप्रभृतिभूताश्च सर्वेप्येते जिनशासनवत्सला.

कर परब्रह्मका मनमें ध्यान करे ॥ २ ॥ यह देवताविसर्जनकी विधि हुई । " शश्व " इत्यादि बोलकर जिनदेवके आगे शांतिधारा छोडके इसप्रकार पूजन करे ॥ ३ ॥ "ओं अर्ह" इत्यादि बोलकर पुष्प क्षेपण करे । इसमें राजा प्रजा कुटुंब आदि सब जीवोंके कल्याण होनेका चिंतवन किया जाता है । इसीको पुण्याहवाचन भी कहते हैं "ये सामग्री" इत्यादिसे अर्हतसे

ऋष्यार्यिकाश्रावकश्राविकायष्टृयाजकराजमंत्रिपुरोहितसामंतारक्षिकप्रभृतिसमस्तलोकसमूहस्य शांति-वृद्धिपुष्टितुष्टिक्षेमकल्याणमायुरारोग्यप्रदा भवतु । सर्वसौख्यप्रदाश्च संतु । देशे राष्ट्रे पुरे च सर्वदैव चौरारिमारीतिदुर्भिक्षावग्रहविघ्नौघदुष्टग्रहभूतशाकिनीप्रभृत्यशेषानिष्टानि प्रलयं प्रयातु, राजा विजयी भवतु प्रजासौख्य भवतु, राजप्रभृतिसमस्तलोकाः सततं जिनधर्मवत्सलाः पूजादानव्रतशीलमहामहोत्सव-प्रभृतिषूद्यता भवतु, चिरकाल नंदतु । यत्र स्थिता भव्यप्राणिनः संसारसागरं लीलयोत्तीर्यानुपमं सिद्धिसौख्यमनंतकालमनुभवंति तच्चाशेषप्राणिगणशरणभूतं जिनशासनं नंदत्विति स्वाहा ।

ये सामग्रीविशेषदृढिमभरहवात्क्षिप्तदुर्वारवैरि-
व्रातप्रेष्यत्पताकाततपरिचितज्ञानसाम्राज्यलीलाः ।
भूतार्थोच्छेदकंदव्यवहरणघटोद्भिद्यपृक्तोक्तियुक्ति-
क्षिप्तासं मन्यमाना जगदतिपुनते ते जिनाः पांतु विश्वम् ॥ ४ ॥
स्फूर्जच्छलक्ष्युदर्चिर्भरमसितदशासाकृतैनःपतंगाः
स्वांगाकाराक्षरैकक्षणसमरनिराकारसाकारचित्काः ।
व्योम्नो विश्वैकधाम्नः कृततिलकरुचः प्रष्ठमात्मंभरीणां
व्यंजंतः स्वं सदान्यज्जिनसमयजुषाः संतु सिद्धाः शिवाय ॥ ५ ॥

कल्याण होनेका चिंतवन है ॥ ४ ॥ "स्फूर्ज" इत्यादि बोलकर सिद्धोंसे कल्याण प्रार्थना ॥५॥

श्रुतधृतिबलासिद्धाः पंचधाचारमुख्यैः शिवसुखमनसो ये चारयंतश्चरंति ।
श्रमरसभरसंविधूरयः सूरयस्ते विदधतु जिनधर्माराधनाशिष्टसिद्धिम् ॥ ६ ॥

येऽङ्गप्रविष्टबहिरंगजिनागमाब्धिपारंगमा निरतिचारचरित्रसाराः ।
धर्मं यथावदनुशासति शिष्यवर्गान् पुष्णंतु पाठकवृषा जगता नमस्ते ॥ ७ ॥

बुद्ध्वा ध्यानात्परमपुरुषं तत्त्वतः श्रद्दधानाः ये विद्वांसःस्वयमुपरतप्रत्यनीकप्रतापम् ।
एकीकुर्वंत्युदयदशयानंदनिष्पीतचिंतास्ते भव्यानां दुरितमनिशं साधवः संहरंतु ॥ ८ ॥

ये मंगललोकोत्तमशरणात्मानं समृद्धमहिमानः ।
पांतु जगत्यर्हत्सिद्धसाधुकेवल्युपज्ञधर्मास्ते ॥ ९ ॥

सूते भेदाभेदरत्नत्रयात्मानाद्यंताद्यंतार्थोदितौ भुक्तिमुक्ती ।
सोस्मिन् राजामात्यपौरादिलोकान् धर्मस्तन्वन् शर्म पायादपायात् ॥ १० ॥

" श्रुत " इत्यादि बोलकर आचार्यसे इष्टसिद्धिकी प्रार्थना ॥ ६ ॥ " येंग " इत्यादि बोलकर उपाध्यायोंसे प्रार्थना ॥ ७ ॥ " बुद्ध्वा " इत्यादि बोलकर साधुपरमेष्ठीसे इष्टप्रार्थना ॥८॥ " ये मंगल " इत्यादि बोलकर अरहंत सिद्ध साधु धर्म–इन चार मंगल लोकोत्तम शरणसे इष्टप्रार्थना करे ॥ ९ ॥ " सूते " इत्यादि बोलकर धर्मसे इष्टप्रार्थना करे ॥ १० ॥ " यास्ती-

यास्तीर्थकृत्वपदतत्फलतन्निमित्तनित्यानुरक्तमतय प्रभुमाभजंति ।
ता रोहिणीप्रभृतयो दश षट् च विद्यादेव्यः सधर्मनिवहस्य दुहंतु कामान् ॥ ११ ॥

पुरैत्नौद्भूतिपूते निखकरचतुर्वणसर्वप्रणूते
संभूताः क्षत्रवंशे नु परम परमब्रह्मालिप्सा प्रशस्याः ।
पूज्यंते स्वामिभक्त्या त्रिदशपरवृढैर्गर्भजन्मोत्सवे याः
सद्भ्यो द्विर्द्वादशाः श प्रददतु मरुदेव्यादयास्ता जिनांबाः ॥ १२ ॥

लोके यथेष्टमणिमादिगुणाष्टकेन कीडंति ये प्रमुदितप्रमदासहायाः ।
ऐंद्रध्वजादिजिनयज्ञविधावतंद्रा द्वात्रिंशदादधतु ते सुकृतांशमिंद्राः ॥ १३ ॥
ये गोमुखप्रमुखयक्षवृषा वृषादितीर्थंकरक्रमसरोरुहचंचरीकाः ।
तद्ब्रह्मवर्चसमजस्रमुदग्रयति ते षट्चतुष्कमितयः सुरद ! भव्यान् ॥ १४ ॥
स्फुरत्प्रभावा जिनशासनं याः प्रभावयंत्यो विलसंति लोके ।
यक्ष्यश्चतुर्विंशतिरार्हतानां चक्रेश्वराद्या धुनतां रुजस्ताः ॥ १५ ॥

र्थ " इत्यादि बोलकर सोलह विद्यादेवीयोंसे इष्टप्रार्थना करे ॥ ११ ॥ " पुरै " इत्यादि श्लोक बोलकर चौवीस जिनमाताओंसे इष्ट वस्तुकी प्रार्थना करे ॥ १२ ॥ " लोके " इत्यादि बोलकर बत्तीस इंद्रोंसे इष्टप्रार्थना करे ॥ १३ ॥ " ये गोमु " इत्यादि बोलकर चौवीस यक्षोंसे इष्ट प्रार्थना करे ॥ १४ " स्फुरत्प्र " इत्यादि बोलकर चक्रेश्वरी आदि चौवीस यक्षि-

भ्राजिष्णुशक्तिविभवा भवसिंधुसेतुसर्वज्ञशासनविभासनवद्धकक्षाः ।
याः पूजयंति विविधाद्भुतसिद्धिकामास्ताश्चाष्टविष्टपमवंतु जयादिदेव्यः ॥ १६ ॥
शक्रादेशात्तीर्थकृद्देवमातृर्याः सेवंते स्वस्वयोग्यैर्नियोगैः ।
ताः सर्वज्ञाराधनातत्पराणां संत्वष्टपि श्रेयसे श्र्यादिदेव्यः ॥ १७ ॥

अन्येपि दौवारिकलोकपालग्रहोरगानाहृतयक्षमुख्याः ।

देवा यथास्वं प्रतिपत्तिदृष्टा निघ्नंतु विघ्नान् जिनभाक्तिकानाम् ॥ १८ ॥

तद्द्रव्यमव्ययमुदेतु शुभः प्रदेशः संतन्यतां प्रतपतु प्रततं स कालः ।
भावः स नंदतु सदा यदनुग्रहेण प्रस्तौति तत्त्वरुचिमाप्तगवी नरस्य ॥ १९ ॥
किं बहुना ।

शांतिः स तनुतां समस्तजगति संगत्वतां धार्मिकैः
श्रेयःश्री परिवर्द्धतां नयधुराधुर्यो धरित्रीपतिः ।

योंसे इष्ट प्रार्थना करे ॥ १५ ॥ " भ्राजिष्णु " इत्यादि बोलकर जया आदि आठ देवियोंसे इष्ट प्रार्थना करे ॥ १६ ॥ " शक्रा " इत्यादि बोलकर श्री आदि आठ देवियोंसे इष्ट प्रार्थना करे ॥ १७ ॥ " अन्येपि " इत्यादि बोलकर इनके सिवाय अन्य देवताओंसे प्रार्थना ॥ १८ ॥ " तद्द्रव्य " इत्यादि बोलकर द्रव्य क्षेत्र काल भावोंके शुभ मिलनेकी प्रार्थना ॥ १९ ॥ बहुत कहनेसे क्या, सब जगतमें शांति रहे, धर्मात्माओंकी संगति मिले, कल्याण करनेवाली लक्ष्मी

सद्विद्यारसमुद्गिरंतु कवयो नामाप्यघः स्यान्तु मा
प्रार्थ्यं वा कियदेक एव शिवकृद्धर्मो जयत्वर्हताम् ॥ २० ॥

एतेत्मार्थपरा शक्राः छत्रचामरशालिनीम् । भृंगारहस्ता मुक्तांबुधारापूतपुरो धराम् ॥२१॥
जिनार्चामनुयांतोग्रे प्रनृत्यत्कलशांगनाः । महान् तूर्यस्वनैर्भव्यजयकोलाहलोल्वणैः ॥ २२ ॥
पूरयंतो दिशः सप्तधान्यपुष्पाक्षतादिभिः । कल्पयंतो बलिं भ्रात्यै त्रिःपरीयुर्जिनालयम् २३

इति बलिविधानम् ।

अथाचार्योऽभिषेक्तव्यः फलपुष्पाक्षतद्युतः । जिनगंधांबुकुंभेन यष्ट्रे दद्यात्सदाशिषम् ॥२४॥

तद्यथा ।

आयुस्तन्वंतु तुष्टिं विदधतु विधुनंत्वापदो घ्नंतु विघ्नान्
कुर्वंत्वारोग्यमुर्वीवलयविलासितां कीर्तिवल्लीं सृजंतु ।

रहे, न्यायमार्गपर चलनेवाला राजा हो, कविजन उत्तम विद्यारसको प्रगट करें, पापका नाम भी न रहे, अन्य विशेष प्रार्थना क्या करे संसारमें एक मोक्षको दाता जैनधर्मकी ही जय हो ॥ २० ॥ आत्मकल्याण करनेमे लीन, छत्र चमर लिये हुए, स्वच्छ जलसे भरी झारीको हाथमें लिए हुए, जिनमूर्तिके आगे नृत्य करते हुए इंद्र, सात तरहके धान्य पुष्प अक्षत आदि पूजा द्रव्यसे पूजा करते हुए जिनमंदिरकी तीन परिक्रमा दें ॥ २१।२२।२३ ॥ यह बलिविधान हुआ । उसके बाद प्रतिष्ठाचार्य गंधोदक अक्षत पुष्प फल दीप धूपसे प्रतिष्ठाविधि करनेवाले

धर्मं संवर्धयंतु श्रियमभिरमयंत्वर्पयंत्विष्टकामान्
कैवल्यश्रीकटाक्षानपि जिनचरणाः संजयंतु सदा वै ॥ २५ ॥
आज्ञैश्वर्यमकार्यकार्यविचयैः संतानवृद्धिर्जयः
सौभाग्यं धनधान्यवृद्धिरभयं निःशेषशत्रुक्षयः ।
पांडित्यं कविता परार्थपरता कार्तज्ञमोजस्विता
मानित्व विनयो जयश्च भवतादर्हत्प्रसादेन वः ॥ २६ ॥
कांताः कांतिकलानुरागमधुराः पुण्यास्त्रिवर्गोद्धुरा
भृत्याः स्वाम्यनुरक्तिशक्तिरुचिरा श्च्योतन्मदाः कुंजराः ।
वाहास्तर्जितशक्रसूर्यतुरगाः शौर्योद्धताः पत्तयो
भूयासुर्भवतां जिनेंद्रचरणांभोजप्रसादात्सदा ॥ २७ ॥
गांभीर्यमौदार्यमजर्यमार्यशौर्यं सशौंडीर्यमवार्यवीर्यम् ।
धैर्यं विपद्यार्जवमार्यभक्तिः संपद्यतां श्रीजिनपूजनाद्वः ॥ २८ ॥

इंद्रको आशीर्वाद दे ॥ २४ ॥ वह एसे ह कि " आयु " इत्यादि ग्यारह आशीर्वाचक श्लोक पढकर यष्टाके शिरपर अक्षत आदिका क्षेपण करे ॥ २५ से ३५ ॥ यह आशीर्वाद विधि हुई । उसके वाद यष्टा " यज्ञोचितं " इत्यादि बोलकर जनेऊ आदिक यज्ञदीक्षाके

भवतु भवतामर्हद्भक्त्या सदा मुदितं मनो

ग्रहमुपचिता चौरौचित्यं प्रहासेन परस्परः ।

प्रणयविवशैः स्वैसंबौसौदयागयमीहितं

स्थितिरपि चित्ते प्रज्ञापराधपराहतिः ॥ २९ ॥

दृक्संशुद्धिरतोन्यतोस्तु भवतामर्हत्प्रतिष्ठाविधे

जातु क्वापि कथंचिदीषदपि मा शीलं व्रतं म्लायतु ।

दूरादेव शिरस्यधीरमरयो बध्नंतु देवांजलिं

प्रेम्णा सद्गुणसंपदा च सुहृदः श्लिष्यंतु पुष्णंतु च ॥ ३० ॥

यष्टॄणां याजकानां प्रतिनुतिकृतामभ्यनुज्ञायकानां

भूयस्यांतःपुरस्य क्षितिपतनुभुवां मंत्रिसेनापतीनाम् ।

सामंतानां पुरोधः पुरविषयवनादिस्थवर्णाश्रमाणां

सर्वेषामस्तु शांत्यै सततमयमिह स्थापितो विश्वनाथः ॥ ३१ ॥

विचित्रैः स्वैर्द्रव्यं प्रतिसमयमुद्यद्व्ययदपि

स्वरूपादुल्लोलैर्जलमिव मनागप्यविचलम् ।

जिन्होंको गुरु (आचार्य) के चरण कमलोंके आगे रखकर नमस्कार करे । यह यज्ञदीक्षा

अनेहो माहात्म्याहितनवनवीभावमखिलं
प्रणिण्वाणाः स्पष्टं युगपदिह ते पांतु जिनपाः ॥ ३२ ॥
संभुज्यार्थिभिः संविभज्य च यथाविध्येवमेवाथवा
निर्विण्णास्तृणवद्विसृज्य कमलां स्वं स्वं स्वयं केऽपि ये ।
संवेद्यामलकेवलाचलचिदानंदे सदैवासते
ते सिद्धाः प्रथयंतु वः प्रति शिवश्रीसद्विलासान् सदा ॥ ३३ ॥
ज्ञात्वा श्रद्धाय तत्त्वं भजति समरसास्वादमानान्यनीहा-
वृत्त्या प्राणानुसर्पन्मरुदनु च कचानष्टमे ब्रह्मरंध्रे ।
भ्रश्यत्यज्ञाय मोहो मृतिमयति मनः केवलं चापि माया-
च्छून्यध्यानेन येषां प्रमदभरमिमे योगिनस्तन्वतां वः ॥ ३४ ॥
नार्पत्यान् विस्मयार्तार्हितपतनरुजौ दत्तझंपान्वितन्वन्
निःश्रेणीकृत्य भोगं वलयितपृथुतन्मूलमाद्राहिताङ्घ्रि ।
श्रीकुंडद्रंगगृह्यावनितरुशिखरा द्यौवतीर्णः स्ववर्ण-
व्यासंगं संगमस्य व्यथितबहुमहाः वीरनाथः स वोऽव्यात् ॥ ३५ ॥

विसर्जनकी विधि हुई ॥ ३६ ॥ उसके बाद गुरुकी आज्ञासे शांति पाठ करके कार्यको

एता आशिषः पठित्वा यष्टुः शिरस्यक्षतान् क्षिपेत् । इत्याशीर्वादविधानम् ।

यज्ञोचितं व्रतविशेषघृतो ह्यतिष्ठन् यष्टा प्रतींद्रसहितः स्वयमे पुरावत् ।
एतानि तानि भगवज्जिनयज्ञदीक्षाचिन्हान्यथैष विसृजामि गुरोः पदाग्रे ॥ ३६ ॥

एतत्पठित्वा यज्ञोपवीतादियज्ञदीक्षाचिन्हानि गुरुपादमूले संन्यस्य नमस्येत् । इति यज्ञदीक्षा विसर्जनम् । ततो गुर्वनुज्ञया शांतिभक्त्या निष्ठापयेत् । अथ जिनप्रतिष्ठानिष्ठापनक्रियाया पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावंदनास्तवसमेतं शांतिभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं । शेषं पूर्ववत् । ततश्चैशान्यादिशमष्टदलकमलमालिख्य चैत्याभिमुखमेतत्पठित्वा पचाग प्रणामादिक्पालेभ्यो निजनिजमंत्रपूतयज्ञागशेषेण सर्वशः पूजा दत्वा जिनगंधोदकतीर्थोदककलशैः सर्वशांतयेम्भः संप्लावयेत् ।

ज्ञानतोऽज्ञानतो वाथ शास्त्रोक्तं न कृतं मया तत्सर्वं पूर्णमेवास्तु त्वत्प्रसादाज्जिनप्रभोः ॥ ३७॥

ततश्च क्षमापणविधिमिममनुतिष्ठेत् ।

समाप्त करे । वह ऐसे है कि–" अथ जिन " इत्यादि " करोम्यहं " तक बोलकर समाप्ति विधि करे । उसके बाद समाधि भक्ति करे । उसके बाद ईशानदिशामें आठ पत्रोंवाला कमल बनाकर प्रतिमाके सामने " ज्ञानतो " इत्यादि श्लोक पढकर पंचांग प्रणाम करे । फिर पूजाकी बची हुई सामग्री सबको चढानेकेलिये देकर कलशोंसे जलधारा सब-विघ्नोंकी शांतिके लिये चढावे । " ज्ञानतो " इत्यादिका अर्थ–हे जिनेंद्र मैंने जानकर अथवा अज्ञानसे शास्त्रकथितरीतिसे जो क्रिया नहीं की है वह सब आपके प्रसादसे समाप्त ही हो

चतुर्विधमहासंघं मंतर्प्याहारभेषजैः । योग्योपकरणं दत्वा यष्टा संपूजयेत्स्वयम् ॥ ३८ ॥
अत्र ये द्रष्टुमायाता प्रतिष्ठाव्यापृताश्च ये । तांबूलगंधपुष्पाद्यैस्तान् संमान्य विसर्जयेत् ॥ ३९ ॥
प्रतिष्ठाचार्यमानम्य तस्यात्मानं समर्प्य च । वस्त्रैराभरणाद्यैश्च संपूज्य क्षमयेत्ततः ॥ ४० ॥
संमान्य सूत्रधारादीन् स्वर्णवस्त्रादिभूषणैः । गांधर्वनर्तकादींश्च यथार्हं तत्समर्पयेत् ॥ ४१ ॥
सार्वकालिकपूजार्थं भूसुवर्णार्पणादिकम् । वित्तानुसारतो दद्यात्पूजोपकरणानि च ॥ ४२ ॥

इति क्षमापना ।

॥३७॥ उसके बाद क्षमा करानेकी विधि करे । वह इस तरह है–प्रतिष्ठा करानेवाला यजमान जिनकल्याणक महोत्सवके बाद आहार औषध दानसे मुनि अर्जिका श्रावक श्राविका–इन चारो संघोंको संतुष्ट करके और उनके योग्य धर्मसाधनके उपकरण (शास्त्र वगैरः) देकर आप उनकी पूजा करे ॥ ३८ ॥ उसके बाद जो प्रतिष्ठा देखनेकेलिये आये हो अथवा प्रतिमाकी प्रतिष्ठा करानेके अभिप्रायसे आये हों उन सबको पान सुपारी फूलोंकी माला आदिसे सत्कार करके जानेको कहे ॥ ३९ ॥ उसके बाद प्रतिष्ठाचार्यको नमस्कार कर उसको कुछ भेंट देकर कपड़े और आभूषण आदिसे संमानकर क्षमा करावे ॥ ४० ॥ प्रतिष्ठाके सहायक तथा गंधर्व व नृत्यकरनेवालोंको वस्त्र अन्न आभूषण और कुछ धन योग्यताके अनुसार दे ॥ ४१ ॥ उसके बाद जिनप्रतिमाकी हमेशा पूजा होनेके लिये जमीन रुपया या कुछ जायदाद आमदनीके अनुसार दे कि जिससे मंदिर पूजा हमेशा होती रहे और पूजाके उपकरण (वर्तन आदिक)

इत्यर्हत्प्रतिमान्यासविधिर्व्यासेन वर्णितः । तादृक्सामग्र्यभावेऽसौ मध्यवृत्त्यापि कल्प्यते ॥ ४३ ॥

तद्यथा ।

कृत्वा पुराकर्म कृतमंडपादिप्रतिष्ठितिः । मंत्रैरेवार्चयित्वा च मंडलान्यखिलान्यपि ॥ ४४ ॥
प्रतिष्ठेयां निरूप्यार्चां प्रयुक्तसकलक्रियः। सत्कृत्याकरशुद्ध्याथ वेदीपीठे निवेशयेत् ॥४५॥
कृत्वा कल्याणसंस्कारमालामंत्राधिरोहणम् । दत्वा तिलकमंत्राधिवासना संप्रकाशने ॥४६॥
सन्नेत्रोन्मीलने कृत्वा कृत्वा चाभिषवादिकम्। संक्षेपेणाथ शक्तिश्चेद्गुभक्तः स्थापयेत्प्रभुम् ४७
तत्रैकमेव सज्जायाद्यर्चयेद्यागमंडलम् । द्वास्थानंतरमत्रैव यजेच्च श्र्यादिदेवताः ॥ ४८ ॥

बनवाके दे ॥ ४२ ॥ यह क्षमावर्नाकी विधि समाप्त हुई ॥ इसप्रकार अर्हंतकी प्रतिमाकी स्थापना विधि विस्तारसे वर्णन की गई है । यदि उतनी सामग्री न हो तो मध्यमरीतिसे भी स्थापना होसकती है ॥४३॥ वह इसतरह है । मंडपादि बनवाकर मंडलादिकी रचना कर उन सबको केवल मंत्रोसे ही पूजकर प्रतिष्ठा होनेवाली जिन प्रतिमाको आकर शुद्धि आदि कही गई विधिसे संस्कारित करके वेदीके सिंहासन पर विराजमान करे ॥ ४४ । ४५ । ४६ ॥ फिर पांच कल्याण संस्कारमालारोपण तिलक अभिषेकादि करे ॥ यह मध्यमरीति है । जिसकी थोड़ी शक्ति हो वह दो बार भोजनकी प्रतिज्ञा कर प्रभुकी स्थापना करे ॥ ४७ ॥ उसके बाद एक यागमंडलकी पूजा करे फिर द्वारपाल और श्री आदि देवताओंकी पूजा करके मंडपके बाहर शुद्ध स्थानमे ऊंचे आसनपर मूर्तिको विराजमान करके अभिषेक करे ।

ततो मंडपबाह्यैकोदेशेर्चाया सुसंस्कृते । कुर्यादाकरशुद्धिं तां शेषं मध्यवदाचरेत् ॥ ४९ ॥

इति मध्यमसंक्षिप्तप्रतिष्ठानुष्ठानविधानम् ।

प्रासादस्य ध्वजं चिन्हं तेनासौ शोभते यतः । शुभप्रदश्च सर्वेषां तस्मात्तमधिरोपयेत् ॥ ५० ॥
हस्तत्रिभागविस्तीर्णैरर्धहस्तायतैर्दृढैः । वस्त्रोत्तमसुसंश्लिष्टैर्ध्वजं निर्मापयेच्छुभम् ॥ ५१ ॥
सितं रक्तं सितं पीतं सितं कृष्णं पुनः पुनः । यावत्प्रासाददीर्घत्वं तावत्संघट्टयेत् क्रमात् ५२
चंद्रार्धचंद्रमुक्तास्रक्किंकिणीतारकादिभिः । नाना सद्रूपयुग्मैश्च चित्रैः पत्रैर्विचित्रयेत् ॥ ५३॥
अध ऽछत्रत्रयं मूर्धस्तस्याधः पद्मवाहनम् । तस्याधः कलशं पूर्णं पार्श्वयोः स्वस्तिकं लिखेत् ५४
दीपदंडौ लिखेत्स्वस्ति शिखायाः पार्श्वयोस्तथा । पार्श्वयोरातपत्रस्य श्वेतचामरयुग्मकम् ॥५५॥

और वाकी क्रियाओंको अर्थात् क्षमावर्नी आदिको पूर्वकथित रीतिसे करे ॥ ४८ . ४९ ॥ यह मध्यम और संक्षेपरीतिसे प्रतिष्ठाकी विधि कही गई है ॥ उसके वाद जिन मंदिरके शिखरपर धुजाको चढावे उससे मंदिरकी शोभा होती है और सबको कल्याण होता है ॥ ५० ॥ वारह अंगुल लंबी और आठ अंगुल चौड़ी मजबूत उत्तम कपडेकी धुजा बनवावे ॥ ५१ ॥ धुजाका कपड़ा सफेद लाल सफेद पीला सफेद काला फिर इसी क्रमसे रंगवाला तयार करावे ॥ ५२ ॥ धुजामें चद्रमा माला घंटरियां तारे इत्यादि अनेक चिन्ह वनाके चित्रित करे ॥ ५३ ॥ कलश सातिया दीपदंड छत्र चमर धर्मचक्र लिखकर धुजाके ऊपर जिनविंबका आकार बनावे। उसमें एक छत्र लगावे। उस धुजामें

मूर्धाधो धवलच्छत्रे ध्वजे वा यक्षमालिखेत् । श्यामं चतुर्भुजं हस्तयुग्मेन रचितांजलिम् ५६
पराभ्यां दधतं मूर्ध्नि धर्मचक्रमृजुस्थितम् । जिनबिंबोर्धमूर्धाने ह्येकछत्रसमान्वितम् ॥ ५७ ॥
दीपदंडादिसंयुक्तं नानालंकरणान्वितम् । हस्तिपृष्टसमारूढं सर्वज्ञाख्यामयुं लिखेत् ॥ ५८ ॥
अशोकासननानिर्यासचंपकाम्रकदंबकाः । पूगवंशादयोन्येपि दंडस्य भवभूरुहाः ॥ ५९ ॥
सादायायाममानार्धं त्रिभागं वा चतुर्थकम् । ध्वजदंडस्य मानं तद्यथाशोभं प्रकल्पयेत् ॥६०॥
प्रासादस्योर्ध्वतुर्यांशे वेदिका वेदिकस्थितम् । आधारं धनदंडस्य यथोक्तं परिकल्पयेत्॥६१॥
अथ मंडलमभ्यर्च्य संक्षेपाद् ध्वजदेवता । प्रतिमाप्यानादिसिद्धमंत्रेणाष्टोत्तरं शतम् ॥ ६२ ॥
स्वधिवास्य ध्वजं स्तुत्वा तन्मंत्रेण घृतादिभिः । अशोकाश्वत्थवत्राद्यदर्भमालाभिवेष्टितम् ६३
ध्वजदंडं समभ्यर्च्य ध्यात्वा रत्नत्रयात्मकम् ।तच्चूलिकां तथैवाभिषिच्य धीशक्तिरूपिणीं६४
संचिंत्य मंडपपुरो गर्ते शाल्यादिपूरिते । पूजिते दधिदूर्वाद्यैस्तदूर्ध्वं स्थापयेद् दृढम् ॥ ६५॥

अशोक चंपा आम कदंब सुपारी वंश आदिके वृक्ष चिन्हित करे ॥ ५४ से ५९ ॥ धजाके दंडेका प्रमाण शोभाके अनुसार होना चाहिये ॥ ६० वह प्रमाण मंदिरकी ऊंचाईसे चौथाई हो तो अच्छा है । और वेदीके ऊपर भी धुजा चढाना चाहिये ॥ ६१ ॥ उसके बाद धुजाके मंडल और प्रतिमाकी स्तुतिकरके अनादिमंत्र (णमोकार मंत्र)को एकसौ आठवार जपकर धुजाको दंडमें लगाके " ओं नमो " इत्यादि ध्वजारोपणमंत्रको बोल शुभ लग्नमे शिखरमें

ध्वजश्च तुर्यसघंषु तत्र संयोज्य संध्वजम् । ध्यात्वा सर्वगतज्ञानरूपमर्घेण मानयेत् ॥ ६६ ॥
तस्त दंडमुद्धृत्य प्रासादं परित श्रिया । महत्या भ्रमयित्वा त्रिः सुलग्ने मंत्रमुच्चरन् ॥ ६७ ॥

ओं नमो अरहताण स्वस्ति भद्र भवतु मर्वलोकस्य शातिर्भवतु स्वाहा । ध्वजारोपणमत्र ॥

हिरण्यपयसाकीर्णे तस्याधारे समर्च्य च । प्रतिपर्व ध्वजं मुंचेत् तैर्मंत्राभिमंत्रितैः ॥ ६८ ॥
प्रासाद्य सप्तधान्यौघविरूढकफलोत्करैः । स्नपयित्वार्चितं नव्यैः सद्वस्त्रैः परिधापयेत् ॥६९
यावंतः प्राणिनः केतौ लग्नाः कुर्युः प्रदक्षिणाम् । तावंतः प्राप्नुवंत्यत्र क्रमेण विमलं पदम् ७०
मुक्ते प्राचीं गते केतौ सर्वकामानवाप्नुयात् । उत्तराशां गते तस्मिन् स्वस्यारोग्यं च संपदः ७१
यदि पश्चिमतो याति वायव्ये वा दिशाश्रये । ऐशाने वा ततो वृष्टि कुर्यात्केतुः शुभानि सा ७२
अन्यस्मिन् दिग्विभागे तु गते केतौ मरुद्वशात् । शांतिकं तत्र कर्तव्यं दानपूजाविधानतः ७३

बांधे ॥ ६२ से ६७ ॥ उस धुजामें यक्षकी मूर्ति बनाके उसका फलआदिसे सत्कार करे । फिर धुजाकी परिक्रमा दे । धुजाके कार्य करनेमें जितने प्राणी सहायता करते हैं वे सब परंपरासे निर्दोष पदवीको पाते है ॥ ६८ । ६९ । ७० ॥ धुजा छोड़ने पर पूर्व दिशाकी तरफ जावे तो वह धुजा सब इष्ट कार्योंको सिद्ध करती है ॥ ७१ ॥ पश्चिमादिशामें, तथा वायव्य व ईशानदिशामें फहरानेसे वह धुजा कल्याण करने वाली होती है ॥ ७२ ॥ अथवा हवाके निमित्तसे अन्य बची हुई दिशाओंमें लहरानेसे दान पूजा विधिसे शांति कर्म करना चा-

कलशादुच्छ्रिते हस्तं ध्वजे नीरोगता भवेत् । द्विहस्तमुच्छ्रिते तस्मात्पुत्रर्द्धिर्जायते परा ॥ ७४॥
त्रिहस्तं सस्यसंपत्तिर्नृपवृद्धिश्चतुःकरम् । पंचहस्तं सुभिक्षं स्याद्राष्ट्रवृद्धिश्च जायते ॥ ७५ ॥
अंबरेण कृतो यः स्याद् ध्वजः सम्यक् समंततः । सोतिलक्ष्मीप्रदो राज्ये यशःकीर्तिप्रतापदः
भूपालबालगोपालललनानां समृद्धिकृत् । राज्ञां सुखार्थदायी च धान्यैश्वर्यजयावहः ॥ ७६ ॥

अत्र विधिपूजितस्य यागमंडलस्याग्रतो वेदिकातले पूर्वस्यां दिशि ध्वजमवस्थाप्य तद्देवतामित्थं प्रतिष्ठयेत् । ओं ह्रीं सर्वाह्ण यक्ष एहि २ संवौषट् । अनेन पुष्पांजलिं क्षिप्त्वा आवाहयेत् । ओं ह्रीं सर्वाह्णयक्ष अत्र तिष्ठ २ ठ ठ । अनेन तद्वत्स्थापयेत् । ओं ह्रीं सर्वाह्णयक्ष अत्र सन्निहितो भव भव वषट् । अनेन तद्वत्संनिधापयेत् । ततः सर्वौषधिविमिश्रतीर्थोदकपूर्णान् कलशान् पुरः संस्थाप्यामृतादिमंत्रेण तज्जलमभिमंत्र्य ध्वजालिखितयथाभिमुखं पर्णं स्थापयित्वा गंधाक्षतपुष्पादीन् मंगलोपकरणानि चाग्रे व्यवस्थाप्य ओं ह्रीं सर्वाह्णयक्ष इदं स्नपनमर्चनं च गृहाण । ओं स्वस्ति भद्रं भवतु स्वाहेति

हिये ॥ ७३ ॥ मंदिरकी शिखरके कलशोंसे एक हाथ ऊंची धुजा आरोग्यताको करती है, दो हाथ ऊंची पुत्रादि संपत्तिको, तीन हाथ ऊंची धान्यसंपत्तिको चार हाथ ऊंची राजाकी वृद्धि, पांच हाथ ऊंची सुभिक्षको तथा राज्यवृद्धिको करती है ॥ ७४ । ७५ ॥ अबरखकी बनाई धुजा अत्यंत लक्ष्मीकी देनेवाली तथा राज्यमें यशको फैलानेवाली होती है और राजा प्रजा सबको सुखदाई है ॥ ७६ । ७७ ॥ यहांपर विधिसे पूजित यागमंडलके आगे

मन्त्रमुच्चार्य तं दर्पणप्रतिबिंबितयक्ष तज्जलैरभिषिच्य गधादिभिश्चार्चयित्वा मुखवस्त्र दत्वा नयनोन्मी-
लन सुमुहूर्ते कुर्यात् । इति ध्वजदेवताप्रतिष्ठाविधानम् ।

एवं कृत्वा ध्वजारोह पुण्यं प्राप्याद्भुतं कृती। भुक्त्वा तथादिसुभगः श्रेयोनिर्वृतिमश्नुते ॥७८॥

इति ध्वजारोपणविधानम् ।

प्रासादप्रतिमे अनेन विधिना ये कारयित्वार्हतां
भक्त्यानिह्नुतशक्तयो विदधते नित्याभिषेकादिकान् ।

वेदीके नीचे पूर्व दिशामें धुजाको रख उसमे चिन्हित यक्ष देवको इसप्रकार प्रतिष्ठित करे। "ओं" इत्यादि बोलकर आवाहन स्थापन सन्निधीकरण करे । उसके बाद सर्वौषधीसे मिलेहुए जला-शयके जलसे भरे कलशोंको आगे रख अमृतादि पूर्व कथितमंत्रसे उस जलको मंत्रितकर धुजाके आगे लिखे हुए पत्तेको रख चंदन अक्षत पुष्पोंसे "ओं ह्रीं" इत्यादि मंत्र बोलता हुआ दर्पण-में स्थित यक्षके आकारकी पूजा शुभ मुहूर्तमें करे । यह धुजाकी प्रतिष्ठाविधि कही गई है ॥ इस रीतिसे धुजारोहण करता हुआ बुद्धिमान पुरुष महान पुण्यका उपार्जन करके तथा पुण्यफल भोगके मोक्षसुखको पाता है ॥ ७८ ॥ यह धुजा चढ़ानेकी विधि पूर्ण हुई । मोक्षके इच्छुक जो भव्यजीव अर्हंत जिनका मंदिर और प्रतिमाको तयार कराके अपनी

पूजाज्ञा विभवाधिपत्यमहिमोदग्राः शिवाशाधरा-
स्ते भुक्त्वा पदवीर्भजति परमानंदैकसांद्रं पदम् ॥ ७९ ॥

इत्याशाधरविरचिते प्रतिष्ठासारोद्धारे जिनयज्ञकल्पापरनाम्नि अभिषेकादिविधानीयो नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

शक्तिको न छिपाकर भक्तिसहित प्रतिदिन अभिषेक पूजा करते हैं वे उत्तम भोगोंको भोगकर परमानंद स्वरूप मोक्ष पदको पाते हैं ॥ ७९ ॥

इसप्रकार पं० आशाधर विरचित प्रतिष्ठासारोद्धारमें अभिषेकादि
विधिको कहनेवाला पांचवां अध्याय समाप्त हुआ ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

अथ सिद्धप्रतिमादिप्रतिष्ठाविधानान्यभिधास्यामः—

आचार्यो मंडपे रम्ये सद्वेद्यां चूर्णसत्तमैः । स्वस्वमंडलमालिख्य संपूज्य तिलकद्रवैः ॥ १ ॥
हेमादिपात्रे हेमादिलेखन्या यंत्रमुद्धृतम् । तन्मध्ये न्यस्य जात्यादिपुष्पैरष्टोत्तरं शतम् ॥ २ ॥
स्वस्वमंत्रेण संजप्य निविश्योत्तरमंडपे । वेद्यास्नपनपीठेर्चां धूलीकुंभेन पूर्ववत् ॥ ३ ॥
स्नपयित्वा मंगलादिद्रव्यसदर्भगर्भितैः । तीर्थांबुसंभृतैः कुंभैर्मु ? पल्लवैः ॥ ४ ॥
दधिदूर्वाक्षतकुशस्रक्चित्रैर्मंत्रसंस्कृतैः प्रापय्याकरशुद्धिं प्राक् यंत्रस्योपरि विष्टरे ॥ ५ ॥
.. ..कीर्त्य तस्यामारोप्य तद्गुणान । आवाहनादिकं कृत्वा तां युंज्यात्तन्मयीं स्मरन् ॥

अथ सिद्ध आदिकी प्रतिमाकी प्रतिष्ठाविधिको कहते हैं । प्रतिष्ठाचार्य सुंदर मंडपकी सुंदर वेदीमें उत्तम चूर्णसे अपने २ मांडले लिखकर पूजे । फिर घिसे हुए चंदन या कुंकुसे सोनें आदिके पात्रमें सोने आदिकी सलाईसे यंत्र लिखकर उसमें एकसौ आठ चमेलीके पुष्पोंको रख अपने २ मंत्रसे मंत्रित करे । फिर उत्तर मंडपमें वेदीके अभिषेकके सिंहासनपर प्रतिमाको रख जलादिसे अभिषेक पहलेकी तरह करे । ॥ १ । २ । ३ । ४ । ५ ॥ उसके बाद उस प्रतिमामें उसके गुणोंका स्थापनकर तन्मयी स्मरण करता हुआ आवाहना-

तिलकेन मुखमेधिवास्य व्यक्तास्यलोचनं । ततोऽभिषिंच्य चाभ्यर्चेत्ततः कुर्यात् क्रियाधिकम्

ततो विशेष ।

ज्ञानादिविधिमाधाय सिद्धचक्रं यथागमम् । उद्धृत्य वेदिकापीठे न्यस्य श्रीचदनादिभिः ॥८॥
संपूज्य सिद्धमात्मानं ध्यायन्नष्टोत्तरं शतम् । जातीपुष्पैर्जपेन्मूलमंत्रेण ज्ञानमुद्रया ॥ ९ ॥

ओंकाराधो त्रिभागी वलयनन्यस्तमूर्द्धाग्निमद्रं
ह्रीं पिंडात्मादितोनाहतममृतपृषत्स्यंदिनालं लिखित्वा ।
अस्यौसेत्यौ नयो युक् सकलशशिधृतं तद्बहिस्तद्बहिस्तु
संज्ञानालोकचर्या बलतप इति चानादिसंसिद्धमंत्रः ॥ १० ॥
तद्बाह्याथ स्वरोयं वसुदलकमलं चांतरे तद्दलाना–
मों ह्रीं श्रीं हूं मुखांत्यानिलवियदमुखा शेषवर्गैश्च युक्तम् ।

दि करे ॥ ६ ॥ फिर शुभ लग्नमें तिलकविधि मुखोद्घाटन नेत्रोन्मीलन आदि पूर्वोक्त क्रिया करके अभिषेकपूर्वक पूजा करे ॥ ७ ॥ यहां एक क्रिया विशेष है कि ज्ञानादिविधि करके शास्त्रके अनुसार सिद्धचक्रको चंदनादिसे वेदीपर लिखकर पूजके सिद्ध आत्माका ध्यान करता हुआ ज्ञानमुद्रासे एकसौ आठ चमेलीके फूलोंसे जाप करे ॥ ८ । ९ ॥ "ओंकारा" इत्यादि तीन श्लोकोंमें कही गई विधिके अनुसार सिद्धचक्र बनावे ॥ १० । ११ । १२ ॥

विन्यस्यानाहतेंते शिरसि विरहितं चांतरालेषु चाद्यं
पंचानां सतायनां वलयतु कुशलः क्रोंरुधामा ययाग्निः ॥ ११ ॥
पत्रांतर्मंत्रपूर्वैर्जिनवितनुचतुस्तीर्थसंमेधचक्र-
पादू वाक्यैर्ण...ततनुमयानाहतग्रंथनाद्यैः ।
स्वस्वस्थानस्थिताशेषमुपरि द्धतं सप्तकं वारकं वा
रवर्णां ब्रह्माण च स नग्रहमवनिष्टतं सत् करि रं करोति ॥ १२ ॥

इति बृहत्सिद्धचक्रोद्धरणम् ।

सामी सार्धेंदुशीर्ष अ ... ... ।
पेतोद्यसारं विनयमुखगुरूद्दिष्टवर्णाविशिष्टं
मंत्रेद्धां सैद्धचक्रं विदधतु सुधियोध्यात्ममध्यात्मबुद्धाम् ॥ १३ ॥

ओं ह्रीं श्रीं अर्हं अ सि आ उ सा इदं वारि गधं.. .... ।

ऊर्ध्वाधो रयुतं सबिंदु सपर ब्रह्मस्वरावेष्टित
वर्गापूरितदिग्गतांबुजदलं तत्संधितत्त्वान्वितम् ।

यह बृहत्सिद्धचक्रका उद्धार हुआ । "सामी" इत्यादि श्लोकमें कथित रीतिसे लघु सिद्ध-चक्र बनाके "ओं" इत्यादि बोलकर जलादि चढावे ॥ १३ ॥ "ऊर्ध्वाधो" इत्यादिमें

अंतःपत्रतटेष्वनाहतयुत ह्रींकारसंवेष्टितं

देवं ध्यायति यः स मुक्तिसुभगो वैरीभकंठीरवः ॥ १४ ॥

इति लघुसिद्धचक्रोद्धरणं । अत्रायं मंत्रः । ओं अर्ह अ सि आ उ सा ह्रीं अर्ह स्वाहा । शेषं पूर्ववत् ।

ततोभिषिच्य तीर्थांभःकुंभैः प्रागुक्तकल्पनैः । गुणैरिवार्चामष्टाभिः सिद्धस्तोत्रं पुरो हितम् ॥ १५ ॥

पठित्वा तद्गुणारोपमभ्टत्यापाद्य तां स्मरन् । साक्षात्सिद्धं तिलकयेच्चंदनेन सहेदुना ॥ १६ ॥

आकारशुद्धिं कृत्वा यस्यानुग्रहेत्यादि सिद्धस्तोत्रमधीत्य प्रतिमोपरि पुष्पाजलिं क्षिपेत् । ततः—

आकारैर्वियुतं युतं च युगपन्निध्यातृबोद्धस्फुटं

विश्वं स्वाभिनिवेशसौम्यमसमानंदैकसंवेदनं ।

स्वस्वादक्षसमक्षमाक्षयतमस्थामावगाहोत्तमं

भात्वत्रागुरुलघ्वनंतगुणमप्यष्टात्ममैद्धं वपुः ॥ १७ ॥

कहे गये सिद्धचक्रका उद्धार करके " ओं " इत्यादि मंत्रका जाप करे ॥ १४ ॥ यह लघु-सिद्धचक्रका उद्धार हुआ । शेष विधि पहलेकी तरह करे । फिर सिद्ध प्रतिमाका जलसे भरे हुए घड़ोंसे अभिषेक कर आठ गुणोंको स्मरण करता हुआ तिलक विधि करे ॥ १५।१६ ॥ आकारशुद्धि करके " यस्यानुग्रह " इत्यादि पूर्व कथित सिद्ध स्तोत्रका पाठ करके प्राति-

एतत्पठन्नर्चां ममतात् परामृशेत् । गुणारोपणम् । ओं ह्रीं णमो सिद्धाण सिद्धपरमेष्ठिभ्यो नमः अत्रागच्छ । ओं ह्रीं तिष्ठ २ ठ ठ स्वाहा । ओंह्रीं मम सन्निहितो भव २ वषट् स्वाहा । आवाहनादिमन्त्र । अ सि आ उ सा सिद्धाधिपतये नमः । तिलकमत्र ।

ततश्च मुखवस्त्रादिविधीन् कृत्वा त्वर्हत् क्रियाम् । सिद्धभक्त्यैवमाचार्याद्यर्चान्यासेपि कल्पयेत्॥

ओं ह्रीं सिद्धाधिपतये मुखवस्त्रं ददामीति स्वाहा । मुखवस्त्रमत्र । ओं ह्रीं सिद्धाधिपतये मुखवस्त्रमपनयामीति स्वाहा । श्रीमुखोद्धाटनमंत्रः । ओं ह्रीं सिद्धाधिपतये प्रबुध्यस्व २ ध्यातृजनमनासि पुनीहि पुनीहीति स्वाहा । नेत्रोन्मीलनमत्र. । ओं ह्रीं सिद्धाधिपतिं तीर्थोदकेनाभिषिंचामीति स्वाहा । तीर्थोदकस्नपनम् । ओं ह्रीं पुंड्रेक्षुप्रमुखरसैरभिषिंचामीति स्वाहा । रसस्नपन । ओं ह्रीं हैयंगवीनघृतेन स्नपयामीति स्वाहा । घृतस्नपनम् । ओं ह्रीं धारोष्णगव्यक्षीरपूरेणाभिषुणोमीति स्वाहा । दुग्धस्नपन । ओं ह्रीं जगन्मगलेन दध्ना स्नपयामीति स्वाहा । दधिस्नपन । ओंह्रीं दिव्यप्रभूतसुरभिकषायद्रव्यकल्ककाथचूर्णैरुपस्करोमीति स्वाहा । उद्वर्तनादिविधानम् । ओं ह्रीं विचित्रपवित्रमनोरमफलैर-

---

माके ऊपर पुष्पांजलि क्षेपण करे । उसके बाद " आकारै " इत्यादि बोलकर प्रतिमाका चारोंतरफसे स्पर्श करे ॥ १७ ॥ " ओं ह्रीं " इत्यादि मंत्रसे आवाहनादि करे " असि " इत्यादि तिलकमंत्रसे तिलकदान विधि करे । उसके बाद मुखोद्घाटन नेत्रोन्मीलन सिद्धभक्ति आदि विधी करे । इसीतरह आचार्य आदिकी भी प्रतिमास्थापनामें पूर्वकथित

वतारयामीति स्वाहा । फलावतारणं । ओं परमसुरभिद्रव्यसंदर्भपरिमलगर्भतीर्थांबुसपूर्णसुवर्णकुंभाष्टकतो-येन परिषेचयामीति स्वाहा । कलशाष्टकाभिषेकः । एष मंत्र आकरशुद्ध्यभिषेकेपि योज्यः । ओं ह्रीं परमसौमनस्यनिबंधनगंधोदकपूरेणाप्लावयामीति स्वाहा । गंधोदकस्नपनमंत्रः । ओं ह्रीं असि आ उ सा सिद्धाधिपतिं लोकोत्तरनीरधाराभिः परिचरामीति स्वाहा । तीर्थोदकमंत्रः । एवं हरिचंदनेप्यूह्यं मंत्राष्टकम् । हरिचंदन इव कलमक्षतपुंजाष्टकमंदारप्रमुखकुसुमदामार्द्धि निविधसान्नायाघनसारदशामुख-प्रदीपितदीपकाष्टकसुगंधद्रव्यसंयोजनाविशेषसंभूतध्वजधूपघटाष्टकबंधुरगंधवणरमप्रीणितबहिरंतःकरणम-हाफलस्तवकाष्टकजलादियज्ञा दूर्वादिभेदधिसिद्धार्थादिमंगमद्रव्यविनिर्तितमहार्घसत्कारोपचारैः परिचरा-मीति स्वाहा । जलाद्यर्घांतसपर्याविधानम् । तन क्रिया कृत्वाभिमतप्रार्थनार्थमिदं पठित्वा पुष्पांजलिं प्रकल्पयेत् ।

आयुर्दीर्घयतु व्रतं द्रढयतु व्याधीन् व्यपोहत्वयं
श्रेयांसि प्रगुणीकरोतु वितनोत्वासिंधु शुभ्रं यशः ।
शत्रून् शातयतु श्रियोभिरमयत्वश्रांतमुन्मुद्रय-
त्वानंदं भजतां प्रतिष्ठित इह श्रीसिद्धनाथः सताम् ॥ १९ ॥

क्रिया ५१ ॥ १८ ॥ " ओं " इत्यादि मंत्र बोलकर मुखोद्घाटन नेत्रोन्मीलन जलादि अभि-षेक पूजा आदि क्रिया करनी चाहिये । उसके बाद इष्ट प्रार्थनाके लिये " आयु " इत्यादि

ततश्च पूर्ववद्विसर्जनादिकमनुतिष्ठेत् इति सिद्धप्रतिष्ठाविधानम् । अथाचार्यप्रतिष्ठाविधानम् ।

गणभृद्वलयं वेद्यामभ्यर्च्य स्नपयेच्च तम्। पंचाचारान् स्मरेत्पंच कलशांश्चतुरः पुनः ॥ २० ॥
चतुरोत्रानुयोगांश्च .... नित्रीणि तन्मनाः ॥ २१ ॥
ततो महर्षिस्तवनं पठित्वा चतुरो विधीन्। कृत्वा तिलकयेत्साक्षात्सूर्यादीन् प्रतिमां स्मरन्॥२२
मुखवस्त्रादिकर्माणि विधाय च विधिं ततः। क्रियाकांडोदितां कृत्वा यथावद्विधिमाचरेत् ॥२३॥

अथ गणधरवलयमनुशिष्यते । पूर्वं षट्कोणचक्रे क्ष्माबीजाक्षरं लिखेत् तदुपरि अर्हं इति न्यसेत् तस्य दक्षिणतो वामतश्च ह्रीं विन्यसेत् पीठादधः श्रीं न्यसेत् । ततः ओं अ सि आ उ सा स्वाहेत्यनेन श्रीकारस्य दक्षिणतः प्रभृत्युत्तरतो यावत्प्रादक्षिण्येन वेष्टयेत् । ततः कोणेषु षट्स्वपि मध्ये अप्रतिचक्रे फडिति सव्येन स्थापयेत् । तथा कोणांतरालेषु विचक्राय स्वाहेति षड्बीजानि झौंकारोत्तराणि अपसव्ये

श्लोक पढकर पुष्पांजलि क्षेपण करे ॥ १९ ॥ फिर पूर्वकी रीतिसे विसर्जन आदि करे। यह सिद्धप्रतिमाकी प्रतिष्ठा विधि कही गई ॥ अब आचार्यप्रतिष्ठाकी विधि कहते हैं। बुद्धिमान् गणधर वलय (चक्र) को वेदीमें स्थापन कर पांच कलशोंसे स्नपन करे और दर्शनाचार आदि पांच आचारोंको स्मरण करता हुआ उस चक्रकी पूजा करे ॥ २० ॥ फिर चार अनुयोगोंका चिंतवन करके महर्षिस्तवन पढके तिलकादि क्रिया करे ॥ २१।२२ २३ ॥

विन्यसेत् । तद्बहिर्वलय कृत्वाष्टसु पत्रेषु णमो जिणाण, णमो, ओहिजिणाणं णमो कुट्ठबुद्धीणं, णमो बीजबुद्धीण, णमो पदाणुसारीण—इत्यष्टौ पदानि क्रमेण लिखेत् । ततस्तद्बहिस्तद्वत् षोडशपत्रेषु णमो संभिण्णसोदाराणं, णमो पत्तेयबुद्धाण, णमो सयं बुद्धाण, णमो बोहियबुद्धाण, णमो उजुमदीण, णमो विउलमदीणं, णमो दसपुव्वीणं, णमो अट्ठगमहाणिमित्तकुसलाण, णमो विउव्वणइड्ढिपत्ताण, णमो सिज्जाहराण, णमो चारणाणं, णमो समणाण, णमो आगासगामीणं, णमो आसिविसाणं, णमो दिट्ठिविसाण—इति षोडशपदानि विलिखेत् । ततस्तद्बहिस्तद्वच्चतुर्विंशतिपत्रेषु णमो घोरगुणपरक्कमाणं, णमो घोरगुणवंभयारीणं, णमो आमोसहिपत्ताण, णमो खेल्लोसहिपत्ताणं, णमो जल्लोसहिपत्ताण, णमो विडौसहिपत्ताणं, णमो सव्वोसहिपत्ताण, णमो मणवलीण, णमो वचिवलीणं, णमो कायवलीणं, णमो खीरसवीण, णमो सप्पिसवीणं, णमो महुरसवीण, णमो अमियसवीणं, णमो अक्खीणमहाणसाण, णमो वड्ढमाणाणं, णमो लोए सव सिद्धायदणाण, णमो भयवदो महदि महावीर वड्ढमाण बुद्धिरिसीणं । चतुर्विंशतिपदान्यालिख्य ह्रींकारमात्रया त्रिगुणं वेष्टयित्वा क्रौंकारेण निरुद्ध्य बहिः पृथ्वीमंडलं ह्रीं श्रीं अर्हं असि आउसा अप्रतिचक्रे फट् विचक्राय झ्रौं झ्रौं स्वाहा । अनेन मध्यपूजा विदध्यात् । णमो अरहताणं णमो जिणाण इत्यादि ह्रा ह्रीं ह्रू ह्रौ हः असि आउसा अप्रतिचक्रे झ्रौं

" अथ " इत्यादिसे कहे गये गणधरचक्रको बनावे । और पूर्वकी तरह आकरशुद्धि आदि क्रिया करके " निर्वेद " इत्यादि महार्षि स्तवन पढता हुआ आचार्य आदिकी प्रतिमाको

ह्रौ स्वाहा । एतेष्ट चत्वारः । अथ पूर्ववदाकरशुद्ध्यादिक कृत्वा निर्वेदेत्यादि महर्षिस्तवन पठन्नर्चा समतात्परामृष्य गुणारोपण कुर्यात् । ओं ह्रू णमो आइरियाण आचार्यपरमेष्ठिन्नत्र एहि २ संवौषट् ओ ह्रू तिष्ठ २ ठ २, ओं ह्रू मम सन्निहितो भव २ वषट् । तथा ओं ह्रीं णमो उवज्झायाण उपाध्यायपरमेष्ठिन्नत्र एहि २ सवौषट् ओं ह्रौ तिष्ठ २ ठ ठ, ओं ह्रौ सन्निहितो भव भव वषट् । तथा ओ ह्रः णमो लोए सव्वसाहूणं साधुपरमेष्ठिन्नत्र एहि २ संवौषट् । ओं ह्र. तिष्ठ २ ठ ठ, ओं ह्रः सन्निहितो भव २ वषट् । इत्याचार्यादीनामावाहनादिमंत्राः । ततश्च ओं ह्रू णमो आइरियाण धर्माचाराधिपतये नम. इत्यादिमंत्रैः सिद्धप्रतिमावत्तिलकादिविधीन् विदध्यात् । एवमुपाध्यायसाधुपरमेष्ठिनोरपि कल्प कल्पयेत् ॥ इत्याचार्यादिप्रतिष्ठाविधानम् । अथ श्रुतदेवतादिप्रतिष्ठाविधानम् ।

वेद्यां सारस्वत्यं यंत्रं विलिख्य तस्य शोधनम् । अनुयोगैरिवाचार्यैश्चतुर्भिस्तीर्थवार्घटैः॥२४
यंत्रेर्चा न्यस्य गां स्तुत्वा कृत्वा कर्मचतुष्टयम् ।... ...त यन्मूलमंत्रेणान्यं विधिं सृजेत्२५

स्पर्श करके उसमें गुणोंका स्थापन करे । फिर " ओ ह्रं " इत्यादि बोलकर आचार्य उपाध्याय सर्वसाधुका आवाहन आदि करे । उसके वाद " ओं ह्रं " इत्यादि मंत्रसे सिद्ध प्रतिमाकी तरह तिलक आदि विधि करे । यह आचार्य आदि धर्मगुरुकी प्रतिष्ठाविधि हुई ॥ अव सरस्वतीकी प्रतिष्ठा विधि करते हैं । प्रतिष्ठाचार्य वेदीमें सारस्वत यंत्र लिखकर उसको सामनेके दर्पणमें प्रतिबिंबित कर चार जलके घड़ोंसे अभिषेक करे । उस यंत्रमे सरस्वतीकी मूर्तिको रख स्तुतिपूर्वक पूजा करे तथा सरस्वतीमंत्रका जाप करे ॥ ॥ २४ । २५ ॥

अथ सारस्वतमंत्रमनुशिष्येत् । पूर्वे कर्णिकया ह्रींकारमालिखेद्बाह्ये हकारं सविसर्गसकारं च लिखित्वा ओं ह्रीं श्रीं वद २ वाग्वादिनि भगवति सरस्वति ह्रीं नमः इत्यनेन मूलमंत्रेण वेष्टयेत् । तद्बहिः पूर्वादिक्रमेण चतुर्षु ओं वाग्वादिन्यै नमः, ओं भगवत्यै नमः, ओं सरस्वत्यै नमः, ओं श्रुतदेव्यै नमः । इति चतुरख्या लिखेत् । तद्बहिरष्टसु पत्रेषु ओं नदायै नमः, ओं स्तंभिन्यै नमः इत्यादि चाष्टौ देवीर्लिखेत् । तद्बहिश्च षोडशपत्रेषु ओं रोहिण्यै नमः इत्यादि मंत्रैः षोडश विद्यादेवीः स्थापयेत् । ततः पूर्वाद्यष्टदिसु इंद्राय स्वाहेत्यादिमंत्रैरष्टौ दिक्पालान् विन्यसेत् । पूर्वेशानदिशोश्चान्तराले ओं अधोनागेभ्यः स्वाहेति नागान् विन्यसेत् । पश्चिमादिक्पालस्योपरिष्टाच्च ओं ऊर्ध्वब्रह्मणे नमः इति परमब्रह्म प्रतिष्ठयेत् । इंद्रादधश्च ओं ह्रीं मयूरवाहिन्यै नमः इति वागधिदेवता स्थापयेत् । ततस्त्रिर्मायामात्रया क्रौंकारेण निरुध्य तदावेष्टच्च बहिः पृथ्वीमंडलं विलिखेत् इति । अथ ओं ह्रीं श्रुतदेव्यः कलशस्नपनं करोमीति स्वाहा । इत्यनेन कलशानभिमंत्र्याकरं शोधयेत् । ततो बोधेनेत्यादि श्रुतदेवीस्तवनं पठित्वा प्रतिमोपरि पुष्पांजलिं क्षिपेत् ।

बारह अंगं गिज्जा दंसणतिलया चरित्तवच्छहरा ।
चोदसपुव्वहराणं ठावे दव्वाय सुयदेवा ॥ २६ ॥

अब सरस्वतीयंत्रका उद्धार दिखलाते है । पहले कर्णिका (बीचक भाग) में " ह्रीं " लिखे उसके बाहर " ह सः " लिखकर " ओं ह्रीं श्रीं वद २ वाग्वादिनि भग-

आचारं शिरसि सूत्रकृत् वक्त्रां तु कंठिका । स्थानेन समवायागव्याख्याप्रज्ञप्तिदोर्लताम् ॥ २७
वाग्देवतां ज्ञातृकथोपासकाध्ययनस्तनी । अंतकृद्दशसन्नाभि मनुत्तरदशां गतः ॥ २८ ॥
सुनितंबां सुजघनां प्रश्नव्याकरणश्रुतात् । विपाकसूत्रदृग्वादचरणांबरां ? ॥ २९ ॥
सम्यक्त्वतिलकां पूर्वचतुर्दश विभूषणाम् । तावत्प्रकीर्णकोदीर्णचारुपत्रांकुरश्रियम् ॥ ३० ॥
आप्तदृष्टप्रवाहौघद्रव्यभावाधिदेवताम् । परब्रह्म मथादृशां स्याद्वुक्ति भुक्तिमुक्तिदाम् ॥ ३१ ॥
सर्वदर्शनपाखंडदेवदैत्यं खगार्चिता । जगन्मातरमुद्धर्तुं जगदत्रावतारयेत् ॥ ३२ ॥

वति सरस्वति ह्रीं नमः" इस सरस्वतीमंत्रको चारों तरफ वेढे । उसके बाहर पूर्व आदि दिशाके क्रमसे चार पत्तोपर "ओं वाग्वादिन्यै नमः" इत्यादि चारोंको लिखे । उसके बाहर आठों पत्तोंपर "ओं नवायै नम." इत्यादि आठ देवियोको लिखे । उसके बाहर सोलह पत्तोपर "ओं रोहिण्यै नमः" इत्यादि सोलह विद्यादेवियोको लिखे । उसके बाद पूर्व आदि आठ दिशाओंमे "इंद्राय स्वाहा" इत्यादि मंत्रोंसे आठ दिक्पालोंको स्थापन करे । पूर्व और ईशान्य दिशाओंके बीचमें "ओं अधो नागेभ्यः स्वाहा" लिखकर नागकुमारकी स्थापना करे । पश्चिमदिशाके दिक्पालके ऊपर "ओं ऊर्ध्वब्रह्मणे नमः" ऐसा लिखकर परमब्रह्मकी स्थापना करे । इंद्रके नीचे "ओं ह्रीं मयूरवाहिन्यै नमः" लिखकर सरस्वती देवीकी स्थापना करे । उसके बाद तीनवार ईकारसे तथा क्रों से वेढकर बाहर पृथ्वीमंडल लिखे ॥ फिर "ओं ह्री" इत्यादि मंत्रसे कलशोंको मंत्रितकर

ओं अर्हन्मुखकमलवासिनि पापानि क्षय कर श्रुतज्वालासहस्रप्रज्वालिते सरस्वति मम पापं हन २ क्षां क्षीं क्षूं क्षौं क्ष. क्षीरवरधवले अमृतसंभवे व व हु स्वाहा। एतत्पठन् प्रतिमायां अंग-प्रत्यंगपरामर्शं कुर्यात्। गुणारोपण। ओं ह्रीं श्रीं अत्र एहि २ सवौषट्, ओं ह्रीं तिष्ठ २ ठ ठ, ओं ह्रीं सन्निहितो भव वषट्। आवाह्नादिमंत्रः। ततो मूलमंत्रेण तिलकं दत्वा पूर्ववदधिवासनाविधीन् विदध्यात्।

शुभे शिलादावुत्कीर्य श्रुतस्कंधमपि न्यसेत्। ब्राह्मीन्यासविधानेन श्रुतस्कंधमिह स्तुयात् ३३
सुलेखकेन संलिख्य परमागमपुस्तकम्। ब्राह्मीं वा श्रुतपंचम्यां सुलग्ने वा प्रतिष्ठयेत् ३४

आकरशुद्धि करे। उसके वाद "बोधन" इत्यादि श्रुतदेवीका स्तवन पढकर प्रतिमाके ऊपर पुष्पांजलि क्षेपण करे। उसके बाद "बारह" इत्यादि सात श्लोक तथा "ओ अर्ह" इत्यादि मंत्र बोलकर सरस्वतीप्रतिमाके अंगोका स्पर्श करे ॥ २६ से ३२ तक ॥ फिर गुणोका स्थापन करे। उसके वाद "ओ" इत्यादि मत्र बोलकर आवाहन आदि करे। उसके बाद मूलमंत्रसे तिलक देकर पूर्वरीतिके अनुसार अधिवासना आदि क्रियाओंको करे। उत्तम शिला आदिमें सरस्वतीकी मूर्ति खुदवाकर स्थापना करके स्तुति करे ॥ ३३ ॥ अथवा परमागमके शास्त्रोको अच्छे विद्वान् लेखकसे लिखवाकर श्रुतपंचमीके दिन शुभ लग्नमें सरस्वतीप्रतिष्ठा करे ॥ ३४ ॥

अत्र त्वाकारशुद्ध्यादिविधिमादर्शविंबिते । कुर्यादिति श्रुतस्कंधं स्तुयात्सूत्रोदितं स्मरेत् ॥३५॥
आचार्यादिगुणान् शस्य सतां वीक्ष्य यथायुगम् । गुर्वादेःपादुके भक्त्या तन्न्यासविधिना न्यसेत्
घटयित्वा जिनगृहे तत्प्रतिष्ठामहोत्सवे । निषेधिकां प्रतिष्ठाप्य रक्षकांगो जनावनौ ॥ ३७ ॥
नीत्वा निवेशयेदत्र पठित्वाराधनास्तवम् । ध्यायेत् प्रसिद्धं संन्यासं समाधिमरणादिषु॥३८
बहिरेवाथ निर्माप्य तां स्वस्थाने निवेशिताम् । स्वयं जप्त्वा प्रियं वार्हत्प्रतिष्ठातिलकक्षणे॥३९
प्रापय्य तिलकं तत्र गत्वा शेषविधिं स्वयम् । कुर्यादिंद्रः सः ततः संघः कुर्याद्यथागमम् ४०
तत्रैव वा प्रतिष्ठोक्तविधिं सर्वं समासतः । कृत्वा प्रतिष्ठयेल्लग्ने तां वा वीरशिवक्षणे ॥ ४१ ॥

इति श्रुतदेवतादिप्रतिष्ठाविधानम् । अथ यक्षादिप्रतिष्ठा ।

यहांपर अभिषेक आदि क्रिया दर्पणमें प्रतिबिंबित करके करनी चाहिये । इस प्रकार जिनसूत्रकथित रीतिसे श्रुतस्कंधकी पूजा करे ॥ ३५ ॥ आचार्य आदिके गुणोंकी स्तुति करके गुरुकी पादुका (चरणयुगल) बनवाके उनकी स्थापना करे ॥ ३६ ॥ जिनमंदिरमें एक समाधिकी जगह बनावे वहां गुरुकी पादुकाओंको स्थापन करके उनके गुणोंका तथा समाधिमरणका चिंतवन करे ॥ ३७ । ३८ ॥ ३९ ॥ वहांपर तिलक आदि विधि वह इंद्र आप भी करे तथा अन्य श्रावकोंसे शास्त्रानुसार करावे ॥ ४० ॥ उस जगह यदि संक्षेप विधि करनी हो तो आगमके अनुसार सरस्वती आदिकी प्रतिष्ठा गुरुप्रतिष्ठाके समय तथा महावीर प्रभुके मोक्षकल्याणके दिन

यक्षादयो जिनार्चांकमस्तकास्तत्प्रतिष्ठया । प्रतिष्ठेयास्ततोन्येषा प्रतिष्ठाविधिरुच्यते ॥ ४२॥
अव्युत्पन्नदृशां शांतक्रूरैहिकफलांश्च ते । त प्रकाशार्थं मंत्रवादे स दर्शितः ॥४३॥
सत्पुष्पमंडपे रात्रौ पंचतीर्थजलोक्षिते । यक्षादिप्रतिबिंबे . ....धिवासयेत् ॥ ४४ ॥
अथो ह्रीं क्रों मुख स्थाप्यद्यात्राहनादिगर्भितम् । संवौषट् होमपर्यंतमंत्रं पद्मवरे लिखेत्४५
प्रकीर्णचूर्ण दर्भेण वेदिपृष्ठे तथाष्टसु । आदिदेवीतले ओंकारेषु चतुर्ष्वतः ॥ ४६ ॥
तेजोमायादिहोमांतान् लिखेत्पचदश क्रमात् । तिथिदेवान् ग्रह.. ... .पुरान् ॥ ४७ ॥
आयुधान्यष्ट तुर्ये तु पंचमं भूपरे लिखेत् । पत्रमंडलमभ्यर्च्य विधिवत्तं प्रतिष्ठयेत् ॥ ४८ ॥

ओं ह्रीं क्रौं सुवर्णवर्णवृषभवाहनपरशुफलाक्षमालावरदानांकितचतुर्भुजवृषचक्रधर्मचक्रालकृत-मस्तकगोमुखयक्षाय संवौषट् स्वाहेति मंत्र कर्णिकायामालिख्य तद्बहिरष्टसु पत्रेषु ओं ह्रीं क्रौं श्रियै

शुभलग्नमें करे ॥ ४१ ॥ इसतरह श्रुतदेवताकी प्रतिष्ठा विधि समाप्त हुई । अब यक्ष आदिकी प्रतिष्ठा कहते हैं । यक्ष आदिक देव भगवानकी प्रतिमाके रक्षक होते हैं इसलिये उनकी मूर्तिकी भी प्रतिष्ठा करे ॥ ४२ ॥ जो अज्ञानी हैं वे " शांत क्रूर इस लोकके फलके देनेवाले है " ऐसा समझकर उनकी पूजा प्रतिष्ठा करते हैं यह कथन मंत्रवाद शास्त्रोंमें दिखाया गया है ॥ ४३ ॥ यक्षादि देवोंकी प्रतिष्ठा पांच स्थानोंके जलसे प्रतिबिंबका अभिषेककर रात्रिमें करनी चाहिये ॥ ४४ ॥ " अथों " इत्यादि चार श्लोकोंमे कथित क्रियासे आवाहन आदि करे ॥ ४५ से ४८ ॥ "ओं"

संवौषट् स्वाहेत्यादि दिक्कुमारीमंत्रानष्टौ तद्बहिर्वलयातः, ओं ह्रीं क्रौं यक्षवैश्वानररक्षो नह्रतपन्नगासुरकुमारसंविश्वविद्यमालिचमरवैरोचनमहाविद्यमारोविद्येश्वरपिंडमुगाभिधानपचदशतिथिदेवान् सस्थापयामि स्वाहेति तिथिदेवा पंचदश तद्बहिर्वलयात , ओं ह्रीं क्रौं सूर्यसोमागारकसौम्यगुरुभार्गवशनिराहुकेतून् संस्थापयामि स्वाहेति ग्रहदेवान्नव तद्बहिर्मंडलात', ओ ह्रीं क्रौं किंनरेंद्रकिंपुरुषेंद्रमहोरगेंद्रगंधर्वेंद्रयक्षेंद्रराक्षसेंद्रभूतेंद्रपिशाचेंद्रान् सस्थापयामि स्वाहेति विलिखेत् । एवमडल वर्तयित्वा स्वस्वमंत्रैर्यक्षादिदेवान् जलगंधादिभिरभ्यर्च्य कलशाष्टकादिभिर्वेदीं भूषयेत । अथ स्नपनमडपे ता प्रतिमामानीय दर्भप्रस्तरे धान्यप्रस्तरे वा स्थापयित्वा क्रमेण स्नापयेत् । ततस्तत्रैव वेदिकाया नवकलशान् सर्वालंकारोपेतान् सर्वौषधिसमिश्रशुद्धयत्रमंत्रान्विततीर्थजलपरिपूर्णान् शालिप्रस्तरोपरि लिखितमायावीजा सलेख्य तत्पश्चिमभागे स्नपनपीठ स्थापयित्वा प्रक्षाल्यालकृत्य तदुपरि भुवनाधिपतिं लिखित्वा अक्षतपुष्पदर्भान् विरचय्य तत्तत्प्रतिमा तत्र संस्थापयित्वा पचोपचारविधिनाभ्यर्च्य बाहनाष्टकलशैर्मत्रपूर्वकमभिषिच्य चतुर्नीराजन कृत्वा पुष्पाजलिपूर्वकमेकादशमभिषेक मध्यकलेशनामृतमत्रेण कुर्यात् ।

तेजोमायादिकारुयानं क्रियान्वितम् । तत्तत्पल्लवसंयुक्तं करोम्यंतपदं स्मरेत् ॥ ४९ ॥

इत्यादिमे कथित विधिसे पूजा करे । अमृतमंत्रसे यक्षप्रतिमाका अभिषेक करे । " तेजो " इत्यादि बोलकर " अथैव " इत्यादिसे कही हुई विधिसे स्थापना करे ॥ ४९ ॥ इसीप्रकार

अथैवमाकारशुद्धिं विधाय मूलवेद्या नवधौतवस्त्रसदर्भाक्षतपुष्प प्रस्तीर्य तत्र तत्प्रतिमा निवेश्याभ्यर्च्य कांडाग्रदूर्वाग्रेण प्रोक्षणं विधाय शांतिहोमं यक्षमंत्रेण कृत्वा पुण्याहं घोषयित्वा पूर्वोक्तविधिना सुमुहूर्ते तिलकं दद्यात् ततोधिमानादिविधिं विधाय वस्त्राभरणमाल्यादिभिरभ्यर्च्य विसर्जनादिकं कुर्यात् । ततः प्रभृति च तानि सपूजयेत् ।

एष एव च शेषाणां यक्षाणां स्थापनाविधिः । यक्षीणां च मितः··· भेदाश्रयो भवेत्५०
क्षेत्रपालं कर्णिकायां मंत्रपत्रायुधादिभिः । सचूर्णवेद्यामालिख्य पत्रेष्वष्टसु संलिखेत् ॥५१॥
समंत्रान दिक्पतीनिंद्रादधोभागानुपर्यपि । वरुणस्य लिखेत्सोमं मायोर्बाभ्यां च वेष्टयेत ५२
तत्पद्मं पूजयेद्गंधपुष्पधूपाक्षतादिभिः । अथ तत्प्रतिमां रात्रिमुषितां दर्भसंस्तरे ॥ ५३ ॥
तीर्थांबुस्नापितां तत्र निवेश्यारोप्य तद्गुणाम् । आवाहनादि कृत्वा च सूत्रयुक्त्या प्रतिष्ठयेत् ५४

ओं ऱ्हां क्रौं घोराधकारसप्रभमडलगदाधारणव्यग्रोग्रचतुर्भुज अत्र क्षेत्रपालाय सवौषट् स्वाहेति कर्णिकायामालिख्य पूर्वादिदलेष्वष्टसु । ओं ऱ्हीं इंद्राय स्वाहेत्यादिक्रमेण दिक्पालान् संस्थाप्य इद्राध' ओं ऱ्हीं नागेभ्यः स्वाहेति वरुणादूर्ध्वे च ओं ऱ्हीं सोमाय स्वाहेति विन्यस्य बहिर्मायामात्रया त्रिःपरिक्षिप्य क्रौंकारेण निरुध्य भूमंडलेन वेष्टयेदिति मडलवर्तनम् ।

यक्षी क्षेत्रपाल वरुण आदिकी प्रतिष्ठा "एष" इत्यादि पांच श्लोकोंमें कथित रीतिसे

द्रप्यनूर्ध्वभुजा धृतासिफलकः सव्येन राहासितं
श्वानं सिंहसमं करेण भयदामन्येन विभ्रद्दाम् ।
नागालंकरणः किलाशु डमरुकारावोल्वणांघ्रिक-
सेखतर्धरमत्रयोस्त्यधिकृतः क्षेत्रे स साक्षादयं ॥ ५५ ॥

ओं ह्रीं नियुक्तक्षेत्रपाल अत्रावतरावतर सवौषट् आवाहनं, ओं ह्रीं अत्र तिष्ठ २ ठ २ स्थापन, ओं ह्रीं मम सन्निहितो भव २ वषट् सान्निधापनम् । ततः सूत्रोक्तविधिना तिलकं दत्वा धिवासनादिकं कृत्वा सद्वस्त्रभूषादिभिः सत्कुर्यात् । इति यक्षादिप्रतिष्ठाविधानम् । अथ पत्रादिप्रतिष्ठा ।

श्रीचंदनादिवेद्यां तु पट्टादौ सम्यगुद्धृतम् । सिद्धचक्रादि संपूज्य तत्पत्रं पुष्पमंडपे ॥ ५६ ॥
मंगलद्रव्यसर्वौषधपुन्मिश्रतीर्थवारिणि । निशामुषितमानीयं निवेश्य स्नपनमंडपे ॥ ५७ ॥
आप्लाव्य दुग्धदध्याज्यैः प्राग्वन्मंत्राभिमंत्रितैः । प्रक्षाल्य मृत्स्ना श्रीखंडं तीर्थपाथोभिरादरात्

करे ॥ ५० से ५४ ॥ " ओं ह्रां " इत्यादि कथित रीतिसे मांडला बनावे । "द्रप्य" इत्यादि श्लोक तथा " ओं ह्रीं " बोलकर क्षेत्रपालका आवाहन आदि करे ॥ ५५ ॥ उसके बाद जिनशास्त्र कथित विधिसे तिलक देकर अधिवासना करके उत्तम वस्त्र आभूषणादिकोंसे सत्कार करे ॥ यह यक्षादि प्रतिष्ठाकी विधि हुई । अब तांबे आदिके खुदे हुए पत्रोंकी प्रतिष्ठा विधी कहते हैं । चंदन आदिकी बनी हुई वेदीमें पटे पर सिद्धचक्र आदिकी पूजा करे ॥ ॥ ५६ ॥ फिर मंगलद्रव्य सर्वौषधिसे मिले हुए जलाशयके जलसे अभिषेक करे ॥ ५७।५८ ॥

पूर्वपूजितचक्राग्रे न्यस्य ध्यात्वा च तन्मयम्। तत्प्रक्षालनमादाय तत्स्थाने न्यस्य तेन तत्॥५९
संस्नाप्य सुमुहुर्तैंतभूंतत्वे विस्तीडया । मूलमंत्रं प्रजपते स्थापयेच्चंदनद्रुना ॥ ६० ॥
ततोऽभिषिंच्य संपूज्य महार्घेणाभिराध्य तत्। कुर्याच्छेषविधिर्नित्यं पूजयेच्च तदादि तत्। ६१।
चित्रादिर्वा प्रतिष्ठायामपि योज्योल्पशो विधिः। स एवाकरशुद्ध्यादिविधिः कुर्यात्तु दर्पणे६२॥
अक्षादिस्थापना त्वद्य जिनादीनां न कारयेत्। प्रायो लोकः कलौ क्षुद्रः कल्पयत्यन्यथा हि ताम्
एकाशीतिपदं प्रार्च्य स्थाप्यमर्हत्स्वभाद्यपि । लोके जिनादि तच्चैत्यं निचितांशत्तु सस्मरेत्॥६४

एवं व्याससमासदर्शनपरं स्वोपज्ञधर्मामृत–
ग्रंथांगं जिनयज्ञकल्पमकरोदाशाधरः श्रेयसे ।

उसके वाद जिसका यंत्र हो उसके मूलमंत्रका जाप करे। जाप करनेके वाद अभिषेक पूर्व-क उस यंत्रकी पूजा करे। इसतरह प्रतिदिन पूजा करनी चाहिये ॥ ५९। ६०। ६१ ॥ चि-त्राम आदिकी अभिषेकविधि दर्पणमें प्रतिविंबित करके करनी चाहिये ॥ ६२ अर्हंत आदि मूर्तिकी तदाकार स्थापना करनी चाहिये । क्योंकि कलियुगमें मिथ्याती पुरुष विपरीत ही कल्पना कर डालते हैं । इसलिये चौपड़की तरह मूर्तिकी अतदाकार स्थापनाका निषेध किया गया है ॥ ६३ ॥ पूर्वकथित इक्यासी पत्रोंका यंत्र पूजाकर प्रतिमाकी स्थापना करनी योग्य है ॥ ६४ ॥ इसप्रकार विस्तारसे तथा मंक्षेपसे जिनप्रतिष्ठा आदिकी

एवं सम्यगधीत्य ये गुरुमुखाद्बुध्वा तदर्थं क्रिया
निर्मास्यंति सुमेधसो बुधनताः प्राप्स्यंति ते निर्वृतिम् ॥ ६५ ॥

इत्याशाधरविरचिते प्रतिष्ठासारोद्धारे जिनयज्ञकल्पापरनाम्नि सिद्धादि-
प्रतिष्ठाविधानीयो नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

विधिको कहनेवाले जिनयज्ञकल्प द्वितीय नामवाले प्रतिष्ठासारोद्धार ग्रंथको मुझ " आशाधरने " कल्याण होनेकेलिये किया है। जो भव्यजीव गुरुके मुखसे इसको पढकर इसकी क्रियायें करेंगे वे बुद्धिमान देवोंसे पूजित हुए परंपरासे मोक्षको पायेंगे ॥ ६५ ॥

इसप्रकार पं० आशाधर विरचित जिनयज्ञकल्प दूसरे नामवाले प्रतिष्ठासारोद्धारमें
सिद्ध आदिकी मूर्तिप्रतिष्ठाको कहनेवाला छठा अध्याय समाप्त हुआ ॥ ६ ॥

ग्रंथकर्तुः प्रशस्तिः ।

श्रीमानस्ति सपादलक्षविषयः शाकंभरीभूषण-
स्तत्र श्रीरतिधाम मंडलकरं नामास्ति दुर्गं महत् ।
श्रीरत्न्यामुदपादि तत्र विमलव्याघ्रेरवालान्वया-
च्छ्रीसल्लक्षणतो जिनेंद्रसमयश्रद्धालुराशाधरः ॥ १ ॥

सरस्वत्यामिवात्मानं सरस्वत्यामजीजनत् । यः पुत्रं छाहडं गुण्यं रंजितार्जुनभूपतिम् ॥२॥

व्याघ्रेरवालवरवंशसरोजहंसः काव्यामृतौघरसपानसुतृप्तगात्रः ।
सल्लक्षणस्य तनयो नयविश्वचक्षुराशाधरो विजयतां कलिकालिदासः ॥ ३ ॥

इत्युदयसेनमुनिना कविसुहृदा योभिनंदितः प्रीत्या ।
प्रज्ञापुंजोसीति च योभिमतो मदनकीर्तियतिपतिना ॥ ४ ॥

म्लेच्छेशेन सपादलक्षविषये व्याप्ते सुवृत्तक्षति-
त्रासाद्विंध्यनरेंद्रदोःपरिमलस्फूर्जत्रिवर्गौजसि ।
प्राप्तो मालवमंडले बहुपरीवारः पुरीमावसन्
यो धारामपठज्जिनप्रमितिवाक्शास्त्रे महावीरतः ॥ ५ ॥

आशाधरत्वं मयि विद्धि सिद्धं निसर्गसौंदर्यमजर्यमार्य ।
सरस्वतीपुत्रतया यदेतदर्थे परं वाच्यमयं प्रपंचः ॥ ६ ॥
इत्युपश्लोकितो विद्वद्बिल्हणेन कवीशिना । श्रीविंध्यभूपतिमहासांधिविग्रहिकेण यः ॥ ७ ॥
श्रीमदर्जुनभूपालराज्ये श्रावकसंकुले । जिनधर्मोदयार्थं यो नलकच्छपुरेऽवसत् ॥ ८ ॥
यो द्राग्व्याकरणाब्धिपारमनयच्छुश्रूषमाणान्न कान्
सत्तर्के परमास्त्रमाप्य नयतः प्रत्यर्थिनः कौक्षिपत् ।
चेरुः केऽस्खलितं न येन जिनवाग्दीपं पथि ग्राहिताः
पीत्वा काव्यसुधां मतश्च रसिकेष्वापुः प्रतिष्ठां न के ॥ ९ ॥
स्याद्वादविद्याविशदप्रसाद प्रमेयरत्नाकरनामधेयाः ।
तर्कप्रबंधो निरवद्यविद्यापीयूषपुरे वहतिस्म यस्मात् ॥ १० ॥
सिद्ध्यंकं भरतेश्वराभ्युदयसत्काव्यं निबंधोज्वलं
यस्त्रैविद्यकवींद्रमोहनमयं स्वश्रेयसेऽरीरचत् ।
योऽर्हद्वाक्यरसं निबंधरुचिरं शास्त्रं च धर्मामृतं
निर्माय न्यदधात् मुमुक्षुविदुषामानंदसांद्रे हृदि ॥ ११ ॥
आयुर्वेदविदामिष्टां व्यक्तं वाग्भटसंहिताम् । अष्टांगहृदयोद्योतं निबंधमसृजच्च यः ॥ १२ ॥

यो मूलाराधनेष्टोपदेशादिषु निबंधनम् । व्यधत्तामरकोशे च क्रियाकलापमुज्जगौ ॥ १३ ॥
रौद्रटस्य व्यधात्काव्यालंकारस्य निबंधनम् । सहस्रनामस्तवनं सनिबंधं च योर्हताम् ॥१४॥
अर्हन्महाभिषेकार्चाविधिं मोहतमोरविम् । चक्रे नित्यमहोद्योतं स्नानशास्त्रं जिनेशिनाम् ॥१५॥
रत्नत्रयविधानस्य पूजामाहात्म्यवर्णनम् । रत्नत्रयविधानाख्यं शास्त्रं वितनुतेस्म यः ॥१६॥

सोऽयमानि संचर्च्य जिनप्रतिष्ठाशास्त्राणि दृष्ट्वा व्यवहारमैद्रं ।
आम्नायविच्छेदतमश्छिदेयं ग्रंथः कृतस्तेन युगानुरूपः ॥ १८ ॥

खांडिल्यान्वयभूषणाल्हणसुतः सागारधर्मे रतो
वास्तव्यो नलकच्छचारुनगेरे कर्ता परोपक्रियाम् ।
सर्वज्ञार्चनपात्रदानसमयोद्योतप्रतिष्ठाग्रणी:
पापात्साधुरकारयत्पुनरिमं कृत्वोपरोधं मुहुः ॥ १९ ॥
विक्रमवर्षसपंचाशीति द्वादशशतेष्वतीतेषु ।
आश्विनसितांत्यदिवसे साहसमल्लापराख्यस्य ॥ १९ ॥
श्रीदेवपालनृपतेः प्रमारकुलशेखरस्य सौराज्ये ।
नलकच्छपुरे सिद्धो ग्रंथोऽयं नेमिनाथचैत्यगृहे ॥ २० ॥
अनेकार्हप्रतिष्ठाप्रतिष्ठैः केल्हणादिभिः । सद्यः सूक्तानुरागेण पठित्वायं प्रचारितः ॥ २१ ॥

अलमतिप्रसंगेन ।

यावत्रिलोक्यां जिनमंदिरार्चास्तिष्ठंति शक्रादिभिरर्च्यमानाः ।
तावज्जिनादिप्रतिमाप्रतिष्ठाः शिवार्थिनोऽनेन विधापयंतु ॥ २२ ॥

[1] किंच ।

नंधात्खांडिल्यवंशोत्थः केल्हणो न्यासवित्तर ।
लिखितो येन पाठार्थमस्य प्रथमपुस्तकम् ॥ २३ ॥

इति प्रशस्तिः ।

इत्याशाधरविरचितो जिनयज्ञकल्पापरनामा प्रतिष्ठासारोद्धार समाप्त ।

अब ग्रंथकारकी प्रशस्ति कहते हैं–" श्रीमान् " इत्यादि श्लोकसे लेकर २३ तक पं० आशाधरका वक्तव्य दिखलाया गया है ॥ १ से २३ ॥

इति प० आशाधर विरचित जिनयज्ञकल्प द्वितीम नामवाला प्रतिष्ठासारोद्धार समाप्त हुआ ॥

समाप्तोऽयं प्रतिष्ठापाठः ।

[1] " सनिर्बंधं यश्च जिनयज्ञकल्पमरीरचत् । त्रिषष्टिस्मृतिशास्त्रं यो निबन्धालंकृतं व्यधात् ॥ १ ॥
यह श्लोक सागारधर्मामृतकी प्रशस्तीमें है ।

प्रतिष्ठासारोद्धारका परिशिष्ट।

मत्यात्मावृतिहानिमूलविभव लब्ध्यक्षराद्यागमग्रामोद्दामवपु. प्रकाडमुचिताचारादिशाखोच्चयम्।
बाह्यश्रुत्युपशाखमुक्तिमुदलं सद्युक्तिपुष्पश्रुतस्कधं स्वर्थफलाकुल घनशमच्छाय भजेयच्छिदे ॥ १ ॥
षट्त्रिंशत्त्रिशतैरवग्रहमुखैः स्मृत्यादिभि सोजसा मत्यै स्वावरणक्षयोपशमस्वस्वातोत्थयात्मा यया।
देशेनेहमि मकरव्यतिकरापोहेन वस्तूचिते योग्य द्वादशधा बहुप्रभृतिभिर्विद्यात्पुरश्चारुदृक् ॥ २ ॥

एतद्वय पठित्वा श्रुतस्कधस्थापनार्थं पुस्तकोपरि पुष्पाजलिं क्षिपेत्।

लोकालोकदृशः सदस्यमुक्तैराम्याद्यदर्थश्रुत निर्यात ग्रथित गणेश्वरवृषणात्मुहूर्तेन यत्।
आरातीयमुनिप्रवाहपतित यत्पुस्तकेष्वर्पित तज्जैनेंद्रमिहार्पयामि विधिना यष्टु श्रुत शाश्वतम् ॥ ३ ॥

विधियज्ञप्रतिज्ञानाय पुस्तकोपरि पुष्पाजलिं क्षिपेत्।

सर्पच्छीकरवारवारितपतद्रुघाधभृंगव्रजं निर्यत्या कनकाद्रिशृंगसवयोभृगारनालाननात्।
स्वर्गंगाद्युपनीतपूतसुरभिद्रव्याढ्यवार्धारया स्यात्कारजननीं जगद्विजयिनीं जैनीं यजे भारतीम् ॥ ४ ॥ जलं।

---

१ यहांसे सरस्वतीदेवीकी पूजाका आरंभ है। इससे पहलेका "इंद्र" इत्यादि पाठ दूसरे अध्यायमें आगया है।

अतस्तापनिबर्हिणीं बहु बहिस्तापच्छिदा शालिना मदामोदविधायिनीमनुपदामोदानुलानीलिना ।
स्याद्वादामृतगर्भिणीं परिणमत्कर्पूररेणुश्रिणा श्रीखंडेन महाम्यखडमहिमब्रह्मासयेर्हद्गिरम् ॥ ५ ॥ गंधं ।
घ्राणाप्रीणनचातुरीचणगुणोत्कर्षाविशेषोन्मिषज्जिघ्रासापरिबद्धधोरणिरणत्सारंगगानोन्मदान् ।
प्रत्याख्यातमघामदान्मधुरिमोद्गारौघवल्गद्रसान् । वाग्देवीमभिपूजयामि ललितान् शाल्यक्षतानक्षतान् ॥६॥

अक्षतं ।

मंदारादिसुरद्रुजैः सरसिजैर्जातीजयापाटलामल्लीचंपकनीपकुंदवकुलाशोकादिजैश्च स्मितैः ।
सत्पुष्पैर्मकरंदमेदुररजःकिंजल्कगुंजद्भ्रमद्भृंगैः काचनपुष्पकादिभिरपि प्रार्चामि जैनीं गिरम् ॥७॥ पुष्पम् ।
शाल्यन्नं शुचिहेमपात्रनिचित बाष्पायमाणं मुहुः पक्वान्न घृतपाकखडतुहिनव्योषादिसंस्कारवत् ।
नानाव्यंजनजातमुत्कटरसं रोचिष्णुपुण्यद्रुचे रुच्यै चारु चरूकरोमि भगवद्वाग्देवतायाः पुर. ॥८॥ नैवेद्यम् ।
विश्वोद्योतपरंपराकृतहरिच्चक्राधकारोदयैर्नित्यानदसुधास्रुत नयनमुत्पीयूषवर्षाक्रियैः ।
स्वस्त्याशीःस्तुतिगीतमगलमिलद्वादित्रनादोल्बण श्रीवाणीं मणिदीपकैरुपचराम्याऽऽरूढभक्तिग्रहः॥९॥ दीपम् ।
धूपैर्योगविशेषसज्जितजगद्घ्राणैकपेयस्फुरत्पर्यायातरचारुगधलहरीरज्यन्निलिंपव्रजैः ।
नासाहृद्गलनेत्रतर्पणतपन्मृद्वग्निसंगोच्छलद्धूमव्यासककुन्मुखैर्भगवतीं गा धूपयाम्यार्हतीम् ॥ १० ॥ धूपं ।
आम्रैर्लुबिमनोरमैरुपचितैश्चोचैर्गुलुंछोचितैर्मोचैर्जंबुभिरम्बुदोदयमुदैरन्यैरपीद्दग्विधैः ।
ईषत्पक्वसुपक्वपाकविहितौत्सुक्यामवानेतरवक्त्रयुद्यद्रसवर्णगंधसुभगैश्चाये जिनोक्तिं फलैः ॥ ११ ॥ फलं ।

साविघ्नप्रियधर्मभक्तिरमिका मेधाविनेयात्मना कर्तुं सूरिवरैरनुग्रहमिमां सर्वज्ञवाक्पद्धतिम् ।
तां न्यस्तामिह पुस्तकेष्वधिकृतश्रीदेवतागेषु वा सद्वस्त्रैः परिधापयामि विविधैः सद्बोधसंसिद्धये ॥ १२ ॥ वस्त्र ।
गंधाढ्योदकधारया हृदयहृद्गंधैर्विशुद्धाक्षतैः रोचिष्णुप्रसवैर्विचित्रचरुभिः स्फारस्फुरद्दीपकैः ।
गीर्वाणस्पृहणीयधूमविलसद्धूपैः सुधारुक्फलस्तोमैः स्वस्तिकपूर्वकैश्च रचितं श्रुत्यै ददेऽर्घं विभोः ॥ १३ ॥

पुष्पांजलि । नमोस्तु श्रुतज्ञानभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम् णमो अरहंताणमित्यादि ।

देवि श्रीचतुराननप्रमुखाभोजाधिवासोत्सवे ब्राह्मि ब्रह्मकलाविकाशिनि जगन्मातस्तमोनाशिनि ।
एतानस्खलितस्वभक्तिनटितानध्यास्य शश्वद्यशोविद्यायुर्वसुविक्रमैरुपचिनु ब्रह्मादियज्ञे धिनु ॥ १४ ॥

एतत्पठित्वा प्रणमेत् । इति श्रुतपूजाविधानम् ।

अथ गुरुपूजा[1] ।

सदा सम्यक्त्वार्के प्रतपति विधूतांधतमसं लसद्विश्वालोकं विलसति विताकैकनयने ।
भजंते ये वृत्तामृतमृषिजने संविभजते घटत्पुष्टिं तेषामिह गणभृतां भानुचरणाः ॥ १५ ॥

पादुकास्थापनम् ।

इमास्तिस्रो गुप्तीरिव शमयितुं कल्मषरजश्चरंती चिच्छक्तीरिव बहिरुतान्वेष्टुमहितान् ।
सुवर्णाभृङ्गनालात्सुरभिकपुरासानुपतिता लुठंतीरब्धारा क्रमभुवि गुरूणां प्रणिदधे ॥ १६ ॥ जलधारा ।

---

१ अब गुरु पूजा कहते हैं ।

मुमुक्षूणा प्रेंखन्नखमणिमयूखव्यतिकराद्भीक्ष्ण शीर्षाणि प्रणतिषु पुन. शेखरयतः ।
भवांभोधेः सेतूनृषिवृषभपादान् वृषसृजः सृजामः श्रीखंडद्रवतिलकलक्ष्मीविलसितान् ॥ १७ ॥ गंधं ।
गुणग्रामप्रेमगुणनपरिणा नोत्कंणमनोवचः कायोपायार्जितसुकृतपुंजप्रतिभटैः ।
शरण्यत्रैगुण्यप्रणयनमनाचार्यचरणानुपस्कुर्मोऽमीभिस्त्रिभिरमलशाल्यक्षतचयैः ॥ १८ ॥ अक्षत ।
दृढाभ्युद्यद्भक्तिप्रणतसुमनोमौलिसुमन समागच्छद्भृंगान्मदनमकरदैकशाखाभिः ।
परागोद्गाराभिः प्रवरसुमनोभि. सुमनसा नमस्यानर्हामो मुनिपरिवृढाघ्रीनघहृतः ॥ १९ ॥ पुष्प ।
विचित्रैस्स्वग्रासानयनरसनाह्लादनगुणैर्यथास्व रुक्मादिप्रकृतिषु सुपात्रेषु निचितैः ।
परब्रह्मास्वादप्रमदभरनिर्वाणमनसा क्रमेणाचार्याणा वयमुपचरामश्चरुवरैः ॥ २० ॥ चरुं ।
विसर्पत्कर्पूरप्रणयमधुरामोदनयनाप्रियार्चिः मदोहप्रमथिततमःस्तोमसुभगैः ।
प्रदीपैरुद्दीपीकृतसुकृतपाथेयसुपथा स्फुरच्छायीकुर्मश्चरणकमलान्यार्यमहताम् ॥ २१ ॥ दीप ।
इमैर्धूमैर्धूमध्वजमुखपतद्धूपपटलाद्विसर्पद्भिः स्वैर प्रतिदिशमुपास्तिव्यसनिनाम् ।
मनासि प्रीणद्भिः सुसितमनसाचारचतुरैः स्वय धूपायामश्चरणभरधौरेयचरणान् ॥ २२ ॥ धूपं ।
जगल्लक्ष्मीलीलातरलधवलापांगसुभगास्मितच्छायैः श्रेयश्श्रयमुदयदोजः फलयितुम् ।
सुरम्यैश्चोचाम्रक्रमुकफलपूरप्रभृतिभि. फलैः स्फारीकुर्मो गणिचरणपीठाग्रधरणीम् ॥ २३ ॥ फलं ।

पयोधारात्रय्यामलयजरसैरक्षतचयैः प्रसूनैर्नैवेद्यै. प्रमदभरतो दीपनिकरैः ।
वरैर्धूपोद्गारैः फलचयकुशाद्यैश्च रचितं विदध्मोर्घं सूरिक्रमसरसिजोत्तारुचिरम् ॥ २४ ॥ अर्घं ।
पंचाचाराचरणसचिवाचारणैकक्रियाणा स्फारस्फूर्जद्गुणचितयशःशुभ्रिताशाधराणाम् ।
सेत्सूरीणामिति विधिकृताराधनाः पादपद्माः श्रेयोस्मभ्यं ददतु परमानदनिःस्यंदसाद्रम् ॥ २५ ॥

एतत्पठित्वा पंचागप्रणामं कुर्यात् । गुरव. पान्त्वित्यादि ।

अथ प्रतिष्ठासारसंग्रहस्य श्लोकाः ।

शुद्धं शुद्धात्मसद्भाव सिद्धसज्ज्ञानदर्शनम् । सिद्ध शुद्धप्रमाणाप्तिनिरस्तपरदर्शनम् ॥ १ ॥
विश्वकर्मार्थिलोकस्य विश्वकर्मोपदेशकम् । विश्वकर्मक्षयार्थिभ्यो विश्वकर्मक्षयप्रदम् ॥ २ ॥
आदिदेव जिनं नौमि विश्वकर्मजय प्रभुम् । शेषाश्च वर्धमानातांजिनान् प्रवचन गुरून् ॥ ३ ॥
विद्यानुवादसत्सूत्राद्वाग्देवीकल्पतस्तत । चद्रप्रज्ञप्तिसज्ञाया सूर्यप्रज्ञप्तिसञ्ज्ञिकात् ॥ ४ ॥
तथा महापुराणार्थात् श्रावकाध्ययनश्रुतात् । सारं सगृह्य वक्ष्येह प्रतिष्ठासारसंग्रहम् ॥ ५ ॥
तत्र तावत्प्रवक्ष्यामि प्रतिष्ठाचार्यलक्षणम् । तस्योपदेशतो वक्ष्ये विश्वकर्मप्रवर्तनम् ॥ ६ ॥
शरण्यं सर्वभूतानां वरागगुणभूषणम् । नत्वा जिनेश्वर वीरं वच्म्याचार्येंद्रयोग्गुणम् ॥ ७ ॥

---

१ यहांसे **वसुनंदि** आचार्यकृत प्रतिष्ठासारसंग्रहका आरभ है ।

आचारादिगुणाधारो रागद्वेषविवर्जितः । पक्षपातोज्झितः शात साधुवर्गाग्रणीर्गणी ॥ ८ ॥
अशेषशास्त्रविच्चक्षुः प्रव्यक्तं लौकिकस्थितिः । गभीरो मृदुभाषी च स सूरिः परिकीर्तितः ॥ ९ ॥
कुलीनो जातिसंपन्नः कुत्साहीनः सुदेशजः । कल्याणांगो रुजाहीनः प्रसन्नः सकलेंद्रियः ॥ १० ॥
शुभलक्षणसंपन्नः सौम्यरूप. सुदर्शन । विप्रो वा क्षत्रियो वैश्यो विकर्मकरणोज्झितः ॥ ११ ॥
ब्रह्मचारी गृहस्थो वा सम्यग्दृष्टिर्जितेंद्रियः । नि कषायः प्रशातात्मा वेश्यादिव्यसनोज्झितः ॥ १२ ॥
उपासकव्रताचार्यो दृष्टसृष्टक्रियोऽसकृत् । श्रद्धालुर्भक्तिसंपन्न कृतज्ञो विनयान्वितः ॥ १३ ॥
व्रतशीलतपोदानजिनपूजासमुद्यत । जिनवदनकर्मादिष्वनुष्ठानपर शुचि ॥ १४ ॥
श्रावकाध्ययने दक्षः प्रतिष्ठाविधिवित्सुधी । महापुराणशास्त्रज्ञो वास्तुविद्याविशारद ॥ १५ ॥
एवंगुणो महासत्त्व प्रतिष्ठाचार्य इष्यते । नचार्थार्थी न च द्वेषी भ्रष्टलिंगी कलंकवान् ॥ १६ ॥
नैव पाखंडिपुत्रो वा देवद्रव्योपजीविकः । नाधिकांगो न हीनांगो नातिदीर्घो न वामन ॥ १७ ॥
न निकृष्टक्रियावृत्तिर्नातिवृद्धो न बालकः । गीतवाद्योपजीवी नो भांडो वैतालिको नटः ॥ १८ ॥
उन्मत्तो ग्रहग्रस्तो वा भोजने पंक्तिवर्जितः । गर्भाधानादिसंस्कारैर्विहीनो नातिमोहवान् ॥ १९ ॥
ज्ञाता उपासकाद्यते न त्रयो न महाव्रती । शास्त्रज्ञः कुलजातोपि वर्जनीयस्तथाविधः ॥ २० ॥
एवं समासतः प्रोक्त प्रतिष्ठाचार्यलक्षणम् । प्रतिष्ठालग्नसंशुद्धिं भणिष्यामो यथागमम् ॥ २१ ॥

यदि मोहात्तथाभूतः प्रतिष्ठा कुरुते तदा। पुर राष्ट्र नरेंद्रश्च प्रजा सर्वा विनश्यति ॥ २१ ॥
न कर्ता फलमाप्नोति नापि कारयिता स्वकम्। अथोक्तलक्षणापेतो यदि पूजयते त्वमुष ॥ २२ ॥
प्रशस्तलक्ष्मा यदि पूजयेत् पुमान्। जिनेंद्रचंद्रार्चितपादपंकजम्।
पुरं च राष्ट्रं च नृपश्च वर्धते स्वय जनः कारयितानुषंगतः ॥ २४ ॥
अथोक्तलक्षणोपेतः प्रतिष्ठाचार्यसत्तमः। जलमंत्रव्रतस्नानं त्रिसंध्यं वंदना भजेत् ॥ २९ ॥

इति श्री वसुनंदिसैद्धांतविरचित-प्रतिष्ठासारसंग्रहे प्रथमः परिच्छेदः।

---

१ यहातक ही लिखी पुस्तकोंमें मिलता है इसलिये आवश्यक समझकर अंतमें लगाया गया है।

श्रीप्रतिष्ठासारोद्धारकी विषयसूची।

पांचवा अध्याय ॥ ५ ॥

विषय.	पृ सं.
मुनि अर्जिका श्रावक श्राविका इन चारों सघोंका सत्कार .. .	१२३
प्रतिष्ठाचार्य (इंद्र) को भेंट देके सतोषितकर वस्त्र आभूषण भोजन आदिसे सत्कारपूर्वक क्षमा कराके विदा करना	१२३
प्रतिष्ठा देखनेकेलिये आये हुए साधर्मियोंका भोजन आदिसे सत्कारकर विदा करना ..	१२३
गंधर्व नृत्यकार आदिका भी योग्य सत्कार करके इनाम देकर रवाना करना	१२३
फिर प्रतिमाको वेदीपर लेजाकर विराजमान करना	१२४
मध्यम संक्षिप्त प्रतिष्ठाकी विधिका वर्णन	१२४
जिनमंदिर पर धुजा चढानेकी विधि ...	१२५
जिनमंदिर और जिनप्रतिमाकी प्रतिष्ठाका फल	१२६
छठा अध्याय ॥ ६ ॥	
सिद्ध प्रतिमाकी प्रतिष्ठा विधिका वर्णन	१२७
बृहत्सिद्धचक्रका उद्धार	१२८
लघुसिद्धचक्रका उद्धार . .	१२८
सिद्धस्तुतिपाठ तथा गुणारोपणका विधान	१२९
तिलकदान आदिविधान	१२९
अभिषेक विधि ...	१२९
विसर्जनविधि, इष्टप्रार्थना	१३०
आचार्य (गुरु) प्रतिष्ठाविधि	१३०
गणधर वलयका स्वरूप .. .	१३०
श्रुतदेवता (सरस्वती) की प्रतिष्ठा सरस्वती यंत्र बनानेकी विधि तथा सरस्वतीमंत्रका जप	१३१
सरस्वती स्तोत्रका पाठ	१३२
यक्षादिकी प्रतिष्ठा	१३३
तांबें आदिपर खुदे हुए यंत्रोंकी प्रतिष्ठा	१३५
प्रतिष्ठाविधि योग्यरीतिसे करनेका फल	१३६
ग्रंथकारकी प्रशस्ति . ..	१३७
प्रतिष्ठासारोद्धारका परिशिष्ट ।	
श्रुत (सरस्वती) पूजाका विधान .	१३९
गुरुपूजाका विधान	१४०
वसुनंदि आचार्यकृत प्रतिष्ठासारसंग्रहके उपयोगी श्लोक	१४१
प्रतिष्ठासार संग्रहका पहला परिच्छेद समाप्त	१४२

पण्डितप्रवर श्रीआशाधर विरचित

प्रतिष्ठासारोद्धार

(संक्षिप्त भाषाटीकासहित)

समाप्त ।